प्रकाशक :
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
कनॉट सर्कस
नई दिल्ली–१

पहली बार : २,०००
मार्च, १९७२

मूल्य
सजिल्द
पन्द्रह रुपये

मुद्रक :
शांतिलाल हरजीवन शाह
नवजीवन मुद्रणालय
अहमदाबाद–१४

'सारी सृष्टिको
माताके रूपमें देखकर
मैं अपनी पुत्र-भावनाका
विकास करना चाहता हूं।
यह मार्ग मुझे
मेरी गोमाताने दिखा दिया है।
प्रत्यक्ष रूपसे गोमाताकी और
अप्रत्यक्ष रूपसे मातृजातिकी
सेवा करनेका
मैंने संकल्प किया है।'

जमनालाल बजाज

४ नवम्बर १९४१
★ अंतिम जन्म-दिवस ★

आशीर्वचन

चन्द ग्रन्थोंमें 'इतिहास' होता है। चन्द ग्रन्थोंमें 'माहात्म्य' पढ़नेको मिलता है। 'स्मृति-संगम' में इन दोनोंका संगम है ही। लेकिन इसमें जो तीसरी चीज है उसके सामने ये दोनों तत्त्व, महत्त्वके होते हुए भी, गौण बनते हैं। 'स्मृति-संगम' में महात्माजीके विशाल विविध-युगकी 'पवित्रता' का वायुमण्डल मिलता है। शुरूसे लेकर आखिर तक इसी पवित्रताके वायुमण्डलके कारण पढ़ते-पढ़ते हृदय उंन्नत होता जाता है और मानो सारे ग्रन्थसे हमें वही दीक्षा मिल रही है।

जमनालालजीने गांधीजीको अपना पिता बना लिया। यह एक अद्‌भुत वस्तु थी, महात्माजी उन्हें भले ही कहें कि 'इसमें तुमने क्या पाया, सब कुछ दे ही दिया।' महात्माजीकी बात ठीक थी। लेकिन मैं कहूंगा कि जमनालालजीने 'अपने लिए और अपने सारे परिवारके लिए' 'महात्माजीका प्रेम, उनकी कल्याण-कामना और उनके शुभाशिष पाये।' यह सारी चीज छोटी नहीं थी। आजकल लोग अच्छे-से-अच्छा आशीर्वाद देते हैं; लेकिन बहुतसे आशीर्वाद पोले साबित होते हैं। महात्माजीके आशीर्वाद सफल हुए। मैं देख रहा हूं कि 'स्मृति-संगम' में अगर कोई नाम सबसे कम आता है तो समन्वयकारिणी मदालसाका। लेकिन शुरूसे आखिर तक 'स्मृति-संगम' में महात्माजीके आशीर्वादकी सफलता ही दीख पड़ती है। चि० मदालसाको तो मैं बचपनसे जानता हूं। वह मेरी गोदमें खेली है। उसके जीवन पर अधिकसे अधिक असर महात्माजीके आशीर्वादका है, और उसमें सबसे बड़ी चीज है 'पवित्रता'। मैं तो 'स्मृति-संगम' में शुरूसे आखिर तक मदालसाका ही हृदय देख सका हूं; और अपनी ही लड़कीके बारेमें कहना विचित्र लगेगा, लेकिन सारे ग्रन्थमें मैंने तो पवित्रताकी ही दीक्षा देखी।

स्वराज्य पानेके बाद देशमें जो वायुमण्डल फैला हुआ हम देखते हैं, उसके कारण इस पवित्रताका महत्त्व और ज्यादा महसूस होता है। खूबी 'स्वतन्त्रता' की नहीं है, किन्तु 'स्वतन्त्रता पानेके प्रयत्न' की है। 'भारतको

आजाद बनानेका संकल्प' यहांके मनीषियोंने किया तबसे इस देशमें प्राणका प्रभाव दिखने लगा। नेताओंमें धीरे-धीरे तेजस्विता आने लगी। फिर तो हृदय-हृदयमें स्वतन्त्रताकी वही तेजस्विता प्रगट होने लगी। त्याग, बलिदान स्वाभाविक हुए और अन्तमें जिनके खिलाफ हम लड़े उनके प्रति भी द्वेषभाव न रखते हुए हम 'उनका कल्याण चाहनेवाले मित्र' बने। यह तो भारतीय संस्कृतिके सर्वोत्तम तत्त्वोंका प्रभाव है। गांधीजीके जीवनमें और उनके परिवारके जमनालालजीके जैसे अनेक तेजस्वी नेताओंमें वही प्रगट हुआ। इसीको मैं पवित्रता कहता हूं। शीतल त्याग, सर्व कल्याणकारी तेजस्विता और प्रेमपूर्ण बहादुरी ये सब भाव जमनालालजीमें और उनके साथियोंमें हम देखते हैं।

श्री जमनालालजीने गांधीजीके पाससे श्री विनोबाजीकी सेवा मांग ली। साबरमती आश्रममें विनोबाजीका जो स्थान था उसे सोचते हुए विनोबाजी को वर्धा भेजना गांधीजीके लिए और आश्रमके लिए मामूली त्याग नहीं था। हम सब आश्रमवासी अपने विनोबाको छोड़नेके लिए तैयार नहीं थे। लेकिन जमनालालजीकी योग्यता ही इतनी महान थी कि हम प्रसन्नतासे विनोबाको छोड़नेके लिए राजी हुए। इसमें केवल महात्माजीकी ही उदारता नहीं थी। जमनालालजी ऐसी उदारता पानेके पूर्ण अधिकारी भी थे। देशके सब नेताओंके नाम मनमें लाकर अपनेको पूछता हूं कि और किसीने भी विनोबाकी मांग की होती तो क्या हम राजी होते? केवल जमनालालजीके सामने ही हम परास्त हुए और वह भी प्रसन्नतासे।

वर्धामें रहकर विनोबाजीने जो कार्य किया सो तो दुनियाके सामने है ही। मेरे मनमें उससे भी अधिक महत्त्वकी बात सारे बजाज-परिवार पर विनोबाजीका जो असर कायमी है, वही बड़े गौरवकी बात है। वह सचमुच गांधीजीके आशीर्वादके जैसा ही महान है। गांधीजीके सहवाससे और गांधीजी के आशीर्वादसे विनोबाजीको जो 'हृदय-सिद्धि' प्राप्त हुई उसीका यह सारा प्रभाव मैं देखता हूं। गांधीजीके ऐसे आशीर्वादके लिए विनोबाजी शुरूसे ही योग्य थे यह बात अलग है। आखिरकार स्वयं पूज्य बापूजीको विनोबाजीके पीछे-पीछे वर्धा जाना पड़ा और अपने जीवनभरकी राष्ट्रसेवाका उत्तरार्ध वर्धामें व्यतीत करना पड़ा। यह घटना जमनालालजीके लिए और विनोबाजीके लिए अभिमानास्पद है।

जब मैं जमनालालजीके विषयमें अनेक लोगोंसे बात करता हूं तब उसमें जमनालालजी अकेले नहीं, किन्तु स्वयंवर-प्राप्त उनके पिता महात्माजी, जमनालालजीकी जीवन-संगिनी जानकीदेवी, जमनालालजीके स्वेच्छा-स्वीकृत प्रेरणादायी गुरुतुल्य श्री विनोबा आदि सब विभूतियोंका जमनालालजीमें अंतर्भाव होता है। इतना ही नहीं, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके एक आदर्श प्रतिनिधि वादशाह खान भी जमनालालजीके विभूति-पंचकमें शामिल हो जाते हैं।

इन सबके वारेमें इतनी सुन्दर प्रेरणादायी मधुर स्मृतियां इस ग्रन्थमें एकत्रित हुई हैं कि इनको पढ़नेमें गंगास्नानके जैसा पवित्र आह्लाद प्राप्त होता है। मुझे असन्तोष केवल इसी वातका है कि यह ग्रन्थ इसके पहले मेरे हाथमें नहीं आया। हाथमें आया उस क्षणसे जितना भी समय मैं निकाल सका इसीको हाथमें लेकर उसका आनन्द ले रहा हूं। असलमें जिस ग्रन्थमें केवल रत्नोंका ही संग्रह है, उसके वारेमें मनुष्य लिख भी क्या सकता है? अपनी धन्यताका ही आनन्द व्यक्त कर सकता है।

जबसे जमनालालजीसे मेरा परिचय शुरू हुआ, तबसे उनके जीवनके अलग-अलग पहलुओंका दर्शन होता आया है। थोड़ेसे परिचयसे मैं देख सका कि जमनालालजीका व्यक्तित्व एकांगी नहीं है, सर्वांग-सम्पूर्ण है। उनमें ब्राह्मणकी ज्ञानोपासना है और ब्राह्मणकी ज्ञान-प्रचार और ज्ञान-वितरणकी निष्ठा भी है। स्वभावसे और जन्म-परम्परासे वे वैश्य तो हैं ही। सच्चाईका और लोकहितका द्रोह किये विना धनप्राप्तिकी कलामें सब तरहसे कुशल आदमी उनसे वढ़कर शायद ही दूसरा कोई होगा। उनके सम्पर्कमें आनेसे जिनको राष्ट्रसेवाकी दीक्षा मिली ऐसे वैश्योंकी संख्या मामूली नहीं है। उनके एक ऐसे ही स्नेहीसे वातचीत करते हुए मैंने जमनालालजीको 'वैश्यर्षि' की उपाधि दी थी। केवल मारवाड़ी समाजके नहीं, भारतके सब प्रदेशोंके वैश्यों पर जमनालालजीका लोकोत्तर प्रभाव था।

वर्ण-व्यवस्थामें माननेवाले भारतीयोंका स्वभाव ही ऐसा है कि वैश्य लोग क्षत्रियोंकी तेजस्विताका अनुकरण करनेकी ओर शायद ही ध्यान देते हैं। ऐसे देशमें मैंने दो वैश्योंमें पूरा-पूरा क्षात्रतेज देखा—एक महात्माजी और दूसरे जमनालालजी। मेरा निजी अभिप्राय है कि क्षत्रियकी तेजस्विता जमनालालजीकी अपनी निजी कमाई थी। महात्माजीके प्रसंगमें आनेके वाद

जमनालालजीने गांधीजीसे असंख्य बातें ली होंगी। किन्तु क्षात्रतेज उनको गांधीजीसे लेना नहीं पड़ा। वह तो उनके राजस्थानी खूनमें ही शायद पहले से था। गांधीजीके सहवासके कारण वे अहिंसामें रही बहादुरी, त्यागशक्ति, श्रम-सहिष्णुता और मृत्युके बारेमें निर्भयता आदि पहलुओंका महत्त्व पूर्ण रूपसे समझ गये होंगे।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके समस्त सद्‌गुणोंकी जिसने साधना की है, उसमें शूद्रोंका सेवाभाव तो अपने आप विकसित हो ही जाता है। जब मैं गांधीजीके शिष्योंका और अनुयायियोंका विचार करता हूं तब मन कहता है कि गांधीजीके चारित्र्यके और उनकी सर्वांगीण विभूतिके उत्तम प्रतिनिधि जमनालालजी ही थे। हमारे युगके उत्तमोत्तम वैश्यर्षि जमनालालजी थे। उनके जीवनकी पावन स्मृतियोंका संकलन और सम्पादन चि० मदालसाके द्वारा हुआ है। यह अत्यन्त मीठा, रोचक और प्रेरक ग्रन्थ है। सचमुच यह महात्मा गांधीके सर्वश्रेष्ठ 'पंचम पुत्र' जमनालालजीके जीवन-विषयक और जीवन-कार्य विषयक अनेकानेक लोगोंकी स्मृतियोंका संगम है। इसे बड़ी सतर्क श्रद्धाके साथ संकलित और समन्वित किया गया है।

इस 'स्मृति-संगम' ग्रन्थका सम्भव कैसे हुआ, उसके सम्भवमें कौनसी प्रेरणा मिली, कहांसे सहायता मिली, आदि सारा 'संभवन' की भूमिकामें चि० मदालसाने प्रारम्भमें दिया है। लेकिन इसमें मूल कल्पना, उसकी सारी योजना और प्रेरणा-पीयूषका दोहन स्वयं मदालसाका ही है। श्री जमनालालजीकी विभूतियोंका दर्शन जितनी बाजुओंसे हो सकता है वैसी सब बाजुएं चि० मदालसाने ध्यानमें ली हैं। इसमें जमनालालजीका और उनकी धर्मपत्नी जानकीमैयाका जो प्रारम्भिक पत्र-व्यवहार दिया गया है, वही मुझे सबसे अधिक महत्त्वका लगा। दोनोंके चारित्र्यका और परस्पर प्रेमका उत्तम परिचय प्रारम्भिक भोले भावोंसे भरा होने पर भी इन संस्कारी पत्रोंके द्वारा ही विश्वसनीय और रोचक बनता है।

'स्मृति-संगम' में महात्माजीके जीवनका भी काफी परिचय प्राप्त होता है, जो जमनालालजीके जीवन-विकासको समझनेके लिए अत्यावश्यक है। गांधीजीका असर केवल जमनालालजी पर नहीं किन्तु उनके सारे कुटुम्ब-परिवार पर कितना गहरा था, यह अगर किसी एक ग्रन्थमें ढूंढ़ना हो तो मैं जिज्ञासुको 'स्मृति-संगम' पढ़नेकी ही सिफारिश करूंगा।

सारे ग्रन्थमें एक बातकी कमी मुझे दीख पड़ी थी। चि० नदालसाने अन्तिम 'समाधान' में उस कमीको थोड़ासा दूर किया है। बजाज-परिवार पर जानकीदेवीका जो प्रभाव है उसका जिक्र और जगह पर देखनेको नहीं मिला। जानकीदेवीका त्याग इतना शीतल है कि शायद ही वैसा अन्यत्र देखनेको मिलेगा। वे पढ़ी हुई नहीं हैं, ऐसा माना जाता है। वे अपनी बातें प्रभावशाली ढंगसे शब्दोंमें प्रगट नहीं कर सकती हैं; लेकिन कृति तो अपना प्रभाव डाल ही देती है। भले ही जानकीदेवी अपनेको अशिक्षित मानें; भगवानने उन्हींके मुंहसे आजके इस भौतिक विज्ञानके युगके लिए यह नवीन प्रेरणा दी है:

"मानव-संरक्षण मानवमात्रका स्वयंसिद्ध अधिकार है।"

पुराने लोग 'कर्तव्य' की बात करते थे। आजकलका युग 'मैजिनीके दिनोंसे' अधिकारको ही विशेष समझने लगा है और इसमें इस युगकी खूबी भी है। कर्तव्य तो बाहरकी प्रेरणा है, अतः किसीके आदेशसे हम उसे समझने लगते हैं और अमलमें लानेकी कोशिश करते हैं; जब कि 'अधिकार' तो आंतरिक प्रेरणासे खड़ा होता है और भगवानको उसे आशीर्वाद देना ही पड़ता है।

मैं मानता हूं कि स्वराज्यके बाद हम गांधीजीके नामका तो जय-जयकार करते हैं, लेकिन गांधीजीकी मूल प्रेरणाको भूल-से गये हैं। गांधी-जन्म-शताब्दीके सालमें सब नेताओंके व्याख्यान पढ़े, लेकिन सत्याग्रहकी बात किसीके भी मुंहसे नहीं निकली। और सत्याग्रहको छोड़ दिया, तो गांधीजी शून्य हो जाते हैं। जहां-जहां मानव-संरक्षणकी आवश्यकता खड़ी हो, मानव-मात्रको उसके लिए तैयार होना ही चाहिये। 'मानव-संरक्षण मानवमात्रका स्वयंसिद्ध अधिकार है'—इस मंत्रमें गांधीजीके सत्याग्रहकी सम्पूर्ण भावना आ ही जाती है। अगर इस एक चीजको हम जाग्रत रखें, तो पिछले पच्चीस वर्षमें हमने जितनी गलतियां कीं या शिथिलता धारण की वह सब दूर हो जायेगी।

'स्मृति-संगम' के साथ ऐसी ही एक दूसरी किताब मेरे हाथमें आई है, जिसमें चि० कमलनयन बजाजने 'काकाजी-बापू-विनोबा' के बारेमें लिखा है। बहुत ही सुन्दर किताब है। कमलनयन भले कहे कि उसमें साहित्यिक

शक्ति नहीं है। लेकिन् किताबके तीन खण्डोंमें तीन तरहकी शैलियां पाई जाती हैं, जो विषयके लिए सब तरहसे अनुरूप हैं। अपनी किताब मेरे हाथमें रखते हुए कमलनयनने अपने स्वभावका परिचय देते कहा कि 'मैंने अपनी किताबके लिए आपके जैसे बड़ोंकी प्रस्तावना नहीं ली, क्योंकि उस हालतमें लोग आपकी प्रस्तावना ही पढ़ लेते और मेरा लिखा हुआ रह जाता।'

चि० रामकृष्णने जमनालालजीका साहित्य हमें दिया ही है। अब चि० मदालसा और कमलनयनने हमें जमनालालजीके सारे वायुमण्डलका प्रेरक संदेश दिया है। आशीर्वादके रूपमें मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं।

और मैं चिरंजीव प्यारी ओम्को कैसे भूल सकता हूं? सौ० कमला तो सबसे बड़ी है ही। उसके विवाहमें खास आशीर्वाद देने मैं गया था। लेकिन मेरे मनमें वह इतनी निकट कभी नहीं हुई जितनी चि० मदालसा और ओम् हुई हैं। इन दोनोंका नाम मनमें लाते ही अचूक वही किस्सा मेरे मनमें आता है जब मैंने इनके नामोंके बारेमें जमनालालजीसे चर्चा की थी। उन दिनों मैं मांडूक्य उपनिषद् खास पढ़ता था, जिसमें प्रणव-मंत्र ॐ का ही पूरा रहस्य दिया गया है। . . . मैं तो ओम्में प्रसन्नता ही प्रसन्नता देखता हूं। मैंने जमनालालजीसे कहा कि आपने बच्चोंके जो नाम पसन्द किये हैं, उनमें से आपकी आध्यात्मिक प्रगतिका चित्र हमें मिलता है।

जब मैं जमनालालजीके परिवारकी बात करता हूं तब मैं हमारे श्रीमनजीको भी उनमें लेता हूं। श्रीमनजी जब वर्धा आये और हमारी राष्ट्रभाषा प्रवृत्तिमें शरीक हुए, तबसे मैं उनको एक अच्छे शिक्षाशास्त्रीके तौर पर पहचानता आया हूं। उनमें जिन अनेक बड़े सद्गुणोंका प्रभाव दीख पड़ता है, वे उनके निजी सद्गुण हैं; लेकिन उनको पोषण मिला गांधीजी, जमनालालजी और विनोबाजीके परिवारके पाससे। स्वराज्यके इन दिनोंमें जो लोग राज्य चलाते हैं उनके कार्यका मैं खयाल करता हूं; उनके बारेमें मेरे मनमें असंतोष नहीं है। लेकिन गांधीवृत्ति तो मैं श्रीमनजीमें ही पाता हूं। यही कारण है कि गुजरातकी प्रजा राष्ट्रपति-शासनसे असंतुष्ट नहीं है। और जिन लोगोंने अपने अधिकार छोड़ दिये उनको भी संतोष है कि श्रीमनजीके द्वारा प्रजाके प्रतिनिधि ही राज्य कर रहे हैं। गांधीजीके प्रतिनिधि द्वारा दूसरा क्या हो सकता है?

इस 'स्मृति-संगम' में गांधी-पंचकके (गांधी-पंचक नहीं जमनालाल-पंचकके) समग्र जीवनकी प्रधान घटनाएं किसी न किसी रूपमें आ ही जाती हैं। और सबके प्रौढ़ विचारोंका तृप्तिदायक संकलन भी यहां मिलता है। इसके अलावा पांचोंके स्वभावोंका चित्रण भी यहां खड़ा हुआ है, जो इस ग्रन्थकी विशेषता कही जायेगी। मैं तो कहूंगा कि चि० मदालसाने केवल इस संकलनके द्वारा अपनी संस्कार-सम्पन्न अभिरुचि तो व्यक्त की ही है; किन्तु उसके अपने व्यक्तित्वका मूक चित्र भी कुशल पाठक इसमें देख सकते हैं। ऐसी कुशलता देखकर ही भर्तृहरिने कहा था—'परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः।'

स्पष्ट शब्दोंमें बड़े लोगोंका माहात्म्य-कीर्तन करना आसान है। हर कोई वह कर सकता है। लेकिन बड़े लोगोंके श्रेष्ठ गुणोंकी ओर केवल अंगुली-निर्देश करके उनकी कदर करनेके लिए पाठकोंको बाध्य करना, उन गुणोंका माद्दा जिनमें भरा हुआ है वे ही कर सकते हैं। एक 'संभवन' प्रस्तावनाको छोड़कर अन्यत्र इस ग्रन्थमें मदालसाने अपनेको कहीं भी प्रगट होने नहीं दिया है; किन्तु उसकी 'संकलन और संपादन' कला द्वारा हम जमनालालजीकी इस सौभाग्यशालिनी, कर्तव्यनिष्ठ और सेवापरायणा लड़कीका मौन दर्शन पूरी तरहसे पा सकते हैं।

जिन लोगोंने गांधीजीका साहित्य पूरा पढ़ा है, विनोबाका साहित्य भी पढ़ा है और जमनालालजी विषयक दो चार किताबें भी पढ़ी हैं, ऐसे लोगोंसे भी मैं कहूंगा कि 'स्मृति-संगम' आपको अवश्य पढ़ना चाहिये। इसमें आपको नया ही आनन्द मिलेगा। नयी-नयी दृष्टियां भी मिलेंगी। मैं तो कहूंगा कि 'स्मृति-संगम' हरेक भारतीयको पढ़ना चाहिये। केवल संतोषके लिए नहीं, लेकिन प्रेरणा पानेके लिए। एक ही ग्रन्थके द्वारा अगर आपको गांधी-युगका पूरा चित्र देखना हो तो 'स्मृति-संगम' अवश्य पढ़िये। मैं अपने अनुभवसे कहता हूं कि आपको तृप्ति मिलेगी।

११ फरवरी, १९७२
'सन्निधि', राजघाट,
नई दिल्ली—१

काका कालेलकर

संभवन

जीवनका प्रवाह सरिताके प्रवाहकी तरह वहता जाता है। उसको गंगाके समान विशुद्ध, परोपकारी और पावन वनानेके लिए ही जीवन-साधना है। उसीके लिए सत्यके प्रयोगोंकी प्रयोगशालाके रूपमें महात्मा गांधीजीने सत्याग्रह आश्रमकी स्थापना की। उसके आगे और यहां राजभवनके सामने भी सावरमती नदी बहती है, जो अनेक धाराओंको अपनेमें समाती हुई आगे वढ़ती है। उसी तरह मानव-जीवनमें भी अनेक पुण्य-स्मृतियोंकी पवित्र धारायें मिलनेसे जीवन समृद्ध होता है और आगे-आगे प्रवाहित होता जाता है। यही तो मानव-जीवनकी खूबसूरती है।

जमनालालजीको उनके जीवनमें शुरूसे ऐसी कितनी ही पावनताओंका अनुभव मिला था। वादमें उनकी अपनी पावन-स्मृतिमें कितनी ही अपूर्व पुण्य-स्मृतियोंका संगम हुआ है। उन्हीं पवित्रतम स्मृतियोंका यह अनोखा 'स्मृति-संगम' सहज रूपसे अपने आप ही हो रहा है। काकाजीके जीवनकी इहलीला समाप्त हो जाने पर भी उनकी प्रेरक स्मृतियोंका प्रवाह और भी अधिक उत्कटतासे सतत बह रहा है। उसीको निरन्तर प्रवाहित रखनेके लिए 'स्मृति-संगम' का यह स्वयमेव संभवन हो रहा है।

'स्मृति-संगम' की प्रथम स्मरणिका है 'उद्गम'। यहींसे स्मृति-धारा प्रवाहित होती है। इसमें 'सप्तदेवाः स्मरेन्नित्यम्' के समान सात श्रद्धेय स्नेहीजनोंके गहरे स्नेहभाव प्रकाशित हुए हैं। उनमें सबसे पहले अपने दत्तक पुत्रके प्रति दत्तक पिता बापूका गहरा प्यार प्रगट हुआ है। बाद जमनालालजी ने 'उनके चरणोंमें वंदन' किया है। तदुपरांत 'वर्धामें गंगा' का अवतरण कुलगुरु पूज्य विनोबाजीके द्वारा हुआ है। आगे 'एक ही ध्येयकी साधना' के रूपमें भारतरत्न जवाहरलालजीने काकाजीकी सर्वप्रियताको सिद्ध किया है। उसके बाद भारतके सर्वप्रथम राष्ट्रपति देशरत्न राजेन्द्रवावूजीने काकाजीके संवंधमें अपने गहरे 'विश्वास और प्रेम' को प्रदर्शित किया है। उसीके आधार

पर आगे श्रद्धेय काकासाहबने काकाजीकी 'वसुधैव कुटुम्बकम्'की भावना और उनके स्नेहयुक्त स्वभावको बड़े ही वास्तविक रूपमें प्रस्तुत किया है।

पूज्य काकासाहब बापूजीके बड़े तर्कशील साथी, सहयोगी, साधक और महान साहित्यिक हैं। भारत-माताके वे आराधक हैं। वे बालकोंके बड़े प्रेमी, बहनोंके श्रेष्ठ अभिभावक और सर्वजनोंके हितैषी हैं। पूज्य काकासाहब का जीवन मंगल-प्रभातके समान भव्य है। निसर्गके राजवैभवकी अगणित गाथाएं उन्होंने लिखी हैं। वे चिरयात्री हैं। उनका तन, मन और उनकी प्रबुद्धता सदा विश्वके विविध धामोंकी यात्रा करते ही रहते हैं। उनसे अपने जीवन और जगतसे संबंधित अनेक तरहके प्रश्न पूछनेमें बड़ा आनन्द मिलता है और उनके समझानेमें गहन समाधान। अब इस 'स्मृति-संगम'के लिए उनके गहरे प्रेमसे भरे आशीर्वचन प्राप्त कर धन्यताका अनुभव हो रहा है।

पूज्य बापूजीके निकटतम साथी और सहयोगी जनोंमें पूज्य किशोरलाल भाईके गुरु श्री केदारनाथजी महाराजका स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा है। उन्हें हम सभी स्वजन, पुरजन 'नाथजी महाराज'के नामसे ही पहचानते और संबोधित करते हैं। वे इन दिनों बम्बईके उपनगर बांद्राके हैपी-होम नामक स्थानमें निवास करते हैं। बाल-ब्रह्मचारी होते हुए भी दिन-रात समाज-सेवाके चिंतनमें उनका चित्त निरंतर रममाण रहता है। वे हर वर्णके और हर वर्गके हर व्यक्तिको उसकी इच्छा और आकांक्षाके अनुसार पथप्रदर्शन और प्रोत्साहन दिया करते हैं। वे जहां रहते हैं वहां प्रेममय वातावरण छाया रहता है। राष्ट्र-भावना और समाज-कल्याणकी कामना सदा उनके द्वारा प्रगट होती रहती है। उनकी कई प्रेरणादायी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिनमें 'विवेक और साधना' विशेष महत्त्वकी है। 'स्मृति-संगम'के उद्गमकी इस स्मरणिकामें उन्होंने 'गुणालंकार'के रूपमें जमनालालजीके सद्गुणोंका वरदायक वर्णन किया है।

ऐसे इन सात महानुभावोंके पवित्रतम मनोभावोंकी यह स्मरणिका गंगोत्रीके समान पावन है। इसीसे इसका नाम 'उद्गम' रखा गया है।

'स्मृति-संगम'की द्वितीय स्मरणिका 'जीवन-जाह्नवी' में जनक-कन्या जानकीजी और जमनाके लाल जमनालालजीकी जीवन-धारा पति-पत्नीकी

पारस्परिक भावनाके रूपमें प्रवाहित हुई है, जिसमें आगे चलकर स्नेही-जनोंके द्वारा जमनालालजीके जीवनकी कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओंका वर्णन भी मिलता है।

जीवन-जाह्नवीकी ऐसी बहती धाराके ऊपर बापूके शुभाशीर्वादोंकी सुमन-वर्षा हो रही है। स्मृति-संगममें 'बापूके आशीर्वाद' की यह तृतीय स्मरणिका है, जिसमें 'अर्थ अमित अरु आखर थोरे' की कहावत चरितार्थ होती है।

उसके बाद चतुर्थ स्मरणिका है 'पूर्णमिदम्'। इसमें जमनालालजीके जीवनकी परिपूर्ण सम्पन्नतासे भरी श्रद्धांजलियोंका समावेश हुआ है। उनसे जमनालालजीका बहुविध जीवन-दर्शन झलकने लगता है।

उसमें से 'प्रेरणा-पीयूष' की झारी छलछलाने लगी है और 'गागरमें सागर' की उक्ति चरितार्थ हो रही है। यह पंचम स्मरणिका है। इसमें भारतके राष्ट्रपिता बापूजीका राष्ट्रनेताओंके प्रति अनन्य आत्मीयताका भाव अभिव्यक्त हुआ है, जो अखिल भारतकी कौटुंबिकताको सिद्ध करता है। उसीसे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की संभावना प्रकाशमान हो रही है। अपने पांचवें पुत्र जमनालालजीको 'सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय' के कार्यमें प्रेरित करने-वाले पूज्य बापूजी स्वयं अपने जीवनमें देश-विदेशके किन महानुभावोंसे कैसे प्रभावित हुए, इसका संक्षिप्त विवरण राष्ट्रपिताके ही शब्दोंमें 'प्रेरणा-पीयूष' के रूपमें प्रगट हुआ है, जो हम सबके लिए आज भी उतना ही प्रेरक है।

आगे 'जय जन्मभूमि' की षष्ठम स्मरणिकाका प्रारम्भ यजुर्वेदकी राष्ट्र-वंदनासे हुआ है। इसमें ईस्वी सन् १९०१ से १९४२ तककी स्वराज्य-साधनाका सिलसिला चला है, जो मुख्यत: जमनालालजीके अपने विचारों और अनुभवोंके द्वारा व्यक्त हुआ है। यह 'जय जन्मभूमि' की स्मरणिका ३० जनवरी, १९४८ में महामानवके महाभिनिष्क्रमणसे पूर्ण होती है।

'स्मृति-संगम' की सप्तम स्मरणिका 'प्रेरक प्रवाह' के रूपमें प्रकाशमान हुई है। इसमें १९५१ से १९७१ तककी राष्ट्रीय प्रगतिकी गतिविधियां दृष्टि-गोचर होती हैं, जिनमें पूज्य जमनालालजीकी पुण्य-स्मृतियोंकी झलक भी मिलती रहती है।

गांधी-शताब्दी वर्षमें खुदाई खिदमतगार बादशाह खानसाहबका भारतमें शुभागमन हुआ। वे गुजरात आये। यहांसे पूज्य जमनालालजीके ८० वें जन्म-दिन पर ४ नवम्बर, १९६९ को वे वर्धा पहुंचे। उनके कर-कमलोंसे गोपुरीमें 'गीताई' के प्रणेता परम-पूज्य विनोबाजीकी अध्यक्षतामें 'गीताई-मंदिर' का शिलान्यास हुआ। पिताश्री जमनालालजीके स्मृति-स्थान पर गीताई-मंदिरकी स्थापनाका विचार भाईश्री कमलनयनजीके मनमें जागृत हुआ था। यह पुनीत गाथा भी इस प्रेरक प्रवाहमें सहज रूपसे समन्वित हुई है। वहीं, मां गीताईकी गोदमें ही 'स्मृति-संगम' का यह संग्रथन सम्पन्न होता है। उसका 'समाधान' हम आगे पाते हैं।

पूज्य जमनालालजीके संबंधमें अब तक हिन्दी, गुजराती, मराठी और अंग्रेजीमें पर्याप्त साहित्य प्रकाशित हुआ है। उसके संकलन, संपादन और प्रकाशनमें भाई रामकृष्ण बजाजने बड़ा परिश्रम किया है। उसमें सबसे पहले 'पांचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद' ग्रन्थका प्रकाशन २ अक्टूबर, १९५३ को गांधी-जयन्तीके शुभदिन पर हुआ था। पूज्य काकासाहबने बड़े स्नेहसे उसका सम्पादन किया और सुन्दर, सुबोध तथा विस्तृत प्रस्तावना लिखी। उसे पढ़ते हुए काकाजीके जीवनके अनेक दिव्य दालान खुलते जाते हैं। 'पांचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद' के बाद जमनालाल सेवा ट्रस्टसे क्रमशः 'स्मरणांजलि', 'बापू-स्मरण', 'श्रेयसाधक', 'विनोबाके पत्र', 'रचनात्मक राजनीति' तथा समाजके विभिन्न वर्गके व्यक्तियोंके साथ जमनालालजीके पत्र-व्यवहारके आठ भागोंका प्रकाशन हुआ है। बादमें वर्षानुक्रमसे लिखी हुई जमनालालजीकी अनेक वासरियों (डायरियों) का प्रकाशन भी बराबर होता जा रहा है। इनके संकलनमें से ही यह 'स्मृति-संगम' प्रकाशमें आ रहा है। इसमें अन्य अनेक ग्रन्थोंकी मदद भी शामिल है और नवजीवन ट्रस्ट, सस्ता साहित्य मंडल और परमधाम प्रकाशनके साथ-साथ कांग्रेसके इतिहासका भी इसे बड़ा सहारा मिला है। इसी तरह 'नवजीवन' और 'हरिजन' साप्ताहिकों तथा 'सर्वोदय' मासिक पत्रके पुराने अंकोंसे भी महत्त्वके प्रसंग प्रकाशमें आये हैं। इस तरह 'स्मृति-संगम' का संग्रथन पूर्ण हुआ है। इसकी संपन्नता पर अब पूज्यश्री काकासाहबने अपने प्रेमपूर्ण 'आशीर्वचन' प्रदान कर हमें अत्यन्त अनुगृहीत किया है।

इस 'स्मृति-संगम'के सम्पन्न होनेमें नवजीवन ट्रस्टके श्री सोमेश पुरोहितने विशेष परिश्रम किया है तथा अन्य अनेक भाई-बहनोंने स्नेहपूर्वक सहयोग दिया है। उन सभी सहयोगी सज्जनों और सहायक सद्ग्रन्थोंके प्रति हार्दिक आभार प्रगट करते हुए प्रसन्नता हो रही है।

आशा है, स्वतन्त्र भारतमें जन्म पानेवाले और भारतीय संविधानके अनुरूप मौलिक अधिकारोंसे स्वयमेव विभूषित होनेवाले तरुणगणोंके लिए इस पवित्र प्रेममय 'स्मृति-संगम'में स्नान करना और इसके सुविशाल राष्ट्रीय तटकी सैर करना विशेष रूपसे सुखदायक होगा। वे कभी हमें भी अपने साथ सैर करने लिवा जाया करेंगे तो बड़ा आनन्द मिलेगा।

२६ जनवरी, १९७२
(प्रजातन्त्र-विजयोत्सव)
राजभवन, अहमदाबाद

अनुक्रमणिका

स्मरणिका : सात : प्रेरक प्रवाह

जमनालालजीकी स्मृतिमें गीताई-मंदिर :

स्मृति-संगम

स्मरणिका : एक :

उद्गम



' बापूके आशीर्वाद '

वसुन्धरा का एक रत्न

बाईस वर्ष पहलेकी बात है। तीस सालका एक नवयुवक मेरे पास आया और बोला–"मैं आपसे कुछ मांगना चाहता हूं।"

मैंने आश्चर्यके साथ कहा–"मांगो। चीज मेरे बसकी होगी तो मैं दूंगा।"

नवयुवकने कहा–"आप मुझे अपने देवदासकी तरह मानिये।"

मैंने कहा–"मान लिया। लेकिन इसमें तुमने मांगा क्या? दरअसल तो तुमने दिया और मैंने कमाया।"

यह नवयुवक जमनालाल थे।

वह किस तरह मेरे पुत्र बनकर रहे, सो तो हिन्दुस्तानवालोंने कुछ-कुछ अपनी आंखों देखा है। जहां तक मैं जानता हूं, मैं कह सकता हूं कि ऐसा पुत्र आज तक शायद किसीको नहीं मिला।

यों तो मेरे अनेक पुत्र और पुत्रियां हैं, क्योंकि वे सब पुत्रवत् कुछ न कुछ काम करते हैं। लेकिन जमनालाल तो अपनी इच्छासे पुत्र बने थे और उन्होंने अपना सर्वस्व दे दिया था। मेरी ऐसी एक भी प्रवृत्ति नहीं थी जिसमें उन्होंने दिलसे पूरी-पूरी सहायता न की हो। और वह सभी कीमती साबित हुई, क्योंकि उनके पास बुद्धिकी तीव्रता और व्यवहारकी चतुरता दोनोंका सुन्दर सुमेल था। धन तो कुबेरके भंडार-सा था।

मिसालके तौर पर, खादीके काममें उनकी दिलचस्पी मुझसे कम न थी। खादीके लिए जितना समय मैंने दिया, उतना ही उन्होंने भी दिया।

उन्होंने इस कामके पीछे मुझसे कम बुद्धि खर्च नहीं की थी। इसके लिए कार्यकर्ता भी वे ही ढूंढ़-ढूंढ़कर लाया करते थे। थोड़ेमें यह कह लीजिए कि अगर मैंने खादीका मंत्र दिया, तो जमनालालजीने उसको मूर्तरूप दिया। खादीका काम शुरू होनेके बाद मैं तो जेलमें जा बैठा। मगर वे जानते थे कि मेरे नजदीक खादी ही में स्वराज्य है।...

एक दिन शामको घूमते समय अंग्रेजी न जाननेवालोंकी बातें चलीं। चर्चा मीराबहनने चलाई थी। काका[1] ने कहा—"जमनालालजी भी तो अंग्रेजी नहीं जानते थे, मगर वह अपना काम खासा चला लेते थे।" मैंने कहा—"... जमनालाल अंग्रेजीकी बातें सब समझ लेता था। उसके जैसा बारीकीसे हरेक चीजको पकड़नेवाला आदमी भाग्यसे ही मिलता है!..."

वह वसुन्धराका एक रत्न था और देशका एक वीर सेवक! वह अपनी जगह पर अद्वितीय था!

२२ फरवरी १९४२

उनके चरणों में हो वन्दन

जीवन सेवामय, उन्नत, प्रगतिशील, उपयोगी और सादगीयुक्त हो, यह भावना जबसे मैंने होश संभाला तबसे अस्पष्ट रूपसे मेरे सामने थी। इसीकी पूर्तिके हेतु सामाजिक, व्यापारिक, सरकारी और राजकीय क्षेत्रोंमें कुछ हस्तक्षेप करना मैंने प्रारम्भ किया। सफलता मेरे साथ थी। पर मुझे सदा यह विचार भी बना रहता था कि जीवनकी संपूर्ण सफलताके लिए किसी योग्य मार्गदर्शकका होना जरूरी है। मैंने अपने विविध कार्योंमें लगे रहने पर भी इस खोजको चालू रखा। इसी मार्गदर्शककी खोजमें मुझे गांधीजी मिले, और सदैवके लिए मिल गये।

---

१. काकासाहब कालेलकर।

मार्गदर्शककी खोजमें मैंने भारतके अनेक व्यक्तियोंसे संपर्क स्थापित किया। महामना मालवीयजी, कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर जे० सी० बोस, लोकमान्य तिलक आदि अनेक नेताओं तथा व्यक्तियोंसे मैंने कम-अधिक परिचय प्राप्त किया। उनके संपर्कमें रहा। उनके जीवनका निरीक्षण किया। मेरी इस खोजमें एक बातने मेरे दिल पर सबसे बड़ा असर कर रखा था। वह थी समर्थ रामदासजीकी उक्ति: "बोले तैसा चाले, त्याची वंदावी पाउलें" (जैसी बात वैसा बर्ताव, उनके चरणोंमें हो वंदन)। अनेक नेताओंसे मेरा परिचय होने पर मुझे उनके जीवनमें मेरे इस सिद्धान्तकी प्राप्ति जिस परिमाणमें होनी चाहिये, नहीं हुई। भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके भिन्न-भिन्न गुणोंका मुझ पर असर पड़ा। सबके प्रति मेरी श्रद्धा और आदर भी बना रहा। पर अपने जीवनके मार्गदर्शकके स्थान पर मैं किसीको आसीन नहीं कर सका।

जब मैं मार्गदर्शककी खोजमें था तब गांधीजी दक्षिण अफ्रीकामें सेवा-कार्य कर रहे थे। उनके विषयमें समाचारपत्रोंमें जो आता उसे मैं गौरसे पढ़ता था, और यह स्वाभाविक इच्छा होती थी कि यदि यह व्यक्ति भारतमें आवे तो उससे संपर्क पैदा करनेका अवश्य प्रयत्न किया जाय। सन् १९०७ से १९१५ तक इस खोजमें रहा। और जब गांधीजीने हिन्दुस्तानमें आकर अहमदाबादके कोचरब मोहल्लेमें किरायेका बंगला लेकर अपना छोटासा आश्रम आरंभ किया, तब उनसे परिचय प्राप्त करनेके हेतु मैं तीन बार वहां गया। उनके जीवनको मैं बारीकीसे देखता। उस समय वे अंगरखा, काठियावाड़ी पगड़ी और धोती पहनते थे। नंगे पैर रहते थे। स्वयं पीसनेका काम करते थे। स्वयंपाक-गृहमें भी समय देते थे। स्वयं परोसते थे। उनका उस समयका आहार केला, मूंगफली, जैतूनका तेल और नींबू था। उनकी शारीरिक अवस्थाको देखते हुए उनके आहारकी मात्रा मुझे अधिक मालूम होती थी। आश्रममें प्रातः सायं प्रार्थना होती थी। सायंकालकी प्रार्थनामें मैं सम्मिलित होता था। गांधीजी स्वयं प्रार्थनाके समय रामायण, गीता आदि पर प्रवचन करते थे। मैंने उनकी अतिथि-सेवा और बीमारोंकी शुश्रूषा को भी देखा और यह भी देखा कि आश्रमकी और साथियोंकी छोटीसे छोटी बात पर उनका कितना ध्यान रहता है। आश्रमके सेवा-कार्यमें रत और निमग्न बा को भी मैंने देखा। गांधीजीने भी मेरे विषयमें पूछताछ

करना आरंभ किया। धीरे-धीरे संपर्क तथा आकर्षण बढ़ता गया। ज्यों-ज्यों मैं उनके जीवनको समालोचककी एक सूक्ष्म दृष्टिसे देखने लगा, त्यों-त्यों मुझे अनुभव होने लगा कि उनकी उक्तियों और कृतियोंमें समानता है और मेरे 'बोले तैसा चाले' इस आदर्शका वहां अस्तित्व है। इस प्रकार संबंध तथा आकर्षण बढ़ता गया।

महात्माजीके कार्यमें मैं अपने आपको विलीन हुआ पाने लगा। वे मेरे जीवनके मार्गदर्शक ही नहीं, पिता-तुल्य हो गये। मैं उनका पांचवां पुत्र बन गया।

आज २४ वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो गया, जबसे मैं महात्माजीके संपर्कमें हूं। इन वर्षोंमें मैंने उनके जीवनके समस्त क्षेत्रोंका अवलोकन किया। मैं उनके सहवासमें घूमा, उनके आश्रम-जीवनमें भी रहा, उनके उपवासोंमें उनके निकट रहा, बीमारियोंके समय उनकी शुश्रूषामें भाग लेता रहा। उनकी अनेक गहन मंत्रणाओंका मैं साक्षी हूं, और उनके सार्वजनिक कार्योंका भार मैंने शक्ति भर उठाया। सारी अवस्थाओंमें उनके अनेक गुणोंका मुझ पर असर होता गया। मेरी श्रद्धा बढ़ती गई। मैं अपने आपको उनमें अधिकाधिक विलीन करता ही गया। और आज तो वे मेरे आदर्श हैं। उनकी आज्ञा मेरा जीवनाधार है और उनका प्रेम मेरा जीवन है।

महात्माजीमें अनेक अलौकिक गुण हैं। इस प्रकारके शब्दोंसे मैं अपने हृदयके सच्चे भाव प्रकट कर रहा हूं। पर विरोधकी आशंका न करते हुए इतना तो अवश्य कह सकता हूं कि उनमें मनुष्योचित गुणोंका बहुत बड़ा समुच्चय है। मानवी गुणोंके तो वे हिमालय हैं। उनकी नियमितता, सार्वजनिक हिसाब रखनेकी सूक्ष्मता, बीमारोंकी शुश्रूषा, अतिथियोंका सत्कार, विरोधियोंके साथ सद्व्यवहार, विनोद-प्रियता, आकर्षण, स्वच्छता, बारीक निगाह और दृढ़ निश्चय आदि गुण मुझे उत्तरोत्तर प्रकट होते हुए दिखाई दिये हैं। महात्माजीमें मैंने विरोधी गुण भी देखे हैं। उनकी अविचल दृढ़ता और कठोरता अगाध प्रेम और मृदुताकी बुनियाद पर खड़ी है। उनकी पाई-पाईकी कंजूसी महान उदारताके जलसे सिंचित है और उनकी सादगी सौंदर्यसे पोषित है।

महात्माजीके प्रति अगर मेरा खाली आदर-भाव ही रहता, तो उनके विषयमें मैं कुछ विशेष लिख सकता। पर महात्माजीने मुझे इस तरहसे अपनाया है कि उनके प्रति मेरे मनमें पिता और गुरुके समान ही भाव पैदा होता है।

बचपनसे ही सार्वजनिक जीवनका प्रेम होनेके कारण बहुतसे प्रतिष्ठित सरकारी कर्मचारी तथा देशके प्रख्यात नेतागणसे मेरा परिचय हुआ। पूज्य लोकमान्य तिलक महाराज और भारतभूषण मालवीयजी जैसे महान पुरुषोंका परिचय मेरे लिए लाभदायक हुआ। लेकिन महात्माजीने तो मेरी मनोभूमिका ही बदल दी। मेरे मनमें कई बार त्यागके विचार पैदा हुआ करते थे। उन्हें कार्यरूपमें लानेका रास्ता उन्होंने बता दिया। उनका निर्मल चारित्र्य, शीतल तेजस्विता, गरीबोंकी कलक, मनुष्य-मात्रसे सत्य-व्यवहार, अनुपम प्रेम और धर्म-श्रद्धा देखकर ही मेरा मन उनकी ओर खिंचता गया। मेरे जीवनकी त्रुटियां मुझे दिखाई देने लगीं एवं यह महत्त्वाकांक्षा बढ़ने लगी कि इस जीवनमें किस तरह महात्माजीके सहवासके योग्य बन सकूं।

मेरी रायमें आज भारतमें गरीबोंके साथ यदि कोई एकजीव हुआ है तो वह महात्माजी हैं। महात्माजी मानो कारुण्यकी मूर्ति हैं। गरीबोंके कष्ट दूर करनेमें अमीरोंके साथ भी अन्याय न होने पावे और भिन्न-भिन्न वर्गोंके बीच द्वेषभाव तनिक भी पैदा न हो, इसकी वे हमेशा चिन्ता रखते हैं। इसीलिए भारतवर्षके सब धर्म, पन्थ और वर्गके लोग उनको आत्मीयताकी दृष्टिसे देखते हैं। चातुर्वर्ण्यका तो मानो उनमें सम्मेलन ही हुआ है। भारतवर्ष पर उनका जो असीम प्रेम है उसके लायक यदि हम भारतवासी बनें, तो भारतका उद्धार अवश्य हो जाय।

मेरी समझमें तो महात्माजीका सहवास जिसने किया हो, या उनके तत्त्वोंको समझनेकी कोशिश की हो, वह कभी निरुत्साही नहीं हो सकता। वह हमेशा उत्साहपूर्वक अपना कर्तव्य-पालन करता रहेगा। क्योंकि देशकी स्थितिके सुधरनेमें, स्वराज्य मिलनेमें भले ही थोड़ा विलम्ब हो, परन्तु जो व्यक्ति महात्माजीके बताये मार्गसे कार्य करता रहेगा, मुझे विश्वास है कि वह अपनी निजी उन्नति तो जरूर कर लेगा, अर्थात् अपने लिए तो स्वराज्य वह अवश्य पा सकता है।

मुझे अपनी कमजोरियोंका थोड़ा ज्ञान रहनेके कारण मैंने बापूको 'गुरु' नहीं बनाया, न माना, 'बाप' अवश्य माना है। वह भी इसलिए कि शायद उन्हें बाप माननेसे मेरी कमजोरियां हट जावें।

महात्माजीकी अनुपम दयासे आज मैं कमसे कम अपनी कमजोरियोंको थोड़ा-बहुत तो पहचानने लग गया हूं।

जिस दिन मैं महात्माजीके पुत्र-वात्सल्यके योग्य हो सकूंगा, वही समय मेरे जीवनके लिए धन्य होगा।

मुझे दुनियामें बापू पिताका व विनोबा गुरुका प्रेम दे सकते हैं, अगर मैं अपनेको योग्य बना सकूं तो!

वर्धा में गंगा

गांधीजी यहां **वर्धा** आकर पन्द्रह साल रहे। उन्हें लानेका श्रेय जमनालालजीको ही है। जहां-जहांसे जो-जो पवित्रता वर्धामें लाई जा सकी जमनालालजी लाए। वे भगीरथकी तरह यहां पर गंगा लाये और वर्धाको एक क्षेत्र बनाया। यहां जो अनेक संस्थाएं दिखाई देती हैं, वे सब जमनालालजीकी ही कृति हैं। गांधीजी विचार करें और जमनालालजी उसे अमलमें लाएं, ऐसा उनका रिश्ता था। आज जमनालालजीके कुछ पत्र देख रहा था। एक पत्रमें उन्होंने लिखा है, "गांधीजीका मार्ग-दर्शन हमें उत्तम मिला है। उनके बताये मार्गसे यदि निष्काम जन-सेवा की, तो इसी जन्ममें मोक्ष पा सकेंगे। इसी जन्ममें मोक्ष न प्राप्त हुआ, तो भी कोई चिन्ताकी बात नहीं। अनेक जन्म लेकर सेवा करते रहनेमें भी आनन्द है। बुद्धि शुद्ध रहे तो बस है।" अपनी दैनन्दिनीमें उन्होंने यह लिखा है।

जमनालालजी और गांधीजी दोनोंने जाति, धर्म आदि किसी प्रकारके भेद न रखते हुए मनुष्य-मात्र सब एक हैं ऐसा समझकर सेवा की। गरीबोंसे एकरूप होनेका निरन्तर यत्न किया :

"परहित बस जिनके मन माँही, तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।"

तुलसीदासजीके इस वचनके अनुसार परहितका आचरण करके दुनियाका सब कुछ उन्होंने साध्य किया।

ऐसे ये दो आदर्श पुरुष हमारे सामने ही हो गए।

प्रार्थना, गोपुरी
११ फरवरी १९४८

जमनालालजीके जीवनके अनेक पहलू थे। उनमें व्यापार-व्यवहार भी एक महत्त्वका पहलू रहा। सत्य और अहिंसाके वे अनन्य उपासक थे। व्यापार में सत्य कैसे टिकेगा, यह आजकल एक बड़ी समस्या हो गई है। वास्तवमें व्यापारका टिकाव ही सत्य पर है। ईमानदारी, सच्चाई, वचन-पालन, समभाव, दयायुक्त न्याय-बुद्धि, साथियों और नौकरोंसे कुटुम्बवत् व्यवहार करना, सबके सुख-दुखमें हिस्सा लेना, दक्षता, कुशलता, गणित-बुद्धि, दूरदृष्टि, समाज-हित-बुद्धि, सारासार विवेक आदि गुणोंके बगैर वैश्य-धर्मकी कल्पना ही नहीं हो सकती। लेकिन इन दिनों जबकि लक्ष्मीको पैसेने स्थान-भ्रष्ट कर दिया है, असत्य ही चातुर्य गिना जाता है, कठोरता कुशलता मानी जाती है, सत्यका व्यापारसे नाता टूट गया है। ऐसी स्थितिमें जमनालालजी जैसे हर चीजको सत्यके नापसे तोलनेवाले किस तरह व्यापारमें सच्चाई रखनेकी निरन्तर कोशिश करते थे, यह जानना बहुत लाभदायी है।

जमनालालजीसे मेरा बहुत निकटका सम्बन्ध था। वह इतना निकट था कि उसके वर्णनके लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। यह दो शब्द लिखते समय भी उनके सत्यनिष्ठ जीवनका सारा चित्र मेरी आंखके सामने खड़ा हुआ है, जिसका कि मैं बीस साल सतत साक्षी रहा। हम जैसे उनके कुटुम्बी-जनोंको परमेश्वर वैसी ही सत्य-निष्ठा दे इतनी ही मेरी प्रार्थना है।

परंधाम, पवनार
५.१२.'५०

एक ही ध्येय की साधना

सन् १९१९ में भारतके लंवे इतिहासमें एक नये युगकी शुरुआत हुई। इससे पहले ही, भारतमें ही नहीं वल्कि विदेशोंमें भी गांधीजी काफी प्रख्यात हो चुके थे। पर सन् १९१९ में तो वे एक तेज सितारेकी तरह भारतके विशाल रंगमंच पर चमक उठे। लाखों लोगोंकी श्रद्धाका केन्द्र तो वे वन ही चुके थे, साथ ही उस समय तक जुदा-जुदा प्रवृत्तियोंवाले श्रद्धालु लोगों का एक वड़ा मजमा भी उनके आसपास आ जुटा था।

उस समय गांधीजीके नजदीक आने और उनके गिने-चुने आत्मीय जनोंमें निकटका स्थान पानेवालोंमें जमनालाल वजाज एक थे। जहां तक मेरा खयाल है उनसे मेरी पहली मुलाकात सन् १९२० के कांग्रेस अधिवेशनमें हुई थी। गांधीजीके नेतृत्वमें चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलनमें सहयोगियोंके तौर पर काम करते हुए हम अक्सर मिलते रहे, और हमारा परिचय काफी घनिष्ठ होता गया। स्वभावतः हम एक-दूसरेसे वहुत भिन्न थे, और मुमकिन है कि दूसरी परिस्थितियोंमें यह घनिष्ठता पैदा होनेका मौका ही न आता। मेरे खयालसे हमने एक-दूसरेकी कीमत समझी और हमारा आपसी प्रेम और आदर आहिस्ते-आहिस्ते वढ़ता ही गया। जमनालालजीके प्रति निश्चय ही मेरा आदर बढ़ गया और प्रेमवश मैं उनको एक निकटका पारिवारिक व्यक्ति समझने लगा। हमारी विचारप्रणालियां भिन्न होनेके वावजूद, मैं अपने घरेलू तथा सार्वजनिक मामलोंमें सलाह लेने अक्सर उनके पास जाया करता था, क्योंकि मैंने यह देख लिया था कि वह वड़े ध्येयनिष्ठ और व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे।

हम दोनों अपने अपने दृष्टिकोणसे गांधीजीको श्रेष्ठ तथा महान व्यक्ति मानते थे। उनके नेतृत्वमें उनके साथ ही हम दोनों भी एक ही ध्येयकी साधनामें वढ़ते गये। जिस महान आन्दोलनमें हमने हिस्सा लिया, उसके कई पहलू थे और सभी ढंगके लोग उसकी ओर आकर्षित हुए।

यह कहना मुनासिब होगा कि जमनालालजी इस आन्दोलनमें एक विशेष और अनोखी प्रतिभा लेकर आये। हममें से लगभग सभी लोग औरों की तरह ही थे। हमारे बिना शायद काम चल भी जाता। पर जमनालालजी तो अपने ढंगके एक ही थे। उनके जैसे और लोग इस आन्दोलनमें उनकी-सी निष्ठाके साथ शरीक नहीं हुए थे। इस वजहसे वे हमारे लिए और भी कीमती थे। सत्यके प्रति निष्ठा और कर्तव्य-परायणताके कारण वे हमारे प्रिय बन गये थे।

पहलगांव, काश्मीर
२६.६.'५१

विश्वास और प्रेम

सेठ जमनालाल बजाज आधुनिक भारतके उन व्यक्तियोंमें हैं, जिन्होंने महात्मा गांधीका साथ प्रायः उसी समयसे दिया, जब उन्होंने भारतमें स्वराज्य-सम्बन्धी महान प्रयत्न आरम्भ किया और अपने जीवनकी अंतिम घड़ी तक उसीमें लगे रहे। यह शायद सब लोग नहीं जानते हैं कि जमनालालजी का जन्म एक साधारण परिवारमें जयपुरके अधीन सीकर राज्यके एक गांवमें हुआ था और उनको बचपनमें ही वर्धाके प्रसिद्ध और धनी सेठ बच्छराजने गोद लिया था। थोड़ी उमरमें ही घरका कार-बार उनको सम्भालना पड़ा और इसलिए, यद्यपि उनकी बुद्धि तीव्र थी, पढ़नेमें वह स्कूल-कॉलेजकी शिक्षा बहुत नहीं ले सके। थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने व्यापारमें ही अच्छी सफलता प्राप्त की और केवल वर्धामें ही नहीं, बम्बईमें भी प्रमुख व्यापारियोंके साथ उनका सम्पर्क हो गया और व्यापार दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। पर उनके हृदयमें आरम्भसे ही कुछ ऐसी भावना थी कि यद्यपि वह एक धनिक परिवारमें गये हैं और विपुल सम्पत्तिके मालिक हो गए हैं, वह सारा धन उनका अपना नहीं है और उसे वह अपने ऐशो-आराममें ही लगानेके हकदार नहीं हैं। यह भावना महात्मा गांधीजीसे सम्पर्क हो जाने

के बाद और भी दृढ़ हो गई। महात्माजीका प्रभाव उन पर इतना पड़ा कि वह आरम्भसे ही इस प्रयत्नमें लग गए कि वह कैसे उनकी शिक्षाको अपने जीवनमें धारण करें और उतारें? उनकी बड़ी अभिलाषा और महत्त्वाकांक्षा यह थी कि वह महात्मा गांधीके पुत्रवत् हो जायं। हर प्रकारके सेवा-कार्यमें, जिसमें महात्मा गांधी लगते थे, वह भी अपनेको उत्सर्ग कर देते थे। नागपुरमें कांग्रेसका अधिवेशन १९२० के दिसम्बरमें हुआ। स्वागत-समितिके अध्यक्ष जमनालालजी हुए और असहयोगके आन्दोलनमें उत्साहपूर्वक आ गए। महात्माजीने वकीलोंको वकालत छोड़नेके लिए कहा। उनमें बहुतेरे ऐसे लोग थे, जो असहयोगमें आना तो चाहते थे, पर परिवारके भारके कारण कठिनाई महसूस करते थे। ऐसे लोगोंके जीवन-निर्वाहके लिए जमनालालजीने एक लाखका दान दिया था और एक प्रकारसे 'तिलक-स्वराज्य-कोष' का आरम्भ भी इसीसे हुआ, जो पीछे चलकर एक करोड़से अधिक हुआ।

असहयोग-आन्दोलनमें पड़ जानेके कारण जमनालालजीको अपने व्यापारमें समय लगाना दुष्कर हो गया और इसलिए वह सारा कारबार कर्मचारियोंके हाथमें सौंपकर सार्वजनिक काममें अपना समय लगाने लग गए। पर वह इतने व्यापार-कुशल थे कि जब कभी थोड़ा समय निकाल सकते तो उतने ही में कर्मचारियोंसे सब बातें समझ कर उनको उचित आदेश और परामर्श भी दे दिया करते थे। यद्यपि कई दिशाओंमें, विशेषकर नैतिक कारण से, उन्होंने व्यापार कम कर दिया था, तो भी काम एक अच्छे पैमाने पर चलता ही रहा और बाजारमें उनकी पेढ़ीकी बहुत अच्छी साख बनी रही।

यद्यपि वह अंग्रेजी बहुत नहीं जानते थे तो भी इतनी तीव्र बुद्धि थी कि अंग्रेजीमें भी कांग्रेसमें उपस्थित किये जानेवाले प्रस्तावोंका जो मसौदा बनता उसमें बारीकसे बारीक प्रश्न निकालते और शंकाओंका निराकरण कराते। इसलिए सरदार वल्लभभाई मजाक किया करते कि वह वर्किंग कमेटी के वकील हैं। अपनी व्यापार-कुशलताके कारण कांग्रेसके अन्दर उनकी व्यवहारी बुद्धिसे सभी लोग लाभ उठाते। १९२१ से वह बराबर कांग्रेस-वर्किंग-कमेटीके मेम्बर और बहुत करके खजांची भी रहे। इस लम्बे अर्सेमें कोई काम, विशेषकरके रचनात्मक काम, ऐसा नहीं हुआ होगा, जिसमें उनका कुशल हस्त पूरी तरहसे काममें न आया हो।

जब खादीका काम आरम्भ हुआ तो वह उसमें अग्रगण्य थे। हरि-जन-उत्थानका काम उन्होंने क्रियात्मक रूपसे बहुत किया। जब कौंसिल-प्रवेशका वाद-विवाद आरम्भ हुआ तब उन्हींकी प्रेरणासे महात्माजीके सिद्धान्तों में विश्वास करके रचनात्मक काम करनेवालोंकी संस्था 'गांधी-सेवा-संघ' के नामसे कायम की गई, जिसके वह केवल धनसे ही नहीं, बल्कि और सब प्रकारसे सहायक और पोषक बने रहे। महात्माजीसे उनका प्रेम इतना घनिष्ठ हो गया कि महात्माजी भी उनको पुत्रवत् मानने लग गए और उनकी प्रेरणासे ही जब १९३० और १९३४ के सत्याग्रहके बाद महात्माजीने अपने प्रणके अनुसार साबरमती-आश्रम न जानेका निश्चय कर लिया, तो वह पहले वर्धामें और पीछे सेवाग्राममें जाकर रहने लगे तथा वहीं उनके अन्तिम १२-१३ वर्ष व्यतीत हुए और वहीं अनेक रचनात्मक संस्थाएं स्थापित हुईं। वर्धा में पहलेसे, जब महात्मा गांधीजी साबरमती सत्याग्रह-आश्रममें रहा करते थे, आश्रमकी एक शाखा स्थापित हो गई थी, जिसको बहुत करके श्री विनोबा भावेजी चलाते थे और उसमें महात्माजी भी प्रतिवर्ष जाकर कुछ समय बिताया करते थे। वही आश्रम १९३४ के बाद एक प्रकारसे बढ़कर कितनी ही संस्थाओंके रूपमें चल रहा है। गांधीजी कुछ दिनों तक उस स्थानमें रहे जहां आज मगनवाड़ी, अखिल भारतीय ग्रामोद्योग-संघ तथा संग्रहा-लय है। वहां पहले जमनालालजीका एक बड़ा नारंगीका बगीचा था, जिसको उन्होंने इस कामके लिए दान दे दिया। उसके बाद सेवाग्रामके चुने जानेके कारणोंमें भी एक यह कारण था कि उसमें जमनालालजी मालिककी हैसि-यतसे एक हिस्सेदार थे, और वह सम्पत्ति भी इसी काममें लग गई।

जब कभी किसी भी सार्वजनिक संस्थाके कामसे, खादी और अछूतो-द्धारके कामके लिए, और विशेषकर रुपया जमा करनेके लिए जमनालालजीने सारे देशका कई बार दौरा किया तो रुपये भी काफी मिले। बिहारमें भूकम्पके बाद जो सहायताका काम किया गया उसके लिए कई महीनों तक वहां रहकर उन्होंने उस कामके संचालनमें बहुत भाग लिया। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कांग्रेसके वह केवल खजांची ही नहीं थे, बल्कि उसकी नैतिक सम्पत्तिके भी कोषाध्यक्ष और संरक्षक थे। अपनी सम्पत्ति होते हुए भी उन्होंने अपने जीवन और रहन-सहनको बहुत सादा रखा। लोगोंसे मिलना और सबके दुःख-सुखमें पूरी दिलचस्पी लेना उनका

विशेष गुण था। कांग्रेसके कार्यकर्ताओंमें अनेकोंको उन्होंने कितने ही प्रकार से सहायता दी होगी। उनको कांग्रेसके लोगोंका आतिथ्य करनेमें विशेष आनन्द मिलता था। जहां कहीं कांग्रेसका अथवा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हो वहां उनका अपना अलग प्रबन्ध रहता था, जिससे बहुतेरे लोग लाभ उठाते थे और जबसे महात्माजी वर्धा या सेवाग्राममें रहने लग गये, प्रायः वर्किंग कमेटीकी सभी बैठकें वहीं हुआ करती थीं और वर्किंग कमेटीके लिए जितने लोग जाते थे, सब उनके ही अतिथि हुआ करते थे। बहुतेरे लोग देशी और विदेशी, जो महात्माजीसे मिलने आते थे, वे भी उनके ही अतिथि हुआ करते थे। इस तरह बहुतसे लोगोंसे उनकी बहुत घनिष्ठता हो गई थी और उनका कुछ अपना मिजाज भी ऐसा था कि वह जल्दी हिल-मिल जाते थे।

मेरी मुलाकात असहयोग-आन्दोलनके पहले ही उनसे हो गई थी और उसके बाद मेरा ऐसा सौभाग्य हुआ कि उनसे बड़ी घनिष्ठता हो गई, जो अन्त तक बनी रही। मेरे साथ उनका व्यवहार इतना अच्छा रहा और उनके उपकार इतने हैं कि मैं उनको भूल नहीं सकता। सार्वजनिक कामोंमें तो साथ रहा ही और हर मौके पर उनसे सहायता मिलती ही गई; पर निजी काममें भी उन्होंने हमेशा एक भाई जैसा साथ दिया।

उनकी जीवनीसे बहुत लाभ उठाया जा सकता है। वह केवल व्यापारी वर्गके ही नेता अथवा प्रतिनिधि नहीं रहे, बल्कि देशके सभी प्रकारके लोगोंका उन्होंने विश्वास और प्रेम अपनी देश-सेवा, त्याग और सत्यनिष्ठा से प्राप्त किया।

गवर्नमेंट हाउस,
नई दिल्ली, १.२.'५१

'वसुधैव कुटुम्बकम्'

पूज्य गांधीजी और जमनालालजीका संबंध पूरे पच्चीस सालका और अत्यंत घनिष्ठ था। प्रौढ़ अवस्थामें उन्होंने स्वयं अपनेको महात्मा गांधीजीकी गोदमें अर्पण किया और महात्माजीने उनको अपने पांचवें पुत्रके तौर पर स्वीकार किया। जमनालालजीने न केवल अपने हृदयको, अपनी संपत्तिको और सेवाशक्तिको गांधीजीके चरणोंमें अर्पित किया, बल्कि जहां तक हो सका, उन्होंने अपना सारा परिवार ही गांधीजीके हाथोंमें सौंप दिया। गांधीजीने भी न केवल जमनालालजीकी, किन्तु उनके सारे परिवारकी, व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक चिन्ता अपने सिर पर ले ली। सचमुच यह संबंध अनोखा था।

जिस तरह गांधीजीने जमनालालजीके जीवनमें और परिवारमें प्रवेश किया उसी तरह या उससे भी अधिक जमनालालजीने भी गांधीजीके जीवनमें, उनके जीवन-कार्यमें, उनके कुटुम्बमें और उनके विशाल राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिवारमें प्रवेश किया। इसी परसे हम अन्दाज लगा सकते हैं कि जमनालालजीकी विभूति भी कितनी उत्तुंग और मर्मस्पर्शी थी। अगर गांधीजीने जमनालालजीकी कई उलझनें सुलझाईं, तो जमनालालजीने भी गांधीजीकी व्यक्तिगत तथा संस्थागत उलझनें सुलझानेमें अपनी असाधारण निष्ठा और कुशलता दिखलाई। ऐसा करते-करते उन्होंने इतना अधिकार पाया था कि कभी-कभी उनको गांधीजीसे कड़ी शिकायत करते और उनके रुखको सुधारते हुए भी देखा गया है। ऐसे समय गांधीजीकी प्रसन्नता एवं धन्यता कुछ अजीब ढंगसे उनके चेहरे पर प्रकट होती थी। जब-जब गांधीजी जमनालालजीकी बात मान जाते थे तब-तब जमनालालजीके मुंह पर भी सच्छिष्य होनेका आनन्द प्रगट होता था। इन निस्स्वार्थ, निरभिमान और समान दृष्टिके सेवकोंके बीच जो संवाद चलते थे, उनको सुननेका अधिकार या मौका मिलना भी एक भाग्य था।

गांधीजी और जमनालालजीमें यह एक समान विशेषता पाई जाती है कि दोनोंका हृदय-विकास इतना असाधारण था कि केवल विस्तार ही नहीं

किन्तु उत्कटतासे भी वे सारे राष्ट्रको अपना कौटुम्बिक परिवार बनानेकी शक्ति रखते थे। जहां इन दोनोंको प्रवेश मिला वहां वे तुरन्त ही अपने कौटुम्बिक सद्गुणोंकी सुगंध फैला देते थे।

भारतका आंतरिक इतिहास अगर हम ध्यानसे पढ़ें तो हम देख सकते हैं कि हमारे राष्ट्रके सांस्कृतिक धुरन्धर सबके सब विशाल परिवार, याने अविभक्त कुटुंब-पद्धतिके ही कायल थे। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ही उन सबका आदर्श था। कई बार गांधीजीने चंद व्यक्तियोंका नेतृत्व मजबूत करनेके लिए दूसरोंके व्यक्तिगत विकास पर अंकुश रखा है, और अगर उन्होंने अपने विकासके लिए अलग क्षेत्र नहीं ढूंढ़ा तो उनका व्यक्तित्व बढ़नेसे रुक भी गया है। जमनालालजीका तरीका कुछ अलग था। उन्हींके मुंहसे मैंने सुना है कि जब कभी उन्होंने देखा कि दो व्यक्तियोंके स्वभावमें परस्पर मेल नहीं है, तो वे दोनोंके लिए अलग-अलग भिन्न-भिन्न क्षेत्र बना देते थे, ताकि दोनों की शक्तिका पूर्ण विकास हो सके। यही कारण था कि ऐसे मामलोंमें जमनालालजीको ज्यादा सफलता मिलती थी। अगर हम इतिहासमें ढूंढ़ें तो गांधीजी और जमनालालजीने मिलकर जिस विशाल कुटुंबकी स्थापना की उसके जैसा विशाल कुटुंब, कुटुंबके रूपमें शायद ही और कहीं चला होगा।

गो-सेवा, अस्पृश्यता-निवारण, अंतर्जातीय-विवाह, हिन्दू-मुस्लिम एकता, राष्ट्रभाषा-प्रचार, सर्व-धर्म-समभाव और ट्रस्टीशिपका सिद्धांत, संपत्तिकी ओर विश्वस्त-वृत्ति; इन सब बातोंमें जमनालालजीने गांधीजीके साथ अपनी पूर्ण एकता सिद्ध की थी।

सचमुच जमनालालजी गांधीजीकी कामधेनु थे। पैसे देने या लानेकी दृष्टिसे ही नहीं, किन्तु गांधीजीके आदर्श और मनोरथ समझकर उनकी सब कामनाएं सिद्ध करनेके लिए अपनी समस्त शक्ति, अपना समस्त बल— द्रव्य-बल, मनुष्य-बल, बुद्धि-बल और व्यवस्था-बल — लगानेवाली कामधेनु थे।

श्रेयार्थी जमनालालजीके आत्मशुद्धिके सतत प्रयत्नका संपूर्ण चित्र हमें कौन दे सकेगा? श्री विनोबाजी शायद कुछ दे सकें। लेकिन ऐसे चित्रका दर्शन करके पावन होनेके अधिकारी भी तो कौन और कितने हैं?

गांधीजी स्वराज्य और राष्ट्रोत्थानकी प्रवृत्तिमें पड़े, उसका मुख्य कारण भी सत्यप्राप्तिकी इच्छा ही थी। 'सत्यकी उपासना द्वारा सत्यरूप हो जाना

यही परम धर्म है।' इस धर्मका पालन करते हुए स्वराज्य-साधना पैदा हुई। उसीकी सिद्धिमें जमनालालजी जैसे अपने साथियोंको कुरबान करते, उन्हें कभी संकोच नहीं रहा। बाह्य स्वराज्य तो एक प्रतीकमात्र है। सच्चा स्वराज्य तो व्यक्तिका आंतरिक और हृदयका स्वराज्य है। गांधीजीका विश्वास है कि ऐसा एक भी सत्याग्रही सिद्ध हुआ तो स्वराज्य-प्राप्ति होते एक क्षणकी भी देरी नहीं लगेगी। यह मार्ग कठिन है इसलिए उसे हम छोड़ न दें। मार्ग कठिन है इस वास्ते हमें प्रयत्नकी पराकाष्ठा करनी चाहिये।

गांधीजीने जमनालालजीको अपना पांचवां पुत्र बनाया, तभीसे जमनालालजी तो सत्पुत्र होनेका प्रयत्न करते ही थे, लेकिन गांधीजी भी सत्पिता बननेकी अखंड कोशिश करते रहे। उनका प्रयत्न इतना उत्कट था कि हरेक आदर्श वे इसी जन्ममें सिद्ध करना चाहते थे।

अपनी जीवन-साधनाके सिलसिलेमें जमनालालजीको पिता तो गांधीजी मिल चुके थे, किन्तु वे एक आध्यात्मिक माताकी खोजमें भी थे। गांधीजीने सिफारिश की कि श्रीमती कमला नेहरूकी जिन पर श्रद्धा थी, ऐसी एक साध्वी माता आनन्दमयी देहरादूनके पास रहती हैं, उनसे मिल लेना। जमनालालजी अगस्त १९४१ में उनसे मिले। बड़े ही प्रभावित हुए। मां आनन्दमयी विवाहिता होते हुए भी बाल-ब्रह्मचारिणी थीं। उन्होंने अपने पतिको भी संन्यास लेनेका उपदेश दिया था।

राष्ट्रभक्ति और सेवाका उच्च आदर्श और जीवन-शुद्धिका उत्कटसे उत्कट जागरूक प्रयत्न एक साथ, एक धारामें चलते देखकर बापूजीके इस उत्तम शिष्य-पुत्रकी जीवन-साधना पूरी-पूरी ध्यानमें आती है। अखण्ड कर्मयोग और उसके साथ अन्तर्मुख आत्म-परीक्षण और गुरुभक्तिके वातावरण का ध्यानयोग, ये सब आत्मोन्नति-साधनाके नए नमूने दुनियाके सामने पेश हुए हैं। इस दृष्टिसे जमनालालजी सचमुच गांधी-युगके, दैवी-सम्पतके सर्वोत्तम नमूने थे। गांधीजीने जमनालालजीको उनके आखिरी दिनोंमें जो आश्वासन दिया था वह पढ़ते हुए अर्जुनको दिया हुआ कृष्णका आश्वासन याद आता है: 'मा शुचः संपदं दैवीं अभिजातोऽसि भारत।'

वैश्य-शिरोमणि

स्वराज्य-प्राप्तिके लिए लोक-जाग्रति और राष्ट्रीय एकता सिद्ध करनेके लिए जो रचनात्मक काम करना जरूरी होता है, उसका महत्त्व गांधीजी जानते थे। जमनालालजीको भी यह समझते देरी नहीं लगी। इसीलिए जमनालालजीने गांधीजीकी तमाम रचनात्मक प्रवृत्तियोंको सफल बनानेके लिए अपनी सारी द्रव्य-शक्ति और कौशल्य-शक्ति पूरे उत्साहके साथ लगा दी।

आज मैं वर्ण-व्यवस्थाका अभिमानी या प्रोत्साहक नहीं रहा, लेकिन उस व्यवस्थाकी सुन्दरता मैं जानता हूं। लोगोंके सामने सुन्दर-सुन्दर आध्यात्मिक आदर्श रखना ब्राह्मणोंका काम है; विचारोंको प्रेरक और रोचक रूप देना भी उन्हींका काम है। क्षत्रिय पूरी बहादुरीसे लड़नेके लिए तैयार होते हैं। जान-मालको न्योछावर करनेकी तैयारी उनसे बहुत जल्दी होती है। लेकिन समाजका संगठन करना, खेती, पशु-पालन, उद्योग, हुनर और तिजारत आदिके द्वारा समाजको सम्हालना, समर्थ बनाना और भिन्न-भिन्न वर्गोंके बीच सामंजस्य स्थापित करके सहयोगको सार्वभौम बनाना, यह काम तो बनिये का ही है। गांधीजीमें बनियेके ये सब गुण थे। इसके अलावा वह लोकोत्तर तेजस्विता और चातुर्यसे भरे हुए सेनापति भी थे। गांधीजीको लोग पहले केवल 'भाई' कहते थे। बादमें 'कर्मवीर' कहने लगे। अंतमें भारतीय जनता ने उनको 'महात्मा' की पदवी दी। लेकिन उनकी इन सब शक्तियोंसे ऊपर और सबको कृतार्थ करनेवाली उनकी शक्ति थी एक सेनानीकी। क्षत्रिय तभी लड़ सकता है, जब बनिया उसे पूर्व-तैयारी कर देता है। यूरोपके लोकोत्तर सेनापति नेपोलियनने कहा था—"सेना चलती है पेट पर।" गांधीजीने कहा था कि सत्याग्रहकी सफलताका आधार रहता है रचनात्मक कार्यक्रम पर। उन्होंने यहां तक कहा था कि "मेरा रचनात्मक कार्यक्रम अगर सारा राष्ट्र पूरी तरह सफल कर दे, तो सत्याग्रहके विना ही मैं आपको स्वराज्य ला दूंगा।"

गांधीजीके इसी रचनात्मक कार्यका पूरा महत्त्व जाननेवाले इने-गिने लोगोंमें भी जमनालालजीका स्थान बहुत ऊंचा था। यह गुण तो मनुष्यकी आस्तिकतामें से ही प्रकट होता है। क्षत्रिय भले ही लड़कर राज्य प्राप्त कर लें, राज्य चलानेका काम भले ही क्षत्रियोंका माना जाय, पर दरअसल वह

है बनियेका काम। चार आश्रमोंमें जिस तरह अनुभवसे सिद्ध हुआ है कि गृहस्थाश्रम ही सर्वश्रेष्ठ है, उसी तरह हमें समझना चाहिये कि चार वर्णोंमें भी श्रेष्ठता कबूल करनी चाहिये वैश्य-वर्णकी। वैश्य-धर्मकी सार्वभौमताके नीचे ही ब्राह्मण-धर्म और क्षात्र-धर्म अपने-अपने काममें कृतार्थ हो सकते हैं। बनिया गांधीजीका सामर्थ्य किसमें है, यह अचूक देख सके बनिया-शिरोमणि जमनालालजी ही।

जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीकासे भारत आये, तब नामदार गोखलेने उनकी पूर्व-तैयारी की। कविवर रवीन्द्रनाथने अपने दो उत्तम अंग्रेज स्नेहियों – मि० एंड्रूयूज और पियर्सन – को दक्षिण अफ्रीका भेजा था। दीनबन्धु एंड्रूयूजने भारत आकर अपने दोस्त प्रिंसिपल रुद्र और महात्मा मुंशीरामसे गांधीजीकी बातें कहीं। इस तरह गांधीजीका सम्पर्क बढ़ता ही गया।

जब गांधीजी रवीन्द्रनाथसे मिलने शांतिनिकेतन आये, तब मैं उसी संस्थामें था और उनके आश्रम-वासियोंके साथ घुलमिल गया था। गांधीजीके आते ही मैंने अपने मित्र आचार्य कृपालानीको तुरन्त वहां आनेको लिखा। मेरी ही तरह उन्होंने भी गांधीजीसे लम्बी चर्चा की और इस नये सामर्थ्य को पहचान लिया। मैंने गांधीजीकी बात स्वामी आनन्दसे कही। लोकमान्य के दाहिने हाथ कर्नाटक-केसरी गंगाधरराव देशपांडेसे कही। वे सब देखते-देखते गांधीजीके प्रभाव तले आ गये। तो सन् १९०७ से अपने लिए एक प्रेरक शक्तिकी खोज करनेवाले जमनालालजी गांधीजीके आकर्षणसे अलिप्त कैसे रह सकते थे? गांधीजीको गुरुके रूपमें पाकर भी उन्हें गुरु-शिष्य संबंधसे संतोष नहीं हुआ। पिता-पुत्रके संबंधको ही उन्होंने मांग लिया और गांधीजीने भी प्रसन्नतासे और उतनी ही निष्ठासे उस संबंधको मान्य किया।

अगर देवोंमें नये अवतारको पहचाननेकी शक्ति होती है, तो अवतारमें भी अपने साथियोंको पहचाननेकी शक्ति होनी ही चाहिये। हम इसे तारा-मैत्रक कह सकते हैं। गांधीजीके पास असंख्य लोग आये। चंद लोगोंको गांधीजीने स्वयं बुलाया। चंद अपने आप आकर गांधीजीसे चिपक गये। लेकिन दो आदमियोंके बारेमें जानता हूं कि उन्हें देखते ही गांधीजीने पहचान लिया कि इनके साथ अभेद भक्तिका संबंध बंधनेवाला है। एक थे महादेव

देसाई और दूसरे थे जमनालालजी; और खूबी यह कि इन दोनोंने जैसे ही गांधीजीको पहचाना, वैसे ही एक-दूसरेको भी तुरंत पहचान लिया। महादेवभाईने जमनालालजीको जो खत लिखे थे, उनमें से चंद खत मैंने पढ़े हैं। उस परसे कह सकता हूं कि इन दोनोंका परस्पर आकर्षण भी कम अद्भुत नहीं था। गांधीजीके आश्रमियोंमें से श्री विनोवाजी भावेका वर्धा जाना भी, मैं इसी तरहका ईश्वरी संकेत या युग-रचना या व्यवस्था मानता हूं।

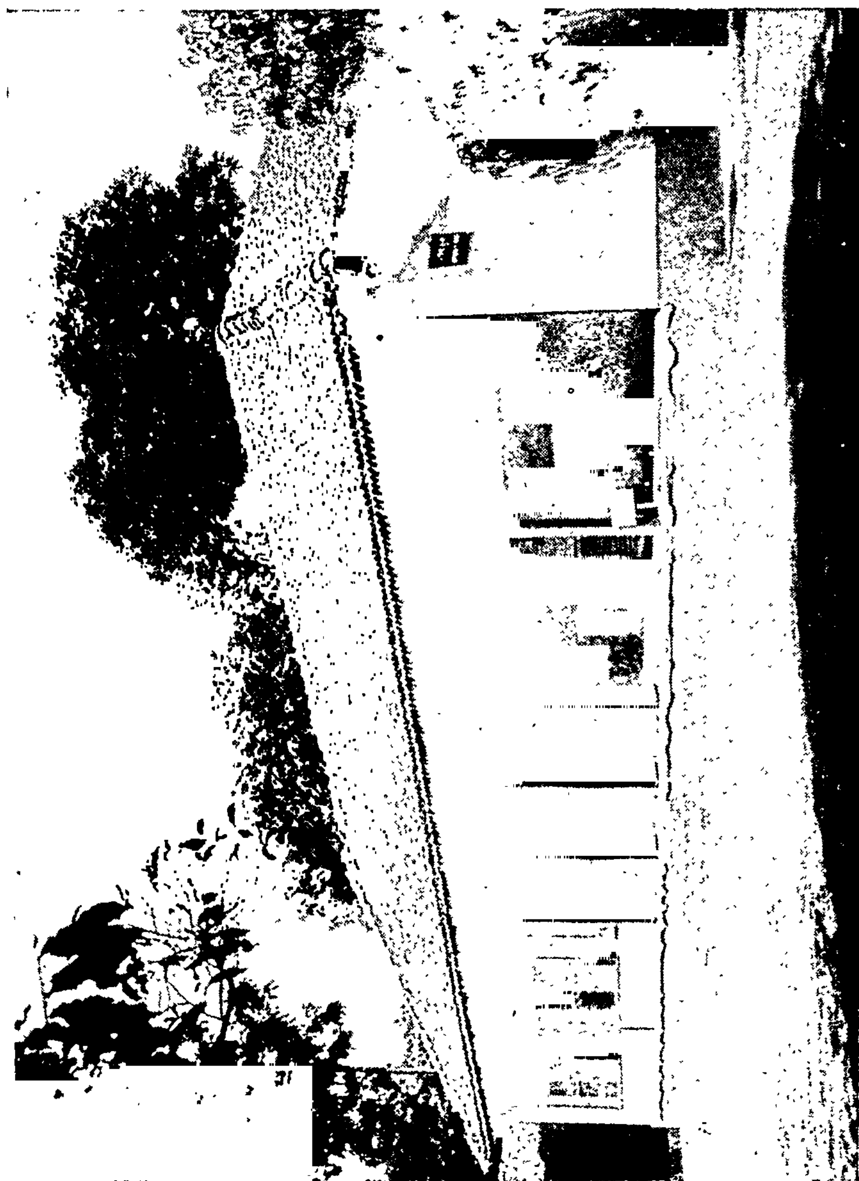
अन्योन्य संबंधकी यह प्रेम-शृंखला कैसे बढ़ती गई, यह देखनेका आनंद जैसे गांधीजीके चरित्रकारको मिलता है, वैसे ही जमनालालजीके चरित्रकारको भी मिलेगा। परस्पर मिलन, परस्पर सहयोग, यह कोई आकस्मिक घटना नहीं होती। सृष्टिमें परस्पर संबंधका विशाल जाल फैला हुआ रहता है। उसीके अनुसार सब-कुछ होता है। कोई भी घटना अकस्मात् होती नहीं। हरेक घटना या संबंधका 'कस्मात्' हम जानें या न जानें, होता ही है। जब मनुष्य-जातिकी ज्ञान-शक्ति बढ़ेगी, तब मनुष्य ऐसे संबंधको पहचानकर ही इतिहास लिखने बैठेगा। आजकलके इतिहास अंधोंके प्रयास हैं। ज्ञानमय प्रदीप प्राप्त होनेके बाद ही मानव-जातिकी सच्ची जीवन-गाथा लिखी जायगी। गांधी-कार्यका प्रयोग, रहस्य और उसकी कृतार्थता तभी दुनियाके सामने पूर्ण रूपसे प्रकट होगी। गांधीजीके संपर्कमें आनेके बाद जमनालालजीका सारा जीवन ही बदल गया था।

गांधीजीने हिन्दू-धर्ममें और हिन्दू-समाजमें जो महान परिवर्तन किये, उसमें संन्यस्त जीवनको नया रूप दिया, जिसका महत्त्व कम नहीं है। उसका प्रत्यक्ष उदाहरण जमनालालजीके जीवनमें चरितार्थ होता पाया जाता है।

तीन व्यक्ति थे, जो बापू के जीवन में तन-मन-प्राण से ओतप्रोत हो गए थे और मरते दम तक उनसे ओतप्रोत रहे। उनका आत्म-समर्पण अनुपम था। एक थीं कस्तूरबा, दूसरे महादेव, तीसरे जमनालालजी।...

काका कालेलकर

राजघाट, नई दिल्ली, १९६६





जमनालाल बजाज 'अतिथि-गृह', बजाजवाड़ी, वर्धा

गुणालंकार

जमनालालजीकी व्यापारमें दक्षता, कार्यकुशलता, प्रामाणिकता, सार्वजनिकता, सामाजिक सुधारके लिए छटपटाहट, देशहितके किसी भी कार्यमें जुट जानेका साहस, उस कार्यको सफल बनानेवाला योजना-चातुर्य, सत्याग्रह पर श्रद्धा, रचनात्मक कार्यों पर विश्वास और उस कार्यमें लगन, दुखियोंके प्रति करुणा, आतिथ्य-भावना, धन-सम्पन्न स्थितिके विषयमें निर्लोभता, निर्भयता, विनयशीलता आदि सद्‌गुणोंका साहित्यकारों तथा मित्रोंने उचित ही उल्लेख किया है। उसे पढ़कर जमनालालजीके प्रति आदर और प्रशंसाके भाव उत्पन्न हुए बिना नहीं रहते। उन-जैसे उदारमना, परोपकारी, दयालु अन्तःकरणवाले, प्रामाणिकता-सहित लाखोंका व्यवहार करनेवाले और फिर भी निरभिमानी स्वभाववाले, देशके लिए तन, मन और धन अर्पण करनेवाले व्यक्ति अपने भाग्यहीन देशमें बिरले मिलेंगे। जमनालालजी अनेक गुणोंसे अलंकृत थे। जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंमें उनके कर्तव्यका इतिहास, उनका विस्तृत पत्र-व्यवहार, असंख्य लोगोंके प्रति स्नेह और विश्वासयुक्त सम्बन्ध आदि देखकर मन आश्चर्यचकित हो जाता है। उनके चरित्र-वैभवसे, उनके जीवनके विशाल कारोबार तथा उनकी विविध प्रवृत्तियोंके विषयमें पढ़ते हुए प्रसंगानुरूप कभी आश्चर्य, कभी आदर, तो कभी धन्यताके भाव उठते रहे।

गांधीजीका निवास साबरमती था तब तक जमनालालजीको वहां बार-बार जाना पड़ता था। उन्होंने अपने तथा अपने परिवारके रहनेके लिए वहां एक छोटा-सा मकान[1] बनवा लिया था। उसमें वह बीच-बीचमें जाकर रहा करते थे। उनकी अनुपस्थितिमें भी श्रीमती जानकीदेवी और उनके पुत्र-पुत्रियां वहां रहते थे। सन् १९३४ में सत्याग्रह स्थगित होने पर बापूजी

---

१. 'जमना-कुटी' में आजकल दो बुनकर भाई रहते हैं, जिनका जीवन खादीमय और स्वावलम्बी है।

सावरमती छोड़कर वर्धा और वादमें सेवाग्राम रहने लगे। सेवाग्राम-निवासकी सारी व्यवस्था जमनालालजीने ही की थी। वापूजी सेवाग्राममें रहने लगे तवसे सेवाग्राम सारे भारतकी राजनीतिका केन्द्र वन गया। वापूजीके कार्यके फलस्वरूप भिन्न-भिन्न अनेक संस्थाएं सेवाग्रामके आसपास वनीं उससे वर्धाको महत्त्व मिला। सारे भारतसे राजनैतिक तथा विधायक कार्यके कारण आनेवाले वड़े-वड़े नेताओंसे लगाकर सामान्य कार्यकर्ताओंके रहने और खाने-पीनेकी सारी व्यवस्था जमनालालजीको ही करनी पड़ती थी। भारतके ही नहीं वरन् विदेशी मेहमानोंके आतिथ्यका भार भी जमनालालजी पर ही पड़ता था। इस विषयमें उन्हें धन्यवाद दिये विना नहीं रहा जा सकता। कठिन महत्त्वके कार्योंके समान ही यह अतिथि-सत्कार भी वह अत्यंत व्यवस्थित रूपसे कई वर्षों तक करते रहे।

वापूजी जव सेवाग्राम रहने लगे तव जमनालालजीके कार्योंके वोझमें अत्यधिक वृद्धि हुई। उच्च शिखर पर पहुंचनेका वह समय था। वापूजी का सत्संग भी उन्हें अधिक मिलने लगा। यह नित्यके कार्यक्रममें ही आ गया था। यह कह सकते हैं कि वाह्य प्रवृत्ति और अंतःशुद्धि दोनों ही वातें उस समय उन्हें ठीकसे सधती होंगी। उन दिनों वाह्य प्रवृत्तियोंकी दक्षता और श्रेयकी ओर उत्कंठा, खिंचाव और प्रगतिमें उन्हें हमेशा समन्वय वनाये रखना पड़ा होगा! . . .

जमनालालजी श्रेयार्थी थे और उसके लिए वह सतत प्रयत्नशील थे।

जमनालालजी सामान्य व्यक्ति नहीं थे, किन्तु भारतके सार्वजनिक और राजनैतिक क्षेत्रके प्रख्यात नेता और महापुरुष थे। देश-परदेशमें उन्हें जानने-वाले असंख्य लोग थे और आज भी हैं।

शायद ही होगा कोई उन जैसा धनिक किन्तु निर्लोभी, कर्तव्यशील किन्तु गर्वरहित, सुखमय स्थितिमें वढ़ा हुआ किन्तु परिश्रमी, सर्व-साधन-सम्पन्न किन्तु संयमी, मान-सम्मानसे प्रतिष्ठित किन्तु विनयशील, लाखों-करोड़ोंका मालिक किन्तु सेवा-परायण, द्रव्य कमानेमें कुशल किन्तु उसे सत्कार्यमें लगानेमें और अधिक उदार। वह मित्रनिष्ठ, राष्ट्रभक्त, समद्रष्टा थे। उनमें शौर्य, धैर्य, औदार्य, कर्तव्य एक साथ विद्यमान थे, जिससे वह सहज ही प्रतिभावान और इतना सव होते हुए भी श्रेयार्थी वन सके। ऐसा पुरुष भारतमें मिलना कठिन

है, यह मैं अपने अनुभवसे कह सकता हूं। वह श्रेयार्थी थे इसलिए श्रेय-प्राप्ति के लिए बेचैन थे। वह सत्यनिष्ठ थे इसलिए उनमें दम्भके लिए तिरस्कार था। उनका ध्येय पवित्र था, कल्याणकारी था, भारत-व्यापी था। इतना ही नहीं, सारी मानव-जाति उसमें समा सके इतना उदात्त और विशाल भी था।

देशकी स्थिति देखकर जब-जब मेरे मनमें खिन्नता आती है तब-तब मुझे जमनालालजीका स्मरण होता है। देश-सेवकोंकी असुविधाजनक और दुःखदायक स्थिति देखता हूं तब-तब मुझे जमनालालजी याद आते हैं। जब सुनता हूं कि अर्थके अभावमें कोई सत्कार्य अटक गया है तब जमनालालजीकी याद आये बिना नहीं रहती। जमनालालजीके समयमें द्रव्यके अभावमें राष्ट्र-कार्य रुका हो ऐसा किसीके अनुभवमें नहीं है। कार्यकर्ताओंके वह आधार-स्तम्भ थे। उनके साथ मित्रकी तरह बर्ताव कर उनकी बाधाएं, मुश्किलें वह दूर करते थे। स्वयंके संसारसे कार्यकर्ताओंके संसारकी अधिक चिन्ता रखनेवाले आज भी कुछ लोग होंगे, फिर भी जमनालालजीमें इस तथा अन्य अनेक असाधारण कर्तव्योंके कारण सारे भारतमें उन्हें सहज प्राप्त हुआ विशिष्ट स्थान उनके अचानक देह-विलयके कारण रिक्त हो गया है। वह अब तक भरा नहीं गया, अभी तक खाली ही है, जिसके लिए विशेष अवसर पर उनकी कमीसे दुःख हुए बिना नहीं रहता।

"उत्तम व्यवहारसे धन जमाकर अनासक्त भावसे खर्च करनेवाला व्यक्ति उत्तम गतिको पाता है।"

संत तुकारामके इस आशीर्वाद और वरदानके सर्वस्वी पात्र, जमनालालजी के विषयमें अधिक क्या लिखूं? ईश्वरकी माया तो किसीकी भी समझमें नहीं आती। वह अपरम्पार है, इसमें शंका नहीं है।

केदारनाथ.

बम्बई (श्रीनाथजी महाराज)

५ अगस्त, १९६७



स्मरणिका : दो :

जीवन-जाह्नवी

'आपका ही है'

सीकर[1] के काशीकाबास नामक गांवमें जमनालालजीका जन्म हुआ। पिता कनीरामजी तीन भाई थे। तीनों भाइयोंके परिवार एक ही हवेलीमें रहते थे, हालांकि चूल्हा-चक्की अलग था। ३०-३२ जनोंसे भरीपूरी हवेली थी यह। कनीरामजीकी पत्नी बिरदीदेवी सुन्दर थीं और जमनालालजी भी अपनी मां पर ही गए थे—गोरा चेहरा और भरा वदन। मांजी उनके चेहरे पर जगह-जगह काला टिपका लगा देती थीं कि कहीं नजर न लग जाय। खाना-पीना, खेलना-कूदना ऐसे ही जीवन गुजर रहा था।

इस बीच वर्धाके सेठ बच्छराजजी बजाज सीकर आए। बच्छराजजी पांच भाई थे, लेकिन किसीको भी सन्तान नहीं थी। सो बच्छराजजी अपने दत्तक पुत्र रामधनदासजीको जात दिलाने सीकर गए। वहीं अकस्मात् रामधनदासजी की मृत्यु हो गई। सीकरवासी बहुत परेशान हुए। उन्होंने सोचा कि इन्हें तो अब बच्चा देकर ही वापिस भेजना चाहिए। रामधनदासजीके भी कोई सन्तान नहीं थी। सो वे काशीकावास कनीरामजीके यहां आए। बच्छराजजी की पत्नी सद्दीबाई भी बहुत सुन्दर थीं। उन्हें पीढ़े पर बैठाया। कुछ ही दिन पहिले जमनालालजीकी दादी (कनीरामजीकी माता) का स्वर्गवास हुआ था। सद्दीबाईको देखते ही जमनालालजी "दादी आ गई—दादी आ गई" कहते हुए सद्दीबाईके पास आ गए। सद्दीबाईने सहज भावसे उन्हें गोदमें बिठा लिया और कहा कि ये तो अपने आप मेरे पास आ गया! जमनालालजी की मांने कहा—"जी, आपका ही है।" और सद्दीबाईने गांठ बांध ली। जब कनीरामजी और बिरदीदेवीको बच्छराजजीके काशीकावास आनेका कारण पता चला, तो वे बहुत असमंजसमें पड़े। बच्छराजजी और सद्दीबाईने

---

१. राजस्थानके अन्तर्गत सीकर एक रियासत थी।

जमनालालजीको दत्तक लेनेका सुझाव कनीरामजीके सामने रखा। विरदीदेवी अपने बेटेको बहुत ही चाहती थीं। जमनालालजीसे अलग होनेका सपने तकमें खयाल नहीं कर सकती थीं। अन्तमें कनीरामजीने विरदीदेवीसे कहा—"हमें अपने वचनका तो पालन करना ही चाहिए, चाहे फिर वह बात सहज भावसे ही क्यों न कही गई हो।"

बच्छराजजीने कनीरामजीको भेंटस्वरूप कुछ धन देना चाहा। लेकिन कनीरामजी बहुत स्वाभिमानी व्यक्ति थे। वे इसके लिए किसी भी तरह तैयार नहीं हुए। अन्तमें बच्छराजजी व गांवके अन्य लोगोंके बहुत आग्रह करने पर कनीरामजीने कहा कि यदि आप कुछ करना ही चाहते हैं, तो इस गांवमें एक कुआं खुदवा दीजिए, ताकि यह गांव जल-कष्टसे मुक्ति पा सके।

इस तरह पांच वर्षकी उम्रमें जमनालालजी बच्छराजजीके दत्तक पौत्र होकर राजस्थानी क्षेत्र काशीकाबाससे महाराष्ट्रमें वर्धा गए। प्रान्त बदला, भाषा, रहन-सहन, खाना-पीना सब-कुछ बदल गया। फिर काशीकाबासमें चहल-पहलसे भरा घर, उन्मुक्त वातावरण था। वह सब छोड़कर वर्धाके वैभवपूर्ण लेकिन सुनसान घरमें आना पड़ा, जहां जमापूंजी तीन प्राणी थे—बच्छराजजी, सद्दीबाई और गोदकी विधवा मां[1]। न किसीसे जान न पहचान।

यूं तो बच्छराजजी दिलके बहुत अच्छे आदमी थे, लेकिन गाली-गलौजके बगैर बात नहीं करते थे। स्वभावके भी वे बहुत क्रोधी थे। जमनालालजीको यह सब बहुत अटपटा लगता था। ६ वर्षकी उम्रमें उन्हें मराठी स्कूलमें भेजा गया। लेकिन चार वर्ष बाद ही बच्छराजजीने उन्हें वहांसे हटा लिया और व्यापारका काम सीखने दुकान पर रख दिया। बच्छराजजी हमेशा उन्हें अपने सामने बिठाए रखते। जन्मके माता-पिताको पत्र लिखने आदिकी भी कड़ी मनाई थी। इतने बन्धनोंमें जमनालालजीका मन लगता तो कैसे?

बच्छराजजीकी पत्नी सद्दीबाई बहुत ही धार्मिक प्रवृत्तिकी भली स्त्री थीं। जमनालालजी पर उनका बहुत असर था। अपनी जन्मकी मांकी दूरी को वह सद्दीबाईकी वजहसे थोड़ा-बहुत शायद भुला भी पाते, लेकिन जमनालालजीके ११ वर्षके होते न होते सद्दीबाईका भी स्वर्गवास हो गया।

---

१. श्री रामधनदासजीकी पत्नी बसंतीबाई; विधवा होनेके बाद जिनकी गोदमें जमनालालजी को दत्तक लिया गया।

इससे जमनालालजी अनमने-से रहने लगे; स्नेहका एक बहुत बड़ा आधार टूट गया था।

सद्दीबाईके जानेसे बच्छराजजीको भी बहुत आघात लगा। उन्होंने सोचा कि पोतेकी शादी कर दें तो अच्छा, बहूका मुंह तो देख लूं। १३ वर्षकी उम्रमें जमनालालजीका विवाह मुझसे हुआ। मैं तो ९ वर्षकी बच्ची ही थी। हम दोनों ही विवाहके महत्त्वसे अनभिज्ञ और एक-दूसरेसे बिलकुल अपरिचित थे।

विवाहके समय जमनालालजीके जन्म-पिता कनीरामजीको भी सपरिवार सीकरसे बुलाया था। साथमें जमनालालजीके छोटे भाई बद्रीप्रसादजी भी थे। विवाहके बाद ही बद्रीप्रसादजीको मियादी बुखार आया और नौ दिन बाद ही वह चल बसे। उनकी उम्र कोई ११ वर्षकी रही होगी। जमनालालजी और कनीरामजी पर तो जैसे दुःखका पहाड़ ही टूट पड़ा। लेकिन अभी तो और भी दुःख उनके भाग्यमें बदे थे। करीब दस महीने बाद ही जमनालालजीकी दत्तक मांका भी देहान्त हो गया। वर्धाका सुनसान घर और भी सुनसान हो गया।

जब जमनालालजी १७ वर्षके हुए तब एक ऐसी घटना घटी जिससे उनकी सम्पूर्ण मनःस्थिति, संस्कार, भाव-स्वभावका पूरा दिग्दर्शन हो जाता है। जमनालालजीको बाहर गांव किसी विवाहमें जाना था। वे तैयार होकर दादा बच्छराजजीके पास आए। बच्छराजजीने कहा कि कानमें मोतीकी बाली तो पहन लो। जमनालालजीने इतना ही कहा कि पहननेसे क्या फरक पड़ता है? बच्छराजजीको गुस्सा आ गया और गालियोंकी बौछार शुरू कर दी। यह भी कहा कि बगैर मेहनतके पैसा आ गया है तभी बातें सूझ रही हैं। जमनालालजी सिर नीचा किए सब कुछ चुपचाप सुनते रहे। उसके बाद वे लक्ष्मीनारायण मन्दिरमें गए, कोट-टोपी वगैरा उतारकर एक तरफ रखे और बच्छराजजीको एक पत्र लिखकर घरसे चले गए। पत्रमें सारे सम्बन्धों को 'झूठे नाते' बताया गया था और उनकी सारी सम्पत्ति पर से अपने अधिकार छोड़ देनेकी बात कही गई थी। बादमें किसी तरह समझा-बुझाकर जमनालालजीको वापस लाया गया। लेकिन गोदप्रथाके विरुद्ध जमनालालजी के मनमें घृणाका भाव गहरा हो गया। इस घटनाके लगभग २३ वर्ष

वाद जमनालालजीने अपना जो आत्मवृत्त लिखा था उसमें एक जगह वह लिखते हैं :

"मुझे याद है कि मेरे जन्मके माता-पिता पर वहुत वर्षों तक, याने लगभग २०-२१ वर्षकी उमर तक, वहुत ही ज्यादा घृणा व क्रोध मनमें था कि उन्होंने मुझे क्यों गोद दिया? अपने स्वार्थके लिए मुझे गोद दे दिया आदि। मनमें यह क्रोध और घृणा रहनेके कारण मैं मेरे जन्मके पितासे वहुत वड़ी उम्र तक प्रेम व श्रद्धासे वात नहीं कर सका व उन्हें काकाजी कहकर नहीं वतला सका। . . . घृणाका कुछ अंश तो पिताजीकी मृत्यु तक भी, मेरी इच्छाके विरुद्ध भी रहा। . . ."

वच्छराजजी भले ही तेज स्वभावके हों और हमेशा गालियोंमें ही वात करते हों, लेकिन जमनालालजीको वे वेहद प्यार करते थे। जमनालालजी का भी उनसे लगाव होना स्वाभाविक ही था। इस घटनाके कुछ महीनों वाद ही वच्छराजजीका स्वर्गवास हो गया। जमनालालजीको आघात लगा। अगर कोई धीरज था तो यही कि जमनालालजीके सगे वड़े भाई माधवलालजी साथमें ही थे और वच्छराजजीका कारोवार अच्छी तरह संभालते थे। विधिको शायद यह भी मंजूर नहीं था। कुछ समय वाद माधवलालजीको मियादी वुखार चढ़ा और नौ ही दिनमें वह भी चल वसे। वहुत भारी सदमा जमनालालजीको लगा। वह इसे सह नहीं पाए और वेसुध हो गए। दादीका निर्मल प्यार, मांका लाड़, दादाजीका स्नेह और भाइयोंकी ममताकी याद उन्हें सताने लगी। उनका जन्मजात वैराग्य और भी तीव्र हो उठा। वह साधु वनने तथा गंगाके किनारे कुटिया वनाकर रहनेकी वात सोचने लगे।

'पिता का स्नेह'

फिर गांधीजी आये हमारे जीवनमें—तूफानकी तरह। जमनालालजीने उन्हें अपने पिताके रूपमें ग्रहण किया और आज्ञाकारी पुत्रकी तरह उनके विचारोंके अनुसार अपनेको ढालनेका प्रयत्न करने लगे। गांधीजीके विचारोंका जमनालालजी पर गहरा असर पड़ा। अव वह अक्सर वाहर रहने लगे—वापूकी रचनात्मक प्रवृत्तियोंमें पूरा हिस्सा लेते। तव पत्रोंका सिलसिला शुरू हुआ। उन्होंने मेरा जीवन अपने विचारोंके अनुसार ढालना शुरू

किया। लेकिन वह अपने विचार समझाकर ही गले उतारते थे। जो बात अच्छी होती थी, उस ओर इशारा-भर कर देते थे। लेकिन मुझ पर पति-भक्तिका तो रंग चढ़ा ही हुआ था। उनका पत्र मेरे लिए वेद-वाक्य जैसा होता था। इस सिलसिलेमें उनके एक पत्रका ध्यान आता है, जिसने मेरे जीवनको नया मोड़ दिया। जमनालालजी बापूके साथ दौरेमें थे। वहींसे उन्होंने मुझे पत्र लिखा कि बापूका आदेश है कि गहने त्याग दो। उन्होंने लिखा – "बापूने आजके भाषणमें कहा कि सोना कलियुगका रूप है। दूसरोंमें ईर्ष्या पैदा करता है, चोरका मन चोरी करनेका होता है, शरीर पर मैल जमता है, नाक-कानमें दुर्गंध आती है, ब्याजका नुकसान होता है।"

ये बातें रूबरू कहते तो शायद कुछ बहस हो जाती। लेकिन उनका पत्र तो मेरी जन्म-पत्री। बस, चिट्ठी मेरे सामने थी और मैं एक-एक गहना उतार कर सामने तख्त पर रखती जा रही थी, यहां तक कि पैरकी चांदी की कड़ी भी उनकी इच्छा होनेके कारण हिम्मत करके उतार कर रख दी। मारवाड़ी समाजमें प्रथाके अनुसार यह कड़ी मरने पर ही खोली जाती थी। गरीबसे गरीबके पैरमें भी कड़ी तो रहती ही थी।

शुरूमें गांधीजीके विचार बहुत क्रांतिकारी लगे। लेकिन ज्यों-ज्यों समझ बढ़ी, मुझ पर उनका असर होने लगा। जमनालालजीके पत्रोंका इस परिवर्तनमें बहुत बड़ा हाथ था। सन् १९२१ में मैंने उन्हें लिखा, "अपने तो प्राण ही बापूके अर्पण हैं। दूसरी तो बात ही क्या? मुझे तो स्वप्नमें भी बापू ही दीखते हैं। सोकर उठती हूं तो खादीके कपड़े पहने हुए। परमात्मा से आशीर्वाद मांगती हूं कि बापूका आत्मबल बढ़े। उन्हें कार्यमें सफलता हो। आपकी इच्छानुसार आपको तथा मुझे वह सद्बुद्धि प्रदान करें।"

जमनालालजीके जीवनमें सादगी, पवित्र आचरण और उच्च संस्कारों का बहुत महत्त्व था। हमारे बच्चे भी इन्हीं संस्कारोंमें पलें, इसका वह बहुत ध्यान रखते थे। उनके लगभग सब पत्रोंमें इस बातका उल्लेख रहता था और मैं भी उनके आदेशके अनुसार ही बच्चोंको उचित वातावरणमें रखनेका प्रयत्न करती थी। हमारे परिवारमें तीन पीढ़ीके बाद बच्चे हुए थे। उन पर सबका लाड़-प्यार रहना स्वाभाविक ही था। फिर भी मैंने भावना और श्रद्धावश बच्चोंको विनोबाजीके पास सीखनेके लिए छोड़ दिया। केवल लड़कों

को ही नहीं, बारह-पन्द्रह बरसकी लड़कियोंको भी उनके हवाले कर दिया। जहां विनोबाजीके आश्रममें लड़कोंका रहना कठिन था, वहां लड़कियोंकी तो बात ही क्या? सबसे समान परिश्रम कराया जाता था। जमनालालजी को बच्चोंकी इस उन्नतिसे स्वभावतः बहुत खुशी होती थी और अपने पत्रोंमें वह इस बातका उल्लेख करते थे। इससे मेरा भी उत्साह बढ़ता। पतिको जिस बातसे खुशी होती, उसमें सहायक होनेका संतोष रहता।

अब जमनालालजी बापूके 'पांचवें पुत्र' तो बन ही गए थे। बापूजीने उनका नाम शादीलाल भी रख छोड़ा था; कारण जमनालालजीको जान-पहचानवालोंके लड़के-लड़कियोंके लिए उचित संबंध खोजकर उनकी शादी करानेका बहुत शौक था। ऐसे कई विवाह उन्होंने कराये। वह एक डायरी रखा करते थे, जिसमें शादीके उम्मीदवार लड़के-लड़कियोंके नाम लिखे रहते थे।

जमनालालजी अपने अतिथि-सत्कारके लिए बहुत प्रसिद्ध थे। देशके बड़े से बड़े नेतासे लगाकर राजे-महाराजे और साधारण कार्यकर्ता वर्धा आते तो बजाजवाड़ीमें ही ठहरते। किसी असमंजसमें पड़े व्यक्तिको तांगेवाले ही बजाजवाड़ी ले आते। लेकिन आनेवाला कोई भी हो, जमनालालजी सबकी सुख-सुविधाका पूरा खयाल रखते। उन्होंने अपने बाल-बच्चों, सेक्रेटरियों तथा नौकर-चाकरोंको तो पूरी व्यवस्था रखनेकी हिदायत दे ही रखी थी, पर स्वयं भी जब तक सारी व्यवस्था देख नहीं लेते, उन्हें संतोष न होता था। वे हर व्यक्तिकी रुचिका भोजन बनवाते तथा उसके आरामका पूरा खयाल रखते।

जब जमनालालजी वर्धाके बाहर रहते और कोई मेहमान आनेवाला होता तो पत्रमें पूरी हिदायत लिखकर भेजते कि उन्हें किसी तरहकी तकलीफ न हो। वह चाहे कहीं भी रहते, अपने मेहमानोंका खयाल उन्हें बराबर रहता था।

जमनालालजीका हृदय त्याग, प्रेम और उदारताका अपार समुद्र था। जहां तक त्यागका प्रश्न था, मैं समझती हूं, मैंने अपने-आपको काफी उसके अनुसार ढाला। हालांकि यह अतिशयोक्ति ही थी, लेकिन वह मुझसे कहा करते थे कि त्यागमें तो तुम मुझसे आगे हो। और उसमें बड़ी बात कौनसी थी! मैं जो कुछ भी थी, सब उन्हींके कारणसे थी। एक बार उन्होंने बापूके सामने अपनी सारी जमीन-जायदाद छोड़नेकी बात कही। बापूने मुझे

बुलाकर कहा कि यह जमीन-जायदाद तुम ले लो। मैंने कहा– "बच्चे अपने भाग्यका खायेंगे। मेरा भाग्य तो इनके साथ बंधा है। जैसा ये खाएंगे पहनेंगे, वैसा ही मैं भी खाऊंगी-पहनूंगी। जिस सांपको ये छोड़ रहे हैं, उसे मैं गलेमें क्यों लपेटूं?"

लेकिन जहां तक उदारता व प्रेमका प्रश्न था, मैं उसे व्यावहारिकता से परे नहीं अपना सकी थी। उन्हें तो अपने और पराये बच्चोंमें समानता लगती थी। वे महिलाश्रमकी लड़कियोंकी सम्हाल रखते और मुझसे कहते कि इनकी मां बन जाओ। लेकिन मैं दूसरे बच्चोंको अपने बच्चों जैसा प्यार कहां कर पाती? यद्यपि जमनालालजी व बापूजीके प्रभावके कारण बड़ी-बड़ी बातें तो जीवनमें आसानीसे उतर गईं–गहना छूटा, घूंघट छूटा, मंदिरमें हरिजन-प्रवेशको राजी हो गई, खादी पहनी। लेकिन कई छोटी-छोटी बातें गले नहीं उतर सकीं। हर व्यक्तिको कुटुम्बी-जनके जैसा चाहना; यह मुझसे हो सकना कठिन था। उन्हें मेरा यह स्वभाव अच्छा नहीं लगता था। वह चाहते थे कि उदारता और प्रेममें मैं उनसे भी आगे निकलूं। पर यह मुझसे अंत तक नहीं बन पाया।

उनके अन्त समयके पत्रोंमें आध्यात्मिक झुकाव और आत्म-मंथनके संकेत मिलते हैं। वैसे तो वे शुरूसे ही योग-भ्रष्ट योगी थे। उनका सारा जीवन त्याग, प्रेम और सत्यकी एक साधना थी। २५ वर्षकी उम्रसे ही उन्होंने कई मृत्यु-पत्र लिखे थे। पिता बापू और गुरु विनोबाके संपर्कमें आनेसे उनके आध्यात्मिक झुकावको बल ही मिला। और फिर आखिरके दिनोंमें माता आनन्दमयीसे मिलनेके बाद तो उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्तिको और भी सहारा मिल गया। वह व्यापारिक व अन्य कार्योंसे निवृत्त हो गये। उनका प्रयत्न यही रहता कि ऐसी साधना करें कि अधिक से अधिक समय पारमार्थिक कामों और चित्त-शुद्धिमें लगे। इसके लिए उन्होंने गो-सेवाका कार्य चुना। नालवाड़ीके पास एक कुटिया उन्होंने बनवाई और वहां रहने लगे। कुटिया का नाम उन्होंने 'जानकी-कुटीर' रखा। वहां रहते हुए जैसे-जैसे गो-सेवा का काम बढ़ता गया, उस जगहको गोपुरी कहने लगे।

जमनालालजीका नया जीवन-क्रम देखकर मन कुछ खिन्न रहने लगा। मैं उनके काममें कुछ सहयोग तो दे नहीं पाती थी। उनकी आजादीमें बाधक

न बनूं, इस विचारसे खादीके प्रचार-कार्यके लिए सीकर चली गई। कुछ दिन बाद वापस वर्धा पहुंची और गोपुरी जाकर उनके साथ रहने लगी। लेकिन हम दोनों वहां पांच रोज ही साथ रह पाये।

'मां की ममता'

देहरादूनमें माता आनंदमयीसे मिलने पर उन्हें बहुत शांति मिली, ऐसा उन्होंने कहा, पत्रोंमें लिखा और अपनी डायरीमें भी जिक्र किया है। मुझे उसमें भी कोई आश्चर्यकी बात नहीं लगी। कारण कि जब पहली बार वह बापूजीसे मिले, तब भी उन्हें ऐसी ही शांति मिली थी। कितने ही सांसारिक आघात झेलनेके बाद बापूजीसे उनका संपर्क हुआ था। जीवनको नई दिशा मिलनेकी आशा उनमें जगी, और क्रमशः वह उन्हें मिली थी। उनको लगा कि गृहस्थ और सार्वजनिक जीवनमें रहते हुए भी शांति मिल सकती है। फिर विनोबासे परिचय हुआ। आध्यात्मिकताकी खुराक उन्हें मिली। जीवनमें और अधिक समाधान उन्हें मिलनेकी आशा हुई। कौटुंबिक जीवन उसके अनुरूप मिल नहीं पाया। बापू और विनोबाके बाद जीवनमें एक 'आध्यात्मिक मां' की कमी उन्हें खलती थी। ४.११.'३८ के अपने पत्रमें बापूजीको वह लिखते हैं—"मुझे तो लगता है कि अभी तक मेरी बुद्धि काम दे रही है। मेरेमें जो जो कमजोरियां हैं वे जिन कारणोंसे घुसी हैं, वह भी मालूम है, उनको निकालनेकी इच्छा भी है। यह इच्छा तीव्र बनाई जा सकती है; परंतु मेरे पास याने मेरे साथ कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसमें प्रेम, सेवा व उदारता भरी हुई हो, जिसके पवित्र चरित्र व प्रेममय वातावरण या सेवासे मेरे मनको शांति मिले। क्या इस प्रकारकी बहन या माई आपकी निगाहमें हैं? अगर निगाहमें हैं तो क्या उनका मेरे साथ रहकर मेरी सेवा करना संभव है?"

ऐसी मनोदशा लेकर वह माता आनंदमयीसे मिलने गये। जीवनमें शायद पहली बार ऐसा शांत, सात्त्विक, प्राकृतिक वातावरण उन्हें मिला था। कुटुंब-कबीलेकी चिंताओं, सार्वजनिक समस्याओं, कार्यकर्ताओंकी दिक्कतोंसे कोसों दूर ऐसा रमणीक वातावरण पाकर शांतिका आभास होना स्वाभाविक ही था। और ऐसे शुद्ध वातावरणमें जब माता आनंदमयीसे उनकी

भेंट हुई तो उन्हें मनभाती-सी चीज मिल गई। मांसे अन्य बातोंके अलावा जमनालालजीने एक इच्छा प्रकट की—"मां, मैं आपकी गोदमें सो सकता हूं?" वर्धामें भी जब जमनालालजी तड़के सुबह उठते तो अक्सर अपनी जन्मदाता मांकी गोदमें सिर रखकर लेट जाते थे और उनसे भजन गानेको कहते थे। इससे उन्हें बहुत शांति मिलती थी। सो मैं कल्पना कर सकती हूं कि इतने वर्षोंके व्यवधानके बाद जब वे माता आनंदमयीकी गोदमें सिर रखकर लेटे होंगे, तो उनके रोम-रोमको कितनी शांति मिली होगी!

'गुरु का सान्निध्य'

तीन चीजोंकी कमी बचपनसे ही जमनालालजीको सहनी पड़ी। पिता का स्नेह, मांकी ममता और गुरुका सान्निध्य। कालांतरमें बापूसे उन्हें पिता का मार्गदर्शन मिला और विनोबासे गुरुका ज्ञान। लेकिन संपूर्ण शांति तो उन्हें मांकी गोद पाकर ही मिल सकती थी। वह भी ऐसी मां जो आध्यात्मिकताकी खुराक उन्हें दे सके। बापूका मार्गदर्शन और विनोबाका ज्ञान पाकर जमनालालजीको एक उच्च आदर्श जीवनकी कल्पना तो मिली, उस आदर्शके अनुरूप जीवन बरतनेकी अदम्य इच्छा भी उनके सहवाससे जमनालालजीमें गहरी हुई। लेकिन उस ध्येय तक पहुंचनेके लिए सतत उत्साह बनाए रखनेवाली मां उन्हें अब तक नहीं मिल पाई थी और इस संबंधमें उनका मानस-मंथन तीव्रतर होता जा रहा था। माता आनंदमयीसे मिलकर 'आध्यात्मिक मां' की उनकी खोज पूरी हुई।

माता आनंदमयीके पाससे लौटकर जमनालालजी वर्धा आए। सब सार्वजनिक व व्यापारिक कामोंसे उन्होंने अपने आपको मुक्त कर लिया। सिर्फ गो-सेवाका काम उन्होंने अपने जिम्मे लिया और गोपुरीमें एक झोंपड़ी बनवाकर उसमें रहने लगे। कुछ समय बाद मुझे भी वहां ले गये। अब उनका चित्त काफी शांत हो गया था। वापूको उन्होंने लिखा भी: "मुझे अपने काममें, गो-सेवा संघमें व पू० विनोबाके साथ या अकेले ही देहातोंमें घूमनेसे ठीक शांति व उत्साह मिलता जा रहा है। मेरी गाड़ी ठीक चल रही है। . . ."

जानकीदेवी

अत्र कुशलं तत्रास्तु

कलकत्ता
पोष व० ९, सं० १९७४
६.१.'१७

श्रीमती प्रिय देवी,

यहां मारवाड़ी जातिमें विद्या-प्रचार हो, उसका प्रयत्न हो रहा है। श्री परमात्माने थोड़ी सफलता भी प्रदान की है। आशा है, और भी सफलता मिलेगी। श्री गांधीजी महाराज, उनको धर्मपत्नी व पुत्र यहां आये थे। अपनी तरफसे ही सब प्रबंध किया गया था। दस रोज तक इनकी सेवा करनेका अच्छा मौका मिल गया।

और तो इन दिनों सब ही आनन्द रहा, केवल श्री दामोदरदासजी राठीके स्वर्गवास होनेके समाचार सुनकर चित्त थोड़ा व्याकुल हुआ था। परन्तु अच्युत स्वामीजी महाराजके सत्संगका सौभाग्य मुझे कई दिनोंसे मिलता आया है, इसलिए जीवन-मरणका प्रपंच थोड़ा-बहुत समझ सका हूं। संसार स्वप्नवत् है, इसमें सुख ही नहीं जो भी है वह कल्पित है, इस प्रकार विचार करनेसे शांति मिलती है। सुख, दुख और यह संसार सब मिथ्या है। इसलिए शरीरसे जो कुछ सेवा बन सके, वह निःस्वार्थ भावसे करनेका हमेशा प्रयत्न रखना ही मनुष्य-जन्मका मुख्य कर्तव्य है। आशा है, तुम भी यदि यही ध्येय सामने रखकर कार्य करोगी तो तुम्हें भी अवश्य शांति मिलेगी।

सरकारसे 'रायबहादुर' की पदवी मिलनेके कारण कई जगहसे मित्रों के बधाईके तार-पत्र आदि आते हैं। यह सब तो आडंबर है। तथापि श्री परमात्माने किया तो इस तरहके आडंबरका भी सेवा करनेमें उपयोग हो सकेगा। ईश्वरसे यही प्रार्थना हमेशा करते रहना आवश्यक है कि वह सद्-बुद्धि प्रदान करें, निःस्वार्थ भावसे सेवा करनेके लिए बल प्रदान करें।

तुम्हारा
जमनालाल बजाज

दिल्ली जाते समय—रेलमें
पोष सुदी ४, सं० १९७७
११.२.'२१

प्रिय देवी,

कल सुबह १० बजे महात्माजीके साथ काशीसे रवाना होकर कल शामको ही अयोध्या आये। काशीमें चार रोज तक प्रातःकाल श्री गंगास्नान का खूब आनंद रहा तथा पू० गांधीजी, मालवीयजी और अन्य विद्वानों व महात्माओंके दर्शन तथा वार्तालापका लाभ मिला। अयोध्यामें पूज्य महात्माजीका व्याख्यान बहुत ही उत्तम हुआ।

महात्माजीके कारण जमाना एकदम बदल गया। मुझे इस दौरेमें बहुत आनंद तथा लाभ हो रहा है। परमात्माने किया तो हमारे जीवनकी उन्नति अवश्य होगी। तुम्हारी कई बार याद आया करती है। मुझे बहुत आशा है कि तुम किसी तरहसे भी पीछे नहीं रहोगी। धैर्य, शांति व सत्यके साथ कार्य करती रहोगी। मेरी समझसे कम से कम नौ मास तक कोई भी गहना-दागीना नहीं पहननेका तुम व्रत ले लो। नथ छोड़कर पांवकी कड़ी भी निकाल देनी चाहिये व स्वदेशी कपड़े ही उपयोगमें लाने चाहिये। कपड़ेके बारेमें तो तुमने निश्चय-सा कर ही लिया है।

सत्याग्रह-आश्रम तथा मेहमानोंकी पूरी निगाह रखना, चरखे व सूतका खूब प्रचार करना।

तुम्हारा
जमनालाल बजाज

वर्धा, १३.५.'२१

श्रीयुत प्राणनाथ,

पहली तारीख तक स्वदेशीका पूर्ण प्रचार हो जाय। दिन थोड़े हैं, परमात्मा कैसे लाज रखेगा? ईश्वरको इस वक्त तो हिन्दुस्तानकी लाज रखनी ही चाहिये। परीक्षा बड़ी है, हमारी शक्ति कम है।

मारवाड़ी और व्यापारी भाइयोंको यह सोचना चाहिये कि इस आपत्-कालमें वे अपना धन लगायें। अगर इस समय वे अपने धनको काममें न लायेंगे, तो क्या मरनेके पीछे लगावेंगे? यह कमाई इस देशके लोगोंके ही तो काममें आयेगी। जीते जी तो पेट भरता ही है, होना होगा सो होगा ही। ऐसा अच्छा अवसर फिर हाथमें न आयेगा। बापूको बड़ी तकलीफ है। ईश्वर रक्षा करेगा।

आपकी हितेच्छु
जानकी

वंबई,
आषाढ़ सुदी, सं० १९७८
२९.६.'२१

श्री प्रिय देवी,

परमात्माकी कृपासे पूज्य गांधीजी और हिन्दुस्तानकी बात रह जायगी, ऐसे चिह्न दिखाई देते हैं। तुम्हारी हार्दिक व शुभ विदाईके कारण मुझे कार्य में बराबर सफलता मिलती जा रही है। मनको बड़ा संतोष है। संभव है, मुझे पूज्य बापूजीके साथ मद्रास, लखनऊ, कलकत्ताकी तरफ जाना पड़े। स्वास्थ्य बहुत ठीक है।

तुम्हारा
जमनालाल

पटनाके नजदीक—रेलमें
१५.८.'२१

प्रिय देवी,

...श्री विनोबाजीकी सलाहसे बच्चोंकी पढ़ाईके लिए योग्य आदमी ढूंढ़नेकी व्यवस्था हो रही है। तुम भी आश्रममें बराबर जाती रहना। श्री भावेजीकी संगतका लाभ लेना और उनके उपदेश श्रवण करते रहना।

भावेजी बहुत विद्वान, पवित्र तथा चरित्रवान व्यक्ति हैं। इनकी सत्संगतिसे तुम्हें अवश्य लाभ होगा।

बापूजीके साथ रहनेसे मुझे तो बहुत फायदा पहुंचेगा, ऐसा मेरा विश्वास बंध गया है। मेरी इच्छा तो यह है कि तुम और मैं दोनों उनके साथ भ्रमणमें रहा करें, जिससे उनकी सेवा करनेका मौका भी मिले तथा हमारा ज्ञान भी बढ़े। ईश्वरकी दयासे हमारी यह इच्छा भी पूर्ण हो जायगी।

तुम्हारा
जमनालाल

तेजपुर – आसाम
भादवा बदी ४, सं० १९७८
२२.८.'२१

प्रिय देवी,

हमें हमेशा प्राणिमात्रके लिए प्रेममय बर्ताव कायम रखते हुए आनंदमय जीवन बिताना है। यह आनंद जितना बढ़ेगा उतनी ही जल्दी हमें ध्येयकी प्राप्ति होगी। इसलिए मन लगाकर कर्तव्य करती जाओ। खूब प्रसन्न रहो। जिंदगीको भार-रूप मत समझो। जहां तक स्वराज्य नहीं प्राप्त हो वहां तक स्वराज्यके सिवाय दूसरी बातोंका खयाल भी हमें नहीं आना चाहिये। इतना मन उसमें लगा दो। सत्याग्रह-आश्रममें हमेशा जाया करती होगी। वहां जानेसे मनको अवश्य शांति मिलेगी। यदि पूज्य विनोबाजीका तुम्हारे ऊपर विश्वास पैदा हो गया, तो आध्यात्मिक ताकत बढ़ानेका मार्ग भी वह तुम्हें बतायेंगे। उनकी सत्संगतिसे तुम्हारी दिनचर्या अवश्य सुधर जायगी।

सब बच्चों तथा कुटुम्बियोंसे खूब प्रेमका बर्ताव रखना। अतिथियोंका पूरा ध्यान रखना।

तुम्हारा
जमनालाल

सिलहट – आसाम
२९.८.'२१

प्रिय देवी,

बच्चोंको खूब प्यार करना तथा सबको आनंदमें रखना।

माया जितनी कम होगी, उतना ही आनंद ज्यादा बढ़ेगा। बस, प्रेम और आनंदके साथ तुमसे बिदा लेता हूं। वंदेमातरम्।

तुम्हारा
जमनालाल

कानपुर जाते हुए – रेलमें
१२.१०.'२१, विजया-दशमी

प्रिय देवी,

आज विजया-दशमी है। आजके दिन हमारे धर्मयुद्धकी विजय हुई थी। इसलिए परमात्मासे प्रार्थना है कि हमारे इस पवित्र धर्मयुद्धमें भी वह हमें शीघ्र सफलता प्रदान करे। मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि हमारी विजय अवश्य होगी। अब तो स्वदेशी पर ही पूरा जोर देना है। रात-दिन स्वदेशीका खूब प्रचार हो, विदेशी कपड़ा एकदम बंद हो जाय, इस तरहका उद्योग करना है।

तुम्हारा
जमनालाल

साबरमती, २.२.'२२

श्रीयुत प्राणनाथ,

सप्रेम नमस्कार! पत्र आपका मिला। बापूने बारडोली जाते वक्त प्रार्थनामें जो बातें कही थीं, सो मैंने भी बराबर सुनीं। कोई १५ मिनिट पहले जाकर उनके पास बैठ गई थी। मैंने दो बातें याद रखीं। एक तो उन्होंने कहा – यह नहीं मान लेना चाहिये कि हमारे मनका मैल धुल गया है; जैसे-जैसे धुलता है वैसे-वैसे ज्यादा-ज्यादा दीखता भी जाता है। इसलिए धोते ही जाना चाहिये। कहां तक धोयेंगे, ऐसा सोचकर उदासीन

नहीं होना चाहिये और यदि उदासीनता हो तो वह आनन्दमयी ही हो, चिन्तायुक्त नहीं।

दूसरी यह कि सत्यमें ब्रह्म है, किन्तु कहीं दीखता नहीं, इसलिए विश्वास नहीं आता। उपाय यह है कि इसको उल्टा करो याने करके देखो। तब तो विश्वास आयगा ही कि सत्यमें ब्रह्म है, कारण सत्य तो प्रत्यक्ष दीखता है।

दोनों बातोंसे समाधान मिला। गोमतीबेनके पास जो कुछ पठन-पाठन होगा, सुनने जाया करूंगी। गोमतीबेनने कहा है कि कामके कारण वह लिख नहीं पायेंगी। मुझे लिखनेको कहा है। मौन चालू है। अच्छी हैं।

खादी बेचनेके लिए गांवकी स्त्रियां पहली तारीखको गई थीं। अच्छी बिक्री हुई। ता० २ को हम सब गई थीं। १५० स्त्रियोंका जुलूस निकाला था। चार-चार स्त्रियोंकी दो-दो लाइनें बनी थीं। गाती हुई हम सब चली जा रही थीं—"कायदानो भंग करीशुं रे, अमे स्वराज्य लईशुं।"[1]

बापूजीने बड़ा कठिन प्रण लिया है। ईश्वर उन्हें यश दे और हिन्दुस्तानकी लाज रखे। आपकी आरती उतारकर कहती हूं कि कलकत्तेका काम जरूर यश लायगा।

आपकी हितेच्छु
जानकीदेवी

साबरमती आश्रम,
२०.३.'२२

प्रिय जानकी,

सप्रेम वंदेमातरम्। पूज्य बापूजीके मुकदमेका सब हाल समाचारपत्रोंमें पढ़ा होगा। मुझे इस समय यहां आनेसे बहुत लाभ हुआ। बापूसे खूब बातें हुई। बापूने हमेशाके लिए संग्रहके वास्ते एक बहुत ही सुन्दर पत्र[2] लिखकर दिया है। किसी समय अशांति मालूम हो तो उस पत्रसे बहुत लाभ पहुंचेगा।

---

१. हम कानून तोड़ेंगे और स्वराज्य लेंगे।

२. यह गुजराती पत्र आगे पृ० ३९-४४ पर बापूके स्वाक्षरोंमें ही दिया गया है।

कोर्टका दृश्य अद्भुत था। ऐसा मालूम होता था जैसे जज तथा उसके साथी ही दोषी हैं तथा वापू प्रेमसे उनको दोषसे मुक्त होनेका उपदेश कर रहे हैं। जज आदि अंग्रेज थे। फिर भी उन पर खूब असर हुआ। १८ मार्चका दिन हमेशा याद रखने योग्य है। यह दिन हमारे भविष्यके इतिहासमें विजलीकी तरह चमकता रहेगा। अच्छा होता, अगर तुम आ जातीं। खैर, कोई वात नहीं। वापूने मुझे खूब जोरसे पीठ ठोककर आशीर्वाद दिया। अव मुझे पूरा विश्वास है कि हम लोग अपनी उन्नति अवश्य कर सकेंगे। जिम्मेदारी खूब वढ़ गई है। अव कार्यकी दृष्टिसे जेल जानेकी विलकुल जरूरत नहीं मालूम होती। हां, शांति तथा विश्रामके लिए जानेकी इच्छा होना संभव है। परन्तु इसे रोकना होगा। कार्य करते हुए वैसा मौका आ गया तो आनंदकी वात है। जान-वूझकर नहीं जाना है। वंवईमें तथा यहां मेरे गिरफ्तार होनेकी चर्चा वहुत जोरसे थी। परन्तु उस चर्चामें कम से कम फिलहाल तो कोई दम नहीं है। अगर मुझे गिरफ्तार होना ही पड़े तो उस हालतमें 'हिन्दी-नवजीवन' में प्रकाशककी हैसियतसे मेरी जगह तुम्हारा नाम रखा जाय, ऐसा मेरा विचार हुआ था। इस वारेमें मैंने महात्माजीसे पूछा था। उन्होंने भी कहा कि ऐसे मौके पर तुम्हारा नाम रखा जा सकता है। खैर, हाल तो यह मौका नहीं है, जब आयेगा तव देखा जायगा।

हां, एक बात लिखनी रह गई। ता० १८ को सुवह मैं तथा कोर्टमें कई लोग रोये। प्रेम और वियोगके कारण मेरी आंखोंमें आंसू भर आये थे। मैंने उन्हें वाहर जाकर पोंछ डाला। वापू खूब हंसते थे। कई लोग खूब हिम्मत रखे हुए थे। . . .

अव खादीका कार्य जोरसे करना है। इसलिए वंवई विशेष रहना पड़ेगा। शायद तुम लोगोंको भी वंवई रहना पड़े। यहां आश्रममें सव प्रसन्न हैं। वा अपना कार्य नियमित रूपसे और धैर्यसे करती हैं। सरलादेवी आज जा रही हैं। तुम्हें याद करती हैं। . . .

तुम्हारा
जमनालाल

पुनश्च :– हालमें ही जो 'आश्रमभजनावलि' छपी है, वह तुम्हारे लिए भेजता हूं। इसे पढ़कर तुम्हें खूब लाभ मिलना संभव है। . . .

[illegible]

ચિ. [illegible],

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

નાં સ્વભાવમાં ફેરફાર
થઈ શકે. સ્વભાવની જાતે
સ્વભાવને પકડનારી
બેડીઓને તોડવી
રાખવાના [illegible]
ઈશ્વરની [illegible]
ન બને [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

પ્ર-

સ્ત્રીપુરુષ મિત્ર પવિત્ર
બહુ એકાન્ત ન સેવાય તેમ
રહેવું જોઈએ - કારણ તેઓમાં
તેમ થવાનો ભય છે
[illegible]
રહે તે જોખમભરેલું
નથી?-

ઉ૦ [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
તેનું [illegible]
[illegible] તેનું [illegible]

[illegible] ન તો એ [illegible]
સ્વભાવ છે - [illegible]
પણ [illegible]
[illegible] માણસો તેનું
[illegible] - [illegible]
[illegible]
[illegible] તેમનો વધારે
[illegible]

[illegible]
[illegible] ઘણું [illegible]
[illegible] કરી રહ્યા
છું - [illegible]
[illegible]
17-2-22 [illegible]
[illegible]
[illegible]
બાપુના આશીર્વાદ

'बहुत ही सुन्दर पत्र'

: १७ :

अ

गुरुवारकी रात

चि० जमनालाल,

जैसे-जैसे मैं सत्यकी शोध करता जाता हूं वैसे-वैसे मुझे लगता है कि उसमें सब आ जाता है। अहिंसामें वह नहीं है, लेकिन उसमें अहिंसा है, ऐसा अनेक बार लगता है। निर्मल अन्तःकरणको जिस समय जो लगे वह सत्य; उस पर दृढ़ रहनेसे शुद्ध सत्य मिल जाता है। उसमें कहीं धर्म-संकट भी मैं नहीं देखता। लेकिन अहिंसा किसे कहना, इसका निर्णय करनेमें बहुत बार मुसीबत आती है। जन्तु-नाशक पानीका उपयोग भी हिंसा है। हिंसामय जगतमें अहिंसामय होकर रहना है। वह तो सत्य पर दृढ़ रहनेसे ही हो सकता है। इसलिए मैं तो सत्यमें से अहिंसाको फलित कर सकता हूं। सत्यमें से प्रेम मिलता है। सत्यमें से मृदुता मिलती है। सत्यवादी सत्याग्रही बिलकुल नम्र होना चाहिए। उसका सत्य जैसे-जैसे बढ़े वैसे-वैसे वह नम्र होता जाय। यह मैं क्षण-क्षण अनुभव कर रहा हूं। मुझे इस समय सत्यका जितना खयाल है उतना साल भर पहले नहीं था और इस समय मेरी अल्पता मुझे जितनी लगती है उतनी एक वर्ष पहले नहीं लगती थी।

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' इस वाक्यका चमत्कार मुझे दिनोंदिन बढ़ता हुआ लगता है।

इसलिए हमें हमेशा धीरज रखना चाहिए। धीरज रखनेसे हमारे अन्दर की कठोरता चली जायगी। उसके जानेसे हममें सहिष्णुता बढ़ेगी। अपनी भूलें हमें पहाड़ जैसी लगेंगी और जगतकी राई जितनी लगेंगी। शरीरकी स्थिति अहंकारको लेकर सम्भवित है। शरीरका आत्यन्तिक नाश ही मोक्ष है। अहंकारका आत्यन्तिक नाश जिसमें हुआ है, वह तो सत्यकी मूर्ति बन

जाता है। उसे ब्रह्म कहनेमें भी बाधा नहीं हो सकती। इसीलिए परमेश्वर का सुन्दर नाम तो दासानुदास है।

स्त्री, पुत्र, मित्र, परिग्रह सभी इस सत्यके अधीन रहना चाहिए। सत्यकी शोध करते हुए इन सबका सर्वथा त्याग करनेके लिए हम तत्पर रहें तभी सत्याग्रही हुआ जा सकता है।

इस धर्मका पालन अपेक्षाकृत सहज हो जाय इस हेतुसे मैं इस प्रवृत्तिमें पड़ा हूं और तुम्हारे जैसोंको होमनेमें हिचकिचाता नहीं हूं। उसका बाह्य स्वरूप हिन्द स्वराज है। उसका सच्चा स्वरूप हर व्यक्तिका स्वराज है। अभी एक भी ऐसा शुद्ध सत्याग्रही परिपक्व नहीं हुआ, इससे ढील हो रही है। लेकिन इससे घबरानेका जरा भी कारण नहीं है। वह तो अधिक प्रयत्नका कारण है।

तुम पांचवें पुत्र तो बने ही हो। लेकिन मैं लायक बननेका प्रयत्न कर रहा हूं। दत्तक लेनेवालेके ऊपर कोई साधारण जवाबदारी नहीं है। ईश्वर मुझे सहायक हो और मैं वैसा लायक आजसे ही बनूं।[1]

सावरमती जेल
१७.३.'२२

बापूके आशीर्वाद

बंबई
चैत सुदी १२, सं० १९७९
९.४.'२२

प्रिय देवी,

तुम शांतिसे अपना कर्तव्य करती रहना। बापूको कैदकी सजा हुई, उस दिनसे मनमें ऐसी इच्छा थी कि हो सके वहां तक चरखा थोड़ी देर तो अवश्य काता जाना चाहिये। परन्तु कई कारणोंसे यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी। इससे भी मनमें थोड़ी अशांति रहती है। यहां घूमनेका कार्य

---

१. राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजीकी समग्र जीवन-साधनाको 'बिन्दुमें सिन्धु' के समान प्रदर्शित करनेवाला यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पत्र 'अंडर ट्रायल' कैदीकी हैसियतसे अपने पांचवें पुत्र 'चि० जमनालाल' को 'बापूके आशीर्वाद' के रूपमें लिखा गया था। इसे जेल सुपरिन्टेन्डेन्टने ता० १७.३.'२२ को हस्ताक्षर करके उन्हें भिजवाया था।

ज्यादा रहता है। तुम तो कम से कम एक घंटा चरखा कातनेका हर रोज प्रयत्न किया करो।

अभी अगर मैं दूसरी जगह जाऊं तो जो कार्य शुरू हुआ है, उसमें थोड़ी हानि पहुंचना संभव है। परन्तु एक बार वर्धा आकर फिर ता० २० के लिए कलकत्ता जाना आवश्यक है। मैं बहुत करके ता० १५ को सुबह वर्धा पहुंच जाऊंगा।

बापूके जेलमें गये बाद कार्यकी जवाबदारी ज्यादा मालूम होती है। परन्तु जाते समय बापू जो देन अपने हाथका लिखा हुआ उपदेश दे गये, उससे बड़ी शांति मिलती है और जिम्मेदारीका भान होता है।

अब तुम्हें कम से कम फालतू गहने तो बेचकर वे रुपये खादीमें लगा देने चाहिये। जो गहना बेचना हो सो समय मिले तो अलग निकालकर रख छोड़ना। इंदौरमें महासभा अच्छी हो गई। स्त्रियां खूब आई थीं। प्रार्थना रोज हुआ करती होगी। जहां तक बन पड़ता है, आगे-पीछे प्रार्थना करनेका ध्यान मैं भी रखता हूं। भाई देवदास गांधी और जमनादास यहीं पर हैं। रामदास भी आये थे। कल ही वापस गये हैं। इन लोगोंके पास रहनेसे शांति मिलती है।

...तुम पू० विनोबाजीसे मिलती ही होगी।

तुम्हारा
जमनालाल

बंबई, १३.८.'२३

प्रिय देवी,

सप्रेम वंदेमातरम्। तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर संतोष हुआ। तुम्हें पूज्य बापूके उपदेशके अनुसार अपने दोष ही देखने चाहिए। ज्यों-ज्यों अंतःकरण शुद्ध होता जायगा, दूसरोंके दोष देखनेकी आदत मिटती जायगी। मुझे पूरा विश्वास है।

तुम्हारा
जमनालाल

ओंगल, १०.१.'२४

प्रिय देवी,

सप्रेम वंदेमातरम्। कोकनाडा-कांग्रेसने रचनात्मक कार्य, खासकर खादीके कार्यको खूब महत्त्व दिया है। खादी-बोर्डको विशेष अधिकार भी दिया है। पूज्य राजगोपालाचारी, मगनलालभाई गांधी, शंकरलाल बैंकर आदिकी सलाह से खादी-बोर्डका काम एकदम शुरू करना पड़ा है। मैं इस बोर्डका सभापति हूं। इस कारण मुझे भी साथमें घूमना पड़ता है। दक्षिण भारतमें अंदाजन एक मास घूमना पड़ेगा। यहां खादी-प्रचारका कार्य खूब हो सकता है। कई गांवोंको देखनेका मौका लगा, तो मालूम हुआ कि यहां सूत कातनेवाली स्त्रियां और बुननेवाले जुलाहोंकी काफी अच्छी संख्या है। इन्हें बराबर रुई देकर इनसे सूत, कपड़ा लेने व बेचनेकी अच्छी व्यवस्था हो जाय, तो लाखों रुपयेकी खादी आंध्र प्रदेश बना सकता है। यहां घूमनेसे पूज्य बापूजी द्वारा खादी को महत्त्व देनेका कारण पूरी तरह समझमें आया। अब तो रोज चरखा काते बिना शांति नहीं मिलती। मद्रासमें चरखा साथ रखनेकी व्यवस्था करना है। हिन्दुस्तानीका भी प्रचार इस प्रांतमें अच्छा हो रहा है।

इस बारकी कांग्रेस ठीक हुई। प्रबंध बहुत ही उत्तम था। तुम्हारी गैर-हाजिरी कई बार याद आया करती थी। सब छोटे-बड़े नेता, प्रतिनिधि एक ही मैदानमें झोंपड़ियोंमें रहते थे। मोटर-गाड़ीकी जरूरत नहीं पड़ती थी। स्टेशन भी वहीं पर बना दिया गया था। आखिरी दिन तमाम नेता-प्रतिनिधियोंका, हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, अंत्यज, सबका एक ही पंगतमें बैठकर भोजन हुआ। पंगत बहुत बड़ी और देखने योग्य थी।

तुम्हें थोड़ा भी समय मिले तो नियमपूर्वक कातना शुरू कर देना। आश्रममें प्रार्थना करने या गीता समझनेमें थोड़ा समय लगाना चाहिए। अब हम लोगोंको निश्चित जीवन बिताना होगा। कमजोरियां खूब याद आया करती हैं। परमात्माकी कृपा और तुम्हारे तपकी मददसे, आशा है कि एक दिन मनको पूरा संतोष मिल सकेगा। तुम्हारे लिए मेरे हृदयमें भक्ति व पूजाका भाव रहता है, परन्तु मेरी ओरसे व्यवहारमें वह पूरी तरह प्रकट नहीं हो पाता है। यह देखकर कई बार दुःख और लज्जाका अनुभव करता हूं। परन्तु तुम मेरे हृदयको भलीभांति जान गई हो, इसलिए गलतफहमी नहीं

होती। इससे थोड़ी शांति भी रहती है। तुम्हारे साथ खूब मृदुता और प्रेमका व्यवहार करनेका कई वार निश्चय करने पर भी हृदयका प्रेम मैं वातचीतमें प्रकट नहीं कर पाता। इसकी कमी मालूम हुआ करती है। प्रयत्न करने पर परमात्माकी दयासे यह बाहरी कठोरता भी कम हो जायगी और अपना घर-कुटुम्ब भविष्यमें आदर्श बन सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास होता है। आज वह आदर्श नहीं बन पाया है, तो इसका विशेष जिम्मेदार मैं ही हूं।

जमनालालका वन्देमातरम्

वीरुदुपट्टी, १८.१.'२४

प्रिय देवी,

अभी यहां पूज्य राजगोपालाचारीके साथ आया हूं। इधरके लोगोंमें पूज्य बापूके लिए बड़ी भक्ति है। खादीका प्रचार भी गांवोंमें ठीक हो रहा है। दिन-ब-दिन और बढ़नेकी आशा है।

पूज्य बापूजीका आपरेशन तो ठीक हो गया। एक बड़ी भारी घाटीमें से बचाव हुआ। अब तो ऐसा मालूम होता है कि शायद सरकार उन्हें शीघ्र छोड़ दे। देश और विलायतकी हालत दिन-ब-दिन खराब होती जाती है। सरकार भविष्यका विचार करेगी तो छोड़नेमें ही उसे एक प्रकारसे लाभ है। परंतु बापूजी अगर हम लोगोंके, याने देशकी जनताके, जोरसे छूटें तो उसका विशेष प्रभाव पड़ेगा। खैर, जो होगा ठीक ही होगा।...

पुनश्च :- पू० राजाजीके साथ रहनेसे बड़ी शांति मिलती है। चरखे और खद्दरके ही प्रायः स्वप्न आया करते हैं।

जमनालालका वन्देमातरम्

दिल्ली, आसोज व० ९, सं० १९८१
२१.९.'२४

प्रिय देवी,

पूज्य बापूजीसे मिला। बातें हुईं। बापूने बहुत बड़ी तपश्चर्या आरंभ की है। बापूका आत्मिक बल और परमात्मा पर उनकी जो श्रद्धा है उसे

देखते हुए विश्वास होता है कि उपवास पार पड़ जायेंगे। वा भी आज आई हैं। मेरे पास ही ठहरी हैं। वापूकी तपश्चर्या देखकर मनमें वहुत-सी कल्पनाएं उठा करती हैं, परंतु खुदकी कमजोरी देखकर लज्जा होती है। वापूके इस व्रतसे हम लोगोंके जीवन और आचरणमें फर्क आ जाय, तो भावी जीवन अवश्य सुखकर वीत सकता है। मेरी राय तो यह है कि तुम अहमदावाद-आश्रममें जानेका विचार रखो। वहां रहनेसे आध्यात्मिक लाभ जरूर संभव है। मनकी कृपणता कम होकर दयाभाव, विश्व-प्रेम व आत्मिक वल वढ़ानेका साधन वहां मिलेगा। वच्चोंकी पढ़ाईमें वहांकी संत-संगतिसे पूरा-पूरा लाभ होगा। तुम्हारा वहां जाना हुआ तो मैं भी यहींसे राजपूताना और अहमदावाद होकर वर्धाकी ओर जानेका विचार करूंगा। तुम वालकोंको लेकर कव तक आओगी लिखना। चि० राधाकिसन वापूकी सेवामें रहता है।

विनोवा आज यहां पहुंच गये। पूज्य काकाजी व मांजीको भी इस तरह के मौकेका रहस्य समझाना जरूरी है। तुमसे समझाया जावे उतना जरूर समझाना। चरखा घर भरमें वरावर चालू रहे। वापूके लिए हृदयसे प्रार्थना होती रहे, इसका खयाल रखना।

जमनालालका वन्देमातरम्

सावरमती, १५.११.'२६

प्राणेश्वर,

दीप-मालिकाका पूजन वावूने कराया सो ठीक। आपको काम था, सो आपको तो छिप जाने पर भी लोग छोड़ेंगे नहीं।

आपने लिखा कि वापूजीकी संगतसे उदार तथा ध्येयपूर्ण जीवन वितानेका निश्चय करके आओगी। सो उदारतामें तो, मैं जानती हूं थोड़ा फरक तो जरूर पड़ेगा। कारण, यहां पैसोंकी छूट न होने पर भी जरूरत होने पर राजाओंसे ज्यादा उदारता देखकर वार-वार विचार आया करता है। जीवन भरका निश्चय करना खेल थोड़े ही है, वह तो मुश्किलसे होगा। जैसे-जैसे ज्ञान होगा, त्याग हो जायेगा। त्यागसे ज्ञान नहीं होगा।

कमलाकी मां

नासिक रोड सेंट्रल जेल,
कैदी नं० २१८१
ता० २१.६.'३०

प्रिय जानकी,

ईश्वरकी अपने ऊपर पूर्ण दया व पूज्य वापूजीका आशीर्वाद है। तभी हम लोगोंकी इस प्रकारकी वुद्धि हुई और सेवा करनेका यानी अपनी कमजोरी कम करनेका मौका मिला। तुम्हारी वहादुरी व हिम्मत देखकर मनमें सुख होता है। . . . मुझे तो तुम्हारे वारेमें व पूरे कुटुंवके वारेमें पूरा संतोष है। तुम सव पर मुझे अभिमान है। मेरी यह इच्छा अवश्य है कि इस प्रकारके धर्मयुद्धमें हम लोगोंमें से सवोंकी या जो सवसे ज्यादा प्रिय हो उसकी आहुति पड़ जाय, तो वह हमारे लिए परम संतोष व सुखकी वात होगी। एक दिन मरना तो है ही, फिर जिससे देश, जाति व कुलकी प्रतिष्ठा वढ़े, वैसी पवित्र मृत्यु मिले तो फिर क्या कहना? अव तो जेलकी मनमें नहीं रही। अगर इच्छा है तो ऐसी मृत्युकी ही है। खैर, जो भावी होनी होगी, सो होगी। चिंता करनेका समय नहीं है। अभी तो वहुतसे खेल खेलने और देखने हैं, ऐसा लगता है। भविष्य वहुत ही उज्ज्वल दिखाई देता है।

अगर तुम गिरफ्तार न हो और काममें अड़चन न पड़े, तो आगामी ३ जुलाई, वृहस्पतिवार, को या एक-दो रोज आगे-पीछे चि० कमलनयन व चि० शांताको लेकर मिलने आ जाना। आनेका निश्चित समय यहां सुपरिन्टेन्डेन्टको पहलेसे लिखकर भिजवा देना, जिससे मुझे मालूम रहेगा।

जमनालालका प्रेमपूर्वक आशीर्वाद

नासिक रोड जेल,
२३.१०.'३०

प्रिय जानकी,

तुम्हारे लिए मनमें स्थान तो पहले ही अच्छा था, पर इस वारकी तुम्हारी हिम्मत, सेवा और योग्यताका विचार करके जो सुख व संतोष

मुझे मिलता है, वह शब्दोंमें कैसे लिखूं? हम लोग बहुत ही पुण्यशाली हैं। ईश्वर व पू० बापूजीकी दया और आशीर्वादसे अपने जितने सच्चे सुखी संसारमें प्राय: बहुत कम लोग होंगे। आशा है, जेलमें से हम लोग और भी अधिक लायक व योग्य बनकर निकलेंगे। मैं आजकल पांच बजे बराबर प्रार्थना करके 'रघुपति राघव राजा राम' कहते हुए चरखा चलाता हूं। बड़ी शांति व आनंद मिलता है। रातको भी बहुत बार भजन चलता है। कल नये दिनसे पींजन सीखना शुरू किया है। खूब आनंद आता है।

जमनालालका वन्देमातरम्

धूलिया जेल, १४.७.'३२

प्रिय जानकी,

विनोबाकी जबानी तुम्हें यहांकी सब हकीकत मिलेगी। इस मासके आखिर तक तुम छूट आओगी। चि० कमल भी छूट जायगा। बादमें मुझसे एक बार मिलने यहां आ जाना।

पू० विनोबाकी संगतिसे बहुत सुख, शांति और लाभ मिला है। चि० कमल, मदालसा, रामकृष्ण आदिकी पढ़ाई और रहन-सहनकी व्यवस्थाके बारेमें विनोबासे बहुत चर्चा हुई है। हम दोनों एकमत हो गये हैं। आशा है, तुम भी उसे स्वीकार करोगी। विनोबाजीने कमलको साथ रखनेकी, उसे उत्तम अंग्रेजी पढ़ानेकी जिम्मेवारी लेना स्वीकार कर लिया है।...

जमनालालका वन्देमातरम्

वर्धा
३०.८.'३३

प्रिय जानकीदेवी,

पू० बापूजीने तुमको वहीं–पूनामें–रहनेको कहा है, सो एक तरह ठीक ही है। अगर तुम उनके कहनेसे वहीं बनी रही और खुदा-न-खास्ता

प्लेगकी शिकार हो गई तो मुझे तो संतोष रहेगा। ऐसी हालतमें तुम्हें पू० बापूजीका आशीर्वाद मिल जायगा और उसके साथ ही साथ स्वर्ग भी मिल जायगा। इससे अब मुझे तुम्हारी चिंता तो कम है।

मेरी तबीयत ठीक है। उसकी चिंता न करना। मरते वक्त तो चिंता बिलकुल ही न करना, नहीं तो फिर संसारमें वापस आना पड़ेगा। जो डरता है, उसे ही प्लेग दबोचता है। डरनेवालेके शरीर-तंतु कमजोर हो जाते हैं और कमजोरीमें ही बाहरी बीमारियोंको मौका मिल जाता है। इसलिए अगर मरना नहीं चाहती हो तो डरना मत। तुम अबकी बार बच गई तो कम से कम प्लेगका डर तो तुम्हारा चला ही जायगा। खूब उत्साह और आनंदमें रहना। दूसरे कोई घबरावें तो उनकी घबराहट दूर करते रहना। विनोदमें लिखा है।

मेरी गवाही बहुत करके ता० ५ तक हो जायगी, ऐसी आशा है। पूना आऊं क्या? या तुम बापूजीको यहां ला सकती हो? अब तो तुम रामेश्वरसे सेक्रेटरीका काम ले सकती हो।

जमनालालका वन्देमातरम्

अल्मोड़ा
जुलाई '३४

हे भगवान,

सेठजीको पत्र एक साल दूसरोंसे लिखवानेका विचार था, इसलिए यह भगवानके नामसे लिखाती हूं।

अबकी बार यहां हमेशा जितनी ही वर्षा कई दिनोंसे नहीं आई है। कोठियोंका पानी खत्म होने तक शायद आ जाय। कल जरा बादल आये थे। गुलाबके फूल अबकी बार नहीं दिखाई देते, पानी तथा ठंडा न होनेका ही कारण होगा।

नमस्कार! कार्यक्रम पीछे लिखेंगे।

जानकीका प्रणाम

अंधेरी, बंबई, १८.११.'३४

प्रिय जानकी,

आज पैंतालीस वर्ष पूरे होकर छियालीसवां शुरू हो गया। . . . पिछला साल ठीक नहीं गया। शारीरिक, मानसिक चिंता बनी रही। ईश्वरसे प्रार्थना है कि इस वर्ष सद्बुद्धि रखे, मनमें उत्साह बनाये रखे। तुम भी प्रार्थना करना।

पू० बापूजी, विनोबा आदि गुरुजनोंको यहां मनसे ही प्रणाम कर लिया है। बालकोंको आशीर्वाद भी दे दिया है। चि० कमल आज रवाना होकर आ रहा है। उसकी वहां जल्दी ही पढ़ाई चालू हो जावे, इसका खयाल रखना।

जमनालालका वन्देमातरम्

मोरां सागर
८.५.'३९

प्रिय जानकी,

मेरे नाम व विट्ठलके नाम ता० ३.५.'३९ के लिखे हुए तुम्हारे दो पत्र मिले।

जो कवित्त मैंने लिखा था, वह मेरा बनाया हुआ नहीं था। मुझमें कविता बनानेकी योग्यता कहां है? यह शक्ति तो परमात्माने तुम्हें व तुम्हारी संतानोंको ही—जिसमें एक जामाता भी शामिल है—बख्शी है। मैंने जो यह दोहा:

कहां जाय कहां ऊपजे, कहां लड़ाए लड्ड,
ना जाने किस खड्डमें ये जाय पड़ेंगे हड्ड!

लिखा था, वह मुझ पर ही लागू होता था। श्री कुशलसिंहजी, डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस, जिनकी देखरेखमें मैं हूं, ने यह दोहा एक रोज कहा। मुझे ठीक लगा और मैंने नोट कर लिया। वह तुम्हें भी लिख दिया।

मेरा गाड़ा ठीक चल रहा है। चिंता करनेका कोई कारण नहीं है। भरतजीकी एक चौपाई, जो मुझे बहुत पसंद है, लिख देता हूं :

हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा, एकहि भाँति भलेंहि भल मोरा।
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू, लागत मोहि नीक परिनामू॥

अगर शरीर साथ दे तो घूमनेका अभ्यास तुम्हें भी जरूर धीरे-धीरे बढ़ाते रहना चाहिए। उस समय जप भी कर सकती हो।

जमनालालका वन्देमातरम्

जयपुर स्टेट कैदी
१२.७.'३९

प्रिय जानकी,

तुम्हारे कई पत्र मिले, कविता भी मिली। हीरेकी परख तो जौहरी ही जान सकता है, किसान जाट क्या जाने? नवाब होता तो बिना देखे-समझे भी तारीफके ढेर लगा देता। कोई जौहरी मिलेगा तो उससे परीक्षा करानेका ख्याल रखूंगा।

जमनालालका वन्देमातरम्

पवनार, १८.९.'४०

पूज्यश्री,

आपका सच्चाई और हृदयसे भरा पत्र पढ़कर आंखमें थोड़ा पानी आ गया। लगा कि भगवानको भी संतोंकी परीक्षामें खूब मजा आता है। बादमें मनको खूब शांति हुई। रातको अच्छी नींद आई।

कलसे तो मुझे इतना आनंद हो रहा है, जैसे पवनार रहनेका पूरा फल मुझे तत्काल ही मिल गया हो। मेरा यह आनंद आपको पहुंचेगा ही—जाने अनजानेमें भी 'करंट' तो चलता ही है न?

अब आपका गाड़ा संतोषकारक ही चलनेवाला है। आप तो बापूजी से भी ज्यादा भाग्यशाली हो। आपके जाये बालक आपका इहलोक-परलोक दोनों सुधारनेवाले हैं। वे आपको जीवन-मुक्त कर रहे हैं न! ...

जानकीका प्रणाम

वर्धा
६.११.'४०

प्रिय जानकी,

पू० बापूजी बहुत करके उपवास अब नहीं करेंगे, आज निश्चय हो जायगा। जवाहरलाल तो ठिकाने–जेल–पहुंच ही गये हैं। तुम जल्दी अच्छी हो जाओ तो ठीक रहे। मेरा इरादा अब ज्यादा समय वर्धामें ही रहनेका कई कारणोंसे हो रहा है। यहां सब अच्छे हैं।

जमनालालका वन्देमातरम्

जून, १९४१

पूज्यश्री,

आपकी लीला अक्सर समझमें नहीं आती। घरका हर आदमी आपके जैसा बन जाय, यह तो हो नहीं सकता। आप मुझे अपनेसे भी ऊंचा देखना चाहते हैं और इसी आशासे क्रोध भी आपको हो जाता है। यह क्रोध तो प्रेमका ही रूप है। मैं तो आपको योग-भ्रष्ट योगी ही समझती आई हूं और इसी धारणाको लेकर डरते हुए जीवन निबाहती आई हूं। आपकी लीला ऊपरसे कठोर पर भीतरसे कोमल–यह मैं क्या जानूं!

कइयोंमें एक पागल

सीकर
२२.११.'४१

पूज्यश्री,

पत्र पढ़ा। समाचार जाने। आपकी तरफसे भी निर्भयता रूपी जीवन-दान मिल ही गया। अब आप आनन्दसे विचरो। मैं भी रोज ही आपको याद आये बिना थोड़ी ही रहूंगी? मुझे आपको कुरेदे बिना चैन नहीं पड़ती और आपके जपमें विघ्न पड़े बिना नहीं रहता! बस, यही मौज है। सो भी भगवानकी दया ही है।

जानकीका प्रणाम

गोपुरी, वर्धा
२७. ११. '४१

प्रिय जानकी,

तुम्हारा छोटा-सा पत्र मिल गया। चि० राधाकिसनके साथ ही आना ठीक रहेगा, क्योंकि चि० कमलाको बंबई व ओमको शायद एक विवाहमें जाना पड़े। मेरा गाड़ा तो रास्ते लग गया दिखता है, इससे मनमें समाधान व उत्साह है। गोपुरीकी झोंपड़ी ठीक जगह व ठीक मौके पर बन गई है। इसमें तो अकेलेका मन भी लग सकता है। फिर मेरे साथ तो गोपी व विट्ठल भी हैं। घूमने-फिरनेके समय अच्छा दल-बल हो जाता है। महेश भी बीच-बीचमें आता रहता है। बीचमें दो-तीन रोज एक योगी आ गये थे। वह गो-सेवासे काफी प्रेम रखते थे, भजन भी गाया करते थे। अब तो गोपुरीमें ही रिषभदास, गोपी वगैरा मिलकर भोजन एक वक्त बनाया करेंगे।

जमनालालका वन्देमातरम्

गोपुरी, वर्धा
१९. १२. '४१

प्रिय जानकी,

यहां सब ठीक चल रहा है। चि० मदू व राम परसों मेरे साथ भोजन करने यहां मेरी झोंपड़ी – महल – में आये थे। एक रोज शांताबाईके पास गये थे। मदू, बेबी खुश है। अब तो कमला व ओम्की कलकत्तेकी कुछ मित्र-मंडलीका यहां आना संभव हो रहा है। गांवमें मकान देखना शुरू है। इन दिनों पू० विनोबाके प्रवचन बहुत ही भावपूर्ण हो रहे हैं। सुरगांवमें भी ठीक संघटन जम रहा है। चि० कमल, सावित्री कलकत्ते पहुंच गये होंगे। संभव है, इधर जल्दी ही आ जावें। तुम्हारा पू० मां को लेकर यहां किस तारीख तक पहुंचनेका विचार है? मेरा ठीक चल रहा है। मनको ठीक

शांति व उत्साह मिल रहा है। परमात्माने किया तो अब भविष्य उज्ज्वल दिखाई देने लग गया है। लड़ाईके कारण कलकत्ते वगैराकी ओर घबड़ाहट बढ़ती जा रही है।

पू० मांको प्रणाम, चि० गुलाबबाई, डेडराजजी, हरगोविंदको आशीर्वाद।

जमनालालका वन्देमातरम्

२.१२.'४१

पूज्यश्री,

पत्र मिला। आपको अबके मेथीके लड्डू खिलानेवाले धन्वन्तरीजी वैद्य अच्छे मिले हैं। उनको तो फीस व सर्टिफिकेट दोनों ही देना चाहिए।

आप सेवाग्राम जायं तो अम्तुलके पास बापूजीकी माला देखते आवें, और मेरी माला आपके तकियेके नीचे ही रहने दें। कभी नींद न आए या जब याद आ जाए तब फेर लिया करना। और खो न देना। बापूजीने कहा था कि एक बार बेपरवाहीसे खो दोगी तो दूसरी नहीं मिलेगी। मेरी खानके हीरे तो आपने एक से एक देखे, पर खानमें तो माटी ही होवे सो यह भी भगवानकी मरजी।

जानकीनाथकी जय

मेरी भावना

समभाव

ऊंच-नीचका भेद हिन्दू-धर्म और संस्कृतिके विपरीत है। हिन्दू-धर्म तो सबमें एक ही आत्माके निवासका—'घट-घटमें वह राम रमैया'का सिद्धान्त सिखाता है। नीच वह है जो कुकर्म करता है—ऊंच वह है जो सुकर्म करता है। कोई ऊंच या नीच किसीके बनाये नहीं बनता। अपने कर्मोंसे अपने-आप बनता रहता है। हम मनुष्योंको चाहिए कि हम कोई ऐसी रीतियां व प्रणालियां न चलाएं, न कायम रहने दें, जिनसे कोई मनुष्य कृत्रिम रूपसे ऊंच या नीच ठहराया जाता हो।

शिक्षण

मेरे बालकोंकी शिक्षाका प्रबन्ध, महात्मा गांधीजीका आदर्श रखते हुए जिससे कि भविष्यमें वे निःस्वार्थ भावसे देशसेवा करें, आदर्श सत्याग्रह तथा त्यागके साथ इस मायावी संसारमें सानन्द विचर सकें इस तरहके बनानेमें, मेरे ट्रस्टी, खासकर मेरी धर्मपत्नी, करे। मेरी रायमें सत्याग्रह-आश्रम सरीखी संस्थामें रखकर ही शिक्षणकी व्यवस्था की जाये तो ठीक। मेरे इस भारत देशमें, खासकर मेरे कुटुम्बके सच्चे सत्याग्रही जितने ज्यादा हो सकें उतने ज्यादा बनानेका प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

बालकोंका शिक्षण सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती, वर्धा या इसी प्रकारके कोई उच्च ध्येय तथा चरित्र-बलवाले तपस्वी सज्जन कार्य करते हों वहां रखकर देनेका प्रबन्ध करें।

उत्तरदायित्व

हमारे स्वराज्य पानेके ये सब प्रयत्न इसीलिए जरूरी हैं कि हम अपने वर्तमान जीवनसे ऊब उठे हैं और नवीन जीवनके सुन्दर स्वप्न देख

रहे हैं। उस भव्य और दिव्य जीवनका निर्माण सर्वथा हमारे हाथमें है। हम जैसे होंगे वैसा ही हम समाज और जीवन बनायेंगे । इसलिए हमारी –चाहे हम अधिकारी या राजवर्गमें आते हों, चाहे शासक या जनताके वर्गमें– जिम्मेदारी सबसे बढ़ कर है। ईश्वर हमें उसके योग्य बननेका बल दे और अवसर दे।

हम शासनकी व समाजकी त्रुटियां जरूर बतायें और उन्हें दूर भी करें। लेकिन उनसे ज्यादा जरूरी है कि खुद अपनी त्रुटियोंको भी देखें और उन्हें दूर करते रहें।

साहित्य

हिन्दी साहित्य–हमारा साहित्य हमारे लोक-जीवनकी झांकी है, हमारी सभ्यता और संस्कृतिका शीशा है। जीवन परिवर्तनशील है, साहित्य अमर है। हमने अभी ऐसा अमर और मौलिक साहित्य बहुत कम रचा है।

मेरे भारतके होनहार बालको तथा नवयुवको,

तुम्हारी बालकपनकी व जवानीकी उम्र बहुत ही जोखमसे भरी हुई है, इसलिए उस उम्रको आदर्श, सच्चरित्र महानुभावोंके संगसे व उपदेशसे बिताना अपना धर्म समझो।

विजय-अर्चना

पूज्यवरों, प्रतिनिधियो, भाइयो और बहनो, आजका दिन मैं अपने जीवनका सबसे अधिक सौभाग्यका दिन समझता हूं, जब कि लेन-देन और व्यापारके मायाजालमें फंसे हुए मुझ जैसे एक अयोग्य व्यक्तिको राष्ट्रके इस पवित्रतम मंदिरमें ३१ कोटि सन्ततिकी जन्मदात्री अपनी इस मातृभूमिकी सेवा-अर्चनाके लिए एकत्रित आप सब सज्जनोंका स्वागत करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। . . . मातृभूमिको स्वतंत्र करनेकी अभिलाषा ज्यों-ज्यों प्रबल होती जा रही है त्यों-त्यों दृढ़ विश्वास होता जा रहा है कि इस भयंकर राजनैतिक युद्धमें अवश्य विजय होगी।

अपूर्व और अलौकिक

आज भारतके सामने स्वराज्य-प्राप्तिका विकट प्रश्न उपस्थित है, पग-पग पर 'अव आगे, अव आगे ? ' यह समस्या खड़ी होती है। पर वास्तवमें देखा जाय तो हमारी सड़क साफ है—हमारा रास्ता सीधा है। यह तो निर्विवाद वात है कि दुनियामें आज तक स्वराज्य किसीको विना गहरे त्याग और तपस्याके नहीं मिला। चाहे अमेरिकाकी स्वतन्त्रताके इतिहासको पढ़िये, चाहे चीनकी प्रजातन्त्र-प्राप्तिको देखिये, चाहे फ्रान्सकी राज्यक्रांतिका उदाहरण लीजिये, चाहे रूसकी वर्तमान क्रांतियोंकी ओर देखिये, चाहे आयरलैंड पर नजर डालिये, चाहे मिस्रकी वात सोचिये—सव राष्ट्रोंको स्वतन्त्रताके लिए वेशुमार त्याग और वलिदान करना पड़ा है और करना पड़ रहा है। त्याग और वलिदान स्वराज्य-वटकी सवसे गहरी जड़ है।

शुद्ध साध्य की सिद्धि

हमारे त्याग और वलिदानका स्वरूप दूसरे राष्ट्रोंके त्याग और वलिदानसे भिन्न जरूर है। वे प्रतिपक्षियोंको अपना शत्रु मानते थे और हम उन्हें अपने भूले-भटके भाई मानते हैं। वे उनसे घृणा और द्वेष करते थे, हम उन्हें अपने प्रेमसे परास्त करना चाहते हैं। वे साध्य-सिद्धिको आवश्यक मानते थे, पर साधन-शुद्धिके कायल न थे। हमारा सिद्धान्त यह है कि शुद्ध साधनों से ही शुद्ध साध्यकी सिद्धि हो सकती है। इसलिए जहां वे सशस्त्र प्रतिकार करते हुए त्याग और वलिदान करते थे, वहां हम सत्याग्रहके द्वारा, शांतिमय उपायोंके द्वारा, उच्च से उच्च त्याग और वलिदानमें हम दोनोंकी विजय, दोनोंका मंगल, दोनोंकी मैत्री देखते हैं। हमारा स्वराज्य-संग्राम अपूर्व है, एक दृष्टिसे अलौकिक है। अतएव इसमें विजय पानेके लिए त्याग और वलिदान भी अपूर्व और अलौकिक अर्थात् श्रेष्ठ और पवित्र होना चाहिए। ऐसे तीव्र दान और निर्मल वलिदानसे देशके मनुष्य तो क्या, पशु भी अपना पशुत्व छोड़ देंगे और देवताओंका भी दिल थर्रा उठेगा।

हमारा यह त्याग और बलिदान स्वदेशीमय होना चाहिए। स्वदेशी प्रत्येक देशका अटल धर्म है। स्वदेशीके विना देशाभिमान उत्पन्न नहीं हो सकता। स्वदेशीके विना त्याग और बलिदानकी उज्ज्वल तथा पवित्र भावना उदय नहीं हो सकती। बोल-चालमें स्वदेशी, खान-पानमें स्वदेशी, रहन-सहनमें स्वदेशी, वेश-भूषामें स्वदेशी नहीं हो, तो देशकी कल्पना, देशका प्रेम, देशसेवाकी इच्छा कहांसे उत्पन्न हो सकती है? धार्मिक दृष्टिसे स्वदेशी नित्य कर्म है, धर्माचरण है, पुण्यकार्य है; नैतिक दृष्टिसे स्वदेशी सादगी, उच्च जीवन और उच्च और निर्मल मनोवृत्तियोंको उत्पन्न करनेवाली है; आर्थिक दृष्टिसे मितव्ययका मार्ग बतानेवाली, पापके धन्धेसे पीछे खींचनेवाली, लोभको दबानेवाली और राजनैतिक दृष्टिसे हमारे प्यारे स्वराज्यका सुदिन शीघ्र ही दिखानेवाली, हमारी सदियोंकी गुलामीकी बेड़ियां तोड़नेवाली, संसारमें हमारा झुका सिर ऊंचा उठा देनेवाली और हमें संसारमें एक जीवित, उन्नत और गौरवशाली राष्ट्र बना देनेवाली है। इन्हीं गुणों पर मोहित होकर महात्माजी ने स्वदेशीको भारतके सर्वांगीण उद्धारकी कुंजी बताया है।

मातृभक्ति

आज स्वदेशीका अर्थ है खादी। जिसके बदन पर खादी नहीं वह स्वदेशी नहीं। वह स्वदेशी होते हुए भी, स्वदेशमें रहते हुए भी, विदेशी है। जिसे अपनी मांकी जरूरतोंका खयाल नहीं, उनकी पूर्तिकी चिन्ता नहीं, जो अपनी कमाईसे, अपने पुरुषार्थसे उसका पेट भर नहीं सकता, उसका बदन नहीं ढंक सकता, वह मातृभक्त कैसे कहला सकता है? और उसकी माताको भी उस पर गर्व कैसे हो सकता है? फिर भारतमाताके खजानेमें तो, उसके साम्राज्यमें तो सब कच्ची सामग्री मौजूद है। जरूरत है सिर्फ थोड़ा पुरुषार्थ दिखाकर, थोड़ा परिश्रम करके, थोड़ा कष्ट उठाकर उनकी पक्की चीजें तैयार करके माताके लिए हाजिर कर देनेकी।

स्वदेशीमें स्वधर्म, स्वदेश, स्वराज्य सब-कुछ है। स्वदेशीसे हममें व्यवस्था, संगठन और नियम-पालनकी शक्तियोंका विकास होगा। स्वदेशी भारतकी भिन्न-भिन्न जातियोंके लिए प्रेम-बन्धन होगी। स्वदेशी छुआछूतको दूर करने अर्थात् हमारे पांच करोड़ अछूत भाइयोंका उद्धार करनेका साधन होगी। स्वदेशी भारतकी फाकाकशी मिटानेका, अर्थात् लाखों गरीबोंको दाना-पानी पहुंचानेका आधार होगी। स्वदेशी स्वराज्य-भगवानका विराट् स्वरूप है। स्वदेशी भारतके लिए संजीवनी बूटी है। भारतके घर-घरमें स्वदेशीका प्रचार होना चाहिए। हरएक बहन-भाईको नियमसे धर्म-कर्म समझकर कुछ समय तक चरखा कातना चाहिए। द्विजोंके लिए तो यह एक प्रकारका सन्ध्या-वन्दन ही होना चाहिए। स्वदेशी वर्तमान युगका धर्म है। इसका पालन किये बिना, किया गया त्याग और बलिदान फीका है।

यदि अपनी भारतमाताके साथ आपका दिली प्रेम है, हमदर्दी है, हमारे सिरताज महात्मा गांधी आदि नेताओंके वियोगसे हम व्याकुल हैं, हमारे दूसरे बीस हजार भाइयोंकी तपस्याकी कदर करना चाहते हैं, यदि हमें सचमुच आजादी प्यारी है, खिलाफतके साथ मुहब्बत है, पंजाबके घाव हमारे दिलोंमें ताजे हैं, तो पूर्वोक्त त्याग और बलिदानके द्वारा स्वराज्यका जो बीज बोया गया है उसकी जड़ हम अपने स्वदेशीय त्याग और बलिदानके द्वारा सुरक्षित और मजबूत करें। इस समय इससे बढ़ कर हमारा दूसरा न तो धर्म है, न कर्तव्य है।

पवित्र यज्ञ की पूर्ति

मेरे प्यारे व्यापारी भाइयो, आपके लिए भी परीक्षाका और अपने जीवनको सफल करनेका सबसे अच्छा समय है। यदि आप सोचें तो आपको मालूम होगा कि आपका और आपके भावी व्यापारका सच्चा हित भी इसीमें है। . . . यदि आप अपने तथा अपने धनकी आहुतियां हाथमें लेकर इस राष्ट्रीय यज्ञकी ज्वालाको बढ़ानेके लिए आगे बढ़ेंगे, तो इस पवित्र यज्ञकी

पूर्ति और उसकी सफलताके कारण बनकर आप अपने तथा अपनी जातिके यशको सदाके लिए उज्ज्वल करेंगे। मुझे विश्वास है कि भारतके व्यापारी इस परीक्षामें अवश्य उत्तीर्ण होंगे।

पवित्र-हृदय तरुणो, यदि आप इस राष्ट्रीय आन्दोलनकी और अपनी जिम्मेवारीको समझना चाहते हैं, तो इस प्रकारके संग्राम अथवा अन्य राष्ट्रीय संग्रामोंके समयके अन्य देशोंके इतिहासोंको पढ़ लें और इस निरुपद्रव आन्दोलनमें भारत आपसे वैसी ही अनन्य और व्यवस्थित सेवाकी आशा करता है जैसी रूस, आयरलैंड, मिस्र, चीन इत्यादिकी क्रांतियोंके समय वहांके युवकों और युवतियोंने अपने-अपने देशोंमें की। देशको सबसे अधिक स्वार्थत्यागकी आशा युवकों और युवतियोंके पवित्र हृदयोंसे है।

जमनालाल बजाज

उद्देश्य तथा इच्छाएं

१. मेरी स्टेट (जायदाद) का विशेष भाग मेरे पूज्य दादाजी वच्छराजजी के द्वारा अपने स्व-परिश्रम, खुदकी मेहनतसे, विना अपने कुटुम्वियोंकी सहायता तथा सम्वन्धके प्राप्त किया हुआ है। इसलिए मुझे ट्रस्ट द्वारा विशेष प्रवन्ध करनेका अधिकार नहीं है, तथापि मेरे वाद मेरी स्त्री, वच्चोंको मेरे विचारोंका लाभ मिले तथा उस मुताविक कार्य करनेमें सहायता मिले, इसलिए यह इच्छा-पत्र लिख रखता हूं। इसके पहले मैंने कई इच्छा-पत्र लिख रखे होंगे, वे सब रद्द समझे जायेंगे।

२. मेरे वाद जो कुछ स्थावर-जंगम स्टेट रहे उसमें से इस विलमें लिखे हुए ट्रस्टी या चि० कमलनयन, रणजीत (रामकृष्ण) दोनों सहमत हो जायं अथवा दोनोंमें से एक सज्ञान हो तो वह सलाह करके मेरे वाद भी रहे हुए काममें उचित समझे वह रकम या स्टेटको लगाये। मुझे सवसे प्रिय काम तो 'खादी-प्रचार' का है; दूसरा अन्त्यज-उद्धार तथा हिन्दी-प्रचार है। परन्तु हिन्दी-प्रचारमें तो और भी सहायता मिलती है, इसलिए खादी-प्रचार व अन्त्यज-उद्धारमें ही जो कुछ लगाना हो वह लगाया जाय, वहुमतके अनुसार।

३. मेरे हालमें तीन कन्या तथा दो लड़के हैं, जिनमें कमलाकी सगाई पहले ही हो चुकी है। इसी वर्षमें उसका विवाह होनेवाला है। इसलिए वाकी रहे हुए पुत्रों तथा कन्याओंके वारेमें मेरी इच्छा है कि पुत्रोंका सगाई-विवाह १९ वर्ष तक तो विलकुल ही नहीं किये जायं। वादमें उनकी जिस प्रकारकी इच्छा मालूम हो उस प्रकार व्यवस्था की जाय। अगर परमात्मा की दयासे वे आजन्म ब्रह्मचारी रहना पसन्द करें तो मेरे घरके व ट्रस्टी मित्र उन्हें अवश्य उत्साहित कर आजन्म ब्रह्मचारी रह सकें, ऐसा प्रवन्ध, शिक्षण, संगतका इन्तजाम कर दें। मेरी कन्याओंका सगाई-विवाह १३ वर्षकी अवस्था तक विलकुल नहीं किया जाय। वादमें उनकी इच्छा हो, उस

मुताबिक सगाई-विवाहका प्रबन्ध कर दिया जाय। अगर उनमें से भी कोई आजन्म कुमारिका (ब्रह्मचारिणी) रहना चाहे तो अवश्य उसका उत्साह बढ़ाया जाय तथा उस मुताबिक प्रबन्ध कर दिया जाय। बालकोंका (लड़के तथा लड़कियोंका) शिक्षण सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती, वर्धा या कोई उच्च ध्येय तथा चरित्रबलवाले तपस्वी सज्जन कार्य करते हों वहां रहने तथा देनेका प्रबन्ध करें।

४. मेरे बाद व्यापार कम कर दिया जाय। अगर ठीक समझा जाय तो बन्द कर दिया जाय, जिससे कमसे कम इस प्रकारकी जोखिम न होने पाये कि मेरे पूज्य दादाजीके नामको व्यापारी-रीतका बट्टा लग सके। मेरी प्रबल इच्छा रही है तथा थोड़ी अभी भी है कि उनका नाम कमसे कम जितना आज कायम है उतना तो रहे, (अगर बढ़ नहीं सके तो)।

५. मेरे धार्मिक तथा सामाजिक विचार नीचे लिखे मुताबिक आज हैं। मेरी प्रबल इच्छा है कि इन विचारों पर हो सके वहां तक मेरे घरमें काम पड़ने पर अमल किया जाय:

धार्मिक व सामाजिक: पूज्य महात्माजीके सिद्धान्त, विचार मुझे पसन्द हैं। मैं तथा मेरे घरके बालक अगर अपने जीवनमें इन्हें ला सकेंगे तो अवश्य लाभ (कल्याण) होगा, मुझे ऐसा विश्वास है। खासकर सत्य, अहिंसा, अन्त्यजोंके साथ व्यवहार तथा सेवा, विधवा-विवाह (जो लड़की ब्रह्मचर्य पालनेमें असमर्थ हो), वैश्य जातिमें सम्बन्ध खुलना जैसे अग्रवाल, माहेश्वरी, खण्डेलवाली आदि जिनका आचार, व्यवहार, खानपान एक माफिक हो।

सेवाधर्म: 'न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं नापुनर्भवं। कामये दुःख-तप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्'।—यह सामने रखकर व्यापार तथा अन्य कार्य करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

सामाजिक: मृत्युका खर्च, बिरादरी, ब्रह्मपुरी न किये जायं। घर-शुद्धि हवन आदिसे कर ली जाय, पंचायत कम की जाय, दुकानकी प्रथा उठा दी जाय। विवाहमें धार्मिक क्रिया ही करनेका खयाल रखा जाय।

६. अपने बाद अपने उद्देश्य तथा इच्छाओंकी पूर्ति करनेके लिए मैं निम्नलिखित ट्रस्टी सलाहकार-मण्डल निर्माण करता हूं। उनके बहुमतसे काम

किया जायगा तो ठीक रहेगा। इन पर मुझे पूरा विश्वास है कि इनसे मेरे बालकोंका, जायदादका तथा नामवरीका बराबर पालन हो सकेगा। इनमें से कोई मौजूद न रहे अथवा कार्य करनेमें असमर्थ पाया जाय, तो जो बाकी रहें वे हो सके वहां तक एकमतसे नहीं तो बहुमतसे काम करें।

ट्रस्टी सलाहकारोंके नाम: १. पूज्य विनोबा भावे, २. पूज्य श्रीकृष्णदासजी जाजू, ३. पूज्य मगनलाल भाई गांधी, ४. चि० राधाकृष्ण बजाज, ५. चि० गंगाबिसन बजाज, ६. चि० रामेश्वरप्रसाद नेवटिया या श्री केशवदेवजी नेवटिया, और ७. श्री जानकीदेवी बजाज।

७. उपरोक्त सिद्धान्त तथा विचार मैंने आज इस मृत्यु-पत्रमें लिख रखे हैं। अपने जीवन-कालमें इसमें परिवर्तन करनेका मुझे अधिकार है ही। अगर मैं कोई परिवर्तन नहीं कर सका तो यही मेरी इच्छा समझी जाय व इससे पहलेके लेख इसके द्वारा रद्द समझे जायं।

मैं जमनालाल रामधनदास बजाज (अग्रवाल, एरणगोती) वर्धा-निवासी यह मृत्यु-पत्र लिख रखता हूं, जो मेरी मृत्युके बाद उपयोगमें आ सकेगा।

मिती कार्तिक शुक्ल एकादशी, संवत् १९९२

मैंने उपरोक्त विचार भली प्रकार पढ़कर समझ लिए हैं। मुझे यह सब पसन्द है (खास करके विवाह-सम्बन्धी)। मैं अगर जिन्दा रही तो अमल में लानेकी कोशिश करूंगी। अगर मेरी मृत्यु पहले हो गई तो ऊपर लिखे मेरे पतिके विचार जो मुझे पसन्द हैं, मेरे बालक तथा कुटुम्बी तथा ऊपर लिखे हुए ट्रस्टी इन्हें पालन करनेकी कोशिश करें व अन्य सज्जन सहायता करें, जिससे हम दोनोंको सन्तोष पहुंचे।[1]

जानकीदेवी

---

१. यह मृत्यु-पत्र ता० ७.११.'३५ को लिखा गया था। उस समय जमनालालजीकी उम्र लगभग ४६ वर्षकी थी।

उद्धार का मार्ग

यदि आपको यह इतमीनान हो चुका है कि सत्य और अहिंसाके सिवा आपके उद्धारका दूसरा मार्ग नहीं है, तो आपको अव दूसरा कदम उठाना होगा। वह यह कि आप उन कामोंको हाथमें लें जो राष्ट्र-निर्माण के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। उनके विना न तो आप अपने लक्ष्य तक ही पहुंच सकते हैं, न भावी राष्ट्रकी रचनाकी कल्पना ही कर सकते हैं। क्योंकि जैसे-जैसे राज्यशासनमें आपका दखल होता जायगा और आपको सत्ता व अधिकार मिलते जायेंगे, वैसे-वैसे आपमें यह इच्छा स्वभावतः ही पैदा होनी चाहिये कि आप गरीवोंकी ज्यादासे ज्यादा सेवा करें। जव आपका यह उद्देश्य है तो आपको ग्राम-सुधारके कामोंको हाथमें लेकर ग्रामों और ग्रामीणोंकी दशाको सुधारना होगा। उन्हें उचित ढंगकी शिक्षा देकर उनके मानसिक अंधकारको दूर करना होगा। मगर इसमें यह बात याद रखनी होगी कि साक्षरता ही शिक्षणका एकमात्र लक्षण नहीं है। जनताकी आर्थिक दशा भी ठीक करनी है। इसके लिए ग्राम-उद्योगोंको बढ़ाना भी जरूरी है। ग्रामोंकी पुनर्रचनाके किसी भी कार्यक्रमका यह जरूरी अंग है।[1]

जमनालाल वजाज

---

१. जयपुर राज्य प्रजा-मंडलके प्रथम वार्षिक अधिवेशन पर जयपुरमें ता० ९.५.'३८ को सभापति-पदसे दिये गये भाषणसे।

अनुपम प्रेम

हृदयके सब भाव लेख द्वारा व्यक्त नहीं किये जा सकते। महात्माजीके प्रति अगर मेरा खाली आदर-भाव ही रहता, तो उनके विषयमें कुछ विशेष लिख सकता। पर महात्माजीने मुझे इस तरहसे अपनाया है कि उनके प्रति मेरे मनमें पिता और गुरुके समान भाव ही पैदा होते हैं।

बचपनमें ही सार्वजनिक जीवनसे प्रेम होनेके कारण बहुतसे प्रतिष्ठित सरकारी कर्मचारियों तथा देशके प्रख्यात नेताओंसे मेरा परिचय हुआ। पूज्य लोकमान्य तिलक महाराज और भारतभूषण मालवीयजी जैसे महान पुरुषोंका परिचय मेरे लिए लाभदायक हुआ। लेकिन महात्माजीने तो मेरी मनोभूमिका ही बदल दी। मेरे मनमें कई बार त्यागके विचार पैदा हुआ करते थे। उन्होंने उन्हें कार्यरूपमें लानेका रास्ता बता दिया। उनका निर्मल चरित्र, शीतल तेजस्विता, गरीबोंकी कलक, मनुष्य-मात्रसे सत्य व्यवहार, अनुपम प्रेम और धर्म-श्रद्धा देखकर ही मेरा मन उनकी ओर खिंचता गया। अपने जीवनकी त्रुटियां मुझे प्रतीत होने लगीं और यह महत्त्वाकांक्षा बढ़ने लगी कि इस जीवनमें किस तरह महात्माजीके सहवासके योग्य बन सकूं।

महात्माजीके प्रति मेरे मनमें प्रेम-श्रद्धा तो अखबारोंमें उनके अफ्रीकाके कामोंको पढ़कर ही हो गई थी। परन्तु जब वह कोचरब (अहमदाबाद) में आश्रम स्थापित करके रहने लगे और एक-दो बार मैंने वहां जाकर उनका रहन-सहन, व्यवहार अपनी आंखोंसे देख लिया तब वह प्रेम-श्रद्धा बढ़ती गई। १९१५ में जब वह बम्बई-कांग्रेसमें आये थे तब मारवाड़ी विद्यालयमें ही ठहराये गए थे। उस समय भी उनके परिचयमें आनेका विशेष अवसर मुझे मिला। उसके बाद कई बार मैं आश्रममें गया। १९१७ की कलकत्ता-कांग्रेसके समय तो महात्माजी, जहां मेरी तरफसे रहने आदिका प्रबंध किया गया था, वहीं ठहरे थे। उस समय उनकी सत्संगतिका मुझे बहुत लाभ मिला। उसी समय मुझे सरकारकी तरफसे रायबहादुरीकी पदवी मिली थी। सुबह होते ही मैंने महात्माजीको गोशाला जाते हुए रास्तेमें पदवीका हाल सुनाया।

पहले तो उन्होंने पूछा, "तुम्हें पदवी किस तरह मिली?" मैंने अपनी समझके अनुसार कारण बताये। फिर मैंने पूछा, "आपकी क्या राय है, पदवी स्वीकार करूं या नहीं?" उन्होंने जवाब दिया, "जहां तक यह पदवी देश-सेवामें और अपने सिद्धान्तोंकी रक्षामें मदद देती हो वहां तक स्वीकार करनेमें हर्ज नहीं। परन्तु जिस दिन इसके कारण देश-सेवामें बाधा आ पड़े अथवा सिद्धान्तको हानि पहुंचे, उसी रोज इसका मोह छोड़ देना चाहिए।" इसी विधानके अनुसार मौका आने पर मैंने उस पदवीका त्याग कर दिया।

मेरी रायमें आज भारतमें गरीबोंके साथ यदि कोई एकजीव हुआ है तो वह महात्माजी हैं। महात्माजी मानो कारुण्यकी मूर्ति हैं। गरीबोंके कष्ट दूर करनेमें अमीरोंके साथ भी अन्याय न होने पावे और भिन्न-भिन्न वर्गोंके बीच तनिक भी द्वेषभाव पैदा न हो, इसकी वह हमेशा चिंता रखते हैं। इसीलिए भारतवर्षके सब धर्म, पंथ और वर्गके लोग उन्हें आत्मीयताकी दृष्टिसे देखते हैं। चातुर्वर्ण्यका तो उनमें मानो सम्मेलन ही हुआ है। भारतवर्ष पर उनका जो असीम प्रेम है, उसके लायक यदि हम भारतवासी बनें तो भारतका उद्धार अवश्य हो जाय।

मेरी समझमें तो महात्माजीका सहवास जिसने किया हो या उनके तत्त्वोंको समझनेकी कोशिश की हो, वह कभी निरुत्साही नहीं हो सकता। वह हमेशा उत्साहपूर्वक अपना कर्तव्य-पालन करता रहेगा। क्योंकि देशकी स्थितिके सुधरनेमें, स्वराज्य मिलनेमें थोड़ा विलंब भले ही हो, परन्तु जो व्यक्ति महात्माजीके बताये मार्गसे कार्य करता रहेगा, मुझे विश्वास है कि वह अपनी निजी उन्नति तो जरूर ही कर लेगा, अर्थात् अपने लिए तो स्वराज्य वह अवश्य पा ही सकता है।

जिस दिन मैं अपने प्रति महात्माजीके पुत्र-वात्सल्यके योग्य हो सकूंगा, वही समय मेरे जीवनके लिए धन्य होगा। महात्माजीकी अनुपम दयासे आज मैं कम से कम अपनी कमजोरियोंको थोड़ा-बहुत तो पहचानने लग गया हूं।[1]

जमनालाल बजाज

---

१. २ अक्तूबर १९२२ के 'हिन्दी नवजीवन' में प्रकाशित भाषणसे।

सब के प्रति सदिच्छा

जब हम लोग सन् १९२१ में कांग्रेसके नागपुर-अधिवेशनमें उपस्थित हुए तो जिस व्यक्तिने सबका ध्यान अपनी ओर खींचा और सबके दिलमें अपने लिए आदर-भाव पैदा किया, वह था गोरे रंग, स्वस्थ शरीर, लंबे कद, मूर्ति जैसी सुडौलता और सुन्दर चेहरेवाला। हर कोई पूछता था—"ऐसी मोहक आकृतिका यह छः फुटा आदमी कौन है, जिसका चेहरा बुद्धिमत्ताके कारण चमक रहा है और जिसके सौम्य व्यक्तित्वसे भी बढ़कर उसके व्यवहार और आचरणकी सहज विनम्रता है?"

"यह करोड़पति है, जिसे ब्रिटिश सरकारने 'रायबहादुर' बनाया था, लेकिन जिसने भारतकी खोई हुई आजादी फिरसे प्राप्त करनेके लिए महात्मा गांधी द्वारा ब्रिटिश सरकारके साथ अहिंसात्मक संग्रामके अंगरूपमें बताये गये रास्ते तथा जीवनकी नई योजना और नैतिकताके अनोखे शास्त्रके अनुसार अपना खिताब छोड़ दिया है।"

हर किसी व्यक्तिके मुंहसे, जो एक ओर जमनालालजीसे और दूसरी ओर महात्माजीसे, साथ ही उन दोनों—गुरु और शिष्य—के बीच तेजीसे बढ़ती हुई मित्रता और पारस्परिक स्नेहसे परिचित था, तुरंत यही उत्तर निकलता था।

१९२२ में गयामें अपरिवर्तनवादियोंकी जीतके साथ रचनात्मक कार्यक्रम पर अधिक जोर डालनेके युगका प्रारंभ हुआ, जिसका बाबू राजेन्द्रप्रसाद, राजाजी, जमनालालजी तथा श्री देवदास गांधी इन सदस्योंके शिष्ट-मण्डल द्वारा जोर-शोरसे प्रचार किया गया। इस शिष्ट-मण्डलने सारे देशका दौरा किया और 'तिलक स्वराज्य फंड' के लिए एक अच्छी रकम जमा की।

कांग्रेसके कार्यमें जमनालालजीकी दिलचस्पी बहुमुखी थी। सविनय अवज्ञा-आंदोलन उन्हें रचनात्मक कार्यक्रम – विशेषकर खद्दर तथा अस्पृश्यता-निवारण जितना ही आकर्षित करता था। सन् १९३० से १९३३ तक नमक-सत्याग्रहकी ओर लोगोंका ध्यान लगा रहा। कार्य-समितिने पूनामें कार्यकारी अध्यक्ष द्वारा दिये गये पूर्व आदेशोंको संशोधित करके सभी कांग्रेसियोंका आवाहन किया कि वे कांग्रेसकी सामान्य गतिविधियोंके लिए कमेटियोंका पुनर्गठन करें। सविनय-अवज्ञा-आंदोलनके बंद होते ही कार्यकारी अध्यक्षका पद समाप्त हो गया और कांग्रेस-अध्यक्ष सरदार पटेलके जेलमें होनेके कारण समितिने अध्यक्षका कार्य-भार संभालने और कांग्रेसके अगले अधिवेशन तक उस पदका सारा कार्य करनेके लिए जमनालालजीको नामजद किया।

वह कांग्रेसके नये संविधानके लगभग आरंभ होनेके समयसे ही कांग्रेस के कोषाध्यक्ष रहे थे। उनका जन्म सन् १८८९ में हुआ था और इस प्रकार वह श्री जवाहरलाल नेहरूके समसामयिक थे। . . . वह गांधी-सेवा-संघ, अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा तथा अन्य सामाजिक एवं आर्थिक कल्याणकारी संस्थाओंके संस्थापक थे और शिक्षा, राष्ट्रभाषा हिंदी, हाथ-कताई तथा हाथके बने कपड़े आदिकी प्रगतिके निमित्त बनी कांग्रेससे संबद्ध अनेक संस्थाओंकी स्थापना उन्हींके द्वारा हुई थी।

जैसा कि गांधीजी माना करते थे, अगर धनी व्यक्ति अपना धन समाजकी धरोहरके रूपमें रखनेवाला ट्रस्टी है, तो एक व्यक्ति था, जिसने गांधीजीके जीवन-कालमें ही उनकी इस परिभाषाको और अपेक्षाको पूर्ण कर दिया। अगर संपदा सेवामें सहायक है, तो एक व्यक्ति था, जिसने अपने साधनोंका उपयोग अपने देशवासियोंके दुखों और कष्टोंको दूर करनेके लिए किया। अगर अहिंसा समाजमें मित्र और शत्रु और सृष्टिमें ऊंच-नीच में कोई भेद-भाव नहीं करती, तो एक अनुभूतिशील हृदयवाला व्यक्ति था, जो मानव और पशुकी समान रूपसे सेवा करता था। अगर मनुष्यका कर्तव्य संसारमें परिपूर्ण जीवन-यापन करना है, तो एक व्यक्ति था, जिसका जीवन

जितना बहुमुखी था, उतना ही परिश्रमशील भी था और जितना एकनिष्ठ था, उतना ही व्यापक भी। अगर संसारमें जीवनकी उपलब्धियोंका मूल्यांकन व्यक्तिके जीवनकी लंबाईसे नहीं, बल्कि उसके जन्मजात अथवा प्राप्त गुणोंसे किया जाता है तो एक व्यक्ति था, जिसकी त्याग, आत्म-संयम, विनम्रता, अनासक्ति, भाईचारे एवं सबके प्रति सदिच्छाकी उदात्त भावनाने उसके ५२ वर्षके अल्प जीवनमें ही उसे महान व्यक्तिकी कोटिमें पहुंचा दिया, जो कि आनेवाले युगोंमें धनिकोंके लिए एक दृष्टांतके रूपमें कार्य करेगा। वह व्यक्ति था सेठ जमनालाल बजाज। . . . उससे हमारे आजादीके इतिहासके बहुतसे पृष्ठों पर प्रकाश पड़ता है।

पट्टाभि सीतारामैया

ऊंचे दर्जे के सत्यशील

जमनालालजीने १९१८ की कलकत्ता-कांग्रेसमें राजनीतिमें प्रत्यक्ष भाग लेना आरम्भ किया। उसके पहले देश-हितके सभी कार्योंमें उनकी सक्रिय सहानुभूति थी। लोकमान्य तिलकके सम्बन्धमें उनके विचार बड़े आदरपूर्ण थे। कलकत्ता-कांग्रेसके बाद उन्होंने असहयोग-व्रत स्वीकार करते हुए कांग्रेसकी रचनात्मक राजनीतिके कार्य-क्षेत्रमें अपनेको पूर्णतया वहा दिया। व्यापारमें अत्यन्त दक्ष होनेके कारण उन्होंने प्रामाणिकताके साथ व्यापार किया और उससे उन्हें जो यश प्राप्त हुआ उसके प्रत्यक्ष उदाहरण आगे देखनेमें आए। अगर वे धन कमानेको ही अपना ध्येय मानते तो उनकी गणना देशके गिने-चुने करोड़पतियोंमें हो जाती, किन्तु धन कमानेकी अपेक्षा उन्होंने अपने जीवनमें इस बात पर अधिक ध्यान दिया कि संग्रह किए हुए धनका उपयोग किस प्रकार किया जाय। केवल यही बात नहीं है कि उन्होंने गांधीजीकी प्रवृत्तियोंमें सहायता दी, वल्कि 'गांधी-सेवा-संघ', 'अखिल भारतीय चरखा-संघ', 'ग्रामोद्योग-संघ', 'तालीमी संघ', 'हरिजन-सेवक-संघ', 'हिन्दी-प्रचार-समिति' और 'महिला-विद्यालय' आदि रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थाओंमें उनकी सहानुभूति पूर्ण रूपसे न होती तो उनका संचालन-कार्य असम्भव हो जाता। आम तौर पर जिसे शिक्षा कहा जाता है, वह उन्हें अधिक नहीं मिली थी। उनका अंग्रेजीका ज्ञान वहुत कम था, किन्तु उनका व्यवहार-ज्ञान वड़ा सूक्ष्म था। उचित समय पर देने-लेनेकी व्यवहार-वुद्धि उनमें पूर्ण रूपसे थी और उसका उपयोग कोई शाब्दिक चर्चा न करके राजनैतिक क्षेत्रमें भी वे यथासमय समुचित रूपसे करते थे।

गंगाधरराव देशपांडे

स्वतंत्रता-संग्राम के सेनानी

जमनालालजीसे मेरी पहली मुलाकात सन् १९१८में कलकत्तामें हुई थी। तब वह युवक ही थे। मैं गांधीजी और उनके सहकर्मियोंके साथ कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनमें भाग लेने वहां गया था। जमनालालजी उदीयमान उद्योगपतिके रूपमें आगे आ रहे थे और उन्हें ब्रिटिश सरकारसे रायबहादुरका खिताब मिला था। उस समय पंडित मदनमोहन मालवीयके प्रति उनकी बहुत आस्था थी। गांधीजी और उनके साथियोंको एक धर्मशालामें ठहराया गया था और उसका सारा प्रबंध जमनालालजीने ही किया था। जब जमनालालजी ने गांधीजीको प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद मांगा, तो गांधीजीने उन्हें खिताबके लिए बधाई दी और कहा कि उनकी अपेक्षा है कि उसका इस्तेमाल व्यक्तिगत प्रतिष्ठा व गौरवके लिए न कर राष्ट्र-सेवाके लिए किया जायेगा। तबसे गांधीजीके साथ जमनालालजीका संपर्क और आत्मीयता निरंतर बढ़ती गई और अंतमें वह उनके परिवारके ही एक सदस्य हो गए।

उस समय जमनालालजी एक उद्योगपतिके रूपमें उभर रहे थे। द्वितीय महायुद्धके बाद व्यापार व उद्योगके क्षेत्रमें काफी तेजी आ रही थी। कई जाइंट स्टाक कंपनियां कायम हुईं। उनमें से कइयोंने जमनालालजीको संचालक-मंडलमें सम्मिलित होनेके लिए आमंत्रित किया। यदि उन्होंने अपना सारा ध्यान केवल व्यापार और उद्योग पर ही केन्द्रित रखा होता, तो वह हमारे देशके प्रथम श्रेणीके गिने-चुने उद्योगपतियोंमें होते। किन्तु गांधीजी के व्यक्तित्व और देशभक्तिकी पुकारसे प्रभावित होकर वह राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आंदोलनमें शामिल हो गए।

सत्याग्रह-आन्दोलनके कई कार्यक्रमोंमें एक था खादीका उपयोग और प्रचार। उस समय कपड़ेकी मिलोंमें असाधारण लाभ हो रहा था। फिर भी इस सिद्धान्तके अनुरूप उन्होंने कपड़ेकी मिलोंमें किसी भी प्रकारका हिस्सा लेनेसे इनकार कर दिया। कुछ समय बाद काफी मुनाफेकी शर्तों पर

उन्हें कपड़ेकी एक मिलका प्रस्ताव मिला, किन्तु उन्होंने इसी कारण उस प्रस्तावको भी ठुकरा दिया।

धीरे-धीरे उनका अधिकाधिक ध्यान स्वतंत्रता-संग्रामकी ओर मुड़ता गया। उनके व्यापारकी व्यवस्था उनके साझीदार करने लगे। आंदोलनके शुरूमें ही उन्हें कांग्रेसका कोषाध्यक्ष बनाया गया, अतः इस नाते कांग्रेसके लिए धन इकट्ठा करना उनका मुख्य काम रहता था। उन्हें इसका भी ध्यान रखना पड़ता था कि कांग्रेसके पास जो थोड़ा-बहुत धन था, वह अवज्ञा-आंदोलनके समय ब्रिटिश सरकारके हाथमें न पड़ जाय। आज लोगोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उस समय कांग्रेसके पास ३० हजार रुपयेकी रोकड़से अधिक जमा रकम कभी नहीं थी। अधिकांश कार्य लोग अवैतनिक ही किया करते थे।

राष्ट्रीय आन्दोलनके दौरान जमनालालजी एक पूंजीपतिसे, गांधीजी की कल्पनाके अनुरूप, लोगोंके ट्रस्टी बन गए। उनका जीवन सादा था और उन्होंने अपने परिवारके अन्य सदस्योंको भी वैसा ही जीवन अपनानेकी ट्रेनिंग दी। हां, सार्वजनिक कोषोंमें वह उदारतापूर्वक दान देते रहे। व्यक्तिगत सहायतामें भी वे उतनी ही उदारता बरतते थे। अतिथि-सत्कार तो उनका अद्वितीय था ही। उन दिनों कांग्रेस कार्यकारिणीकी बैठकें अधिकतर वर्धामें ही हुआ करती थीं, क्योंकि गांधीजी पास ही सेवाग्राम आश्रममें रहते थे। उस आश्रमकी भूमि भी जमनालालजीने ही प्रदान की थी। कार्यकारिणी समितिके प्रत्येक अधिवेशनमें छः-सात दिन तक एक साथ उन्हें सैकड़ों मेहमानोंकी व्यवस्था करनी पड़ती थी और उस समय तो कार्यकारिणीकी बैठकें भी बहुत जल्दी-जल्दी हुआ करती थीं।

जमनालालजी खरे व्यक्ति थे। निष्पक्षता और न्यायप्रियताकी भावना उनमें प्रबल थी। स्वभावसे वह बहुत आशावादी थे और साथ ही बहुत विनोदी भी। मानवीय सहानुभूति उनमें गहरे तक पैठ गई थी। धन और पदके अहंकारसे वह मुक्त थे। अपनी राय वह खुले तौर पर देते थे और उसमें किसी प्रकारका भी बंधन उन्हें स्वीकार नहीं था। हमारे स्वतंत्रता-संग्रामके वह एक महान सेनानी थे। जिन्हें भी उनके सम्पर्कमें आनेका अवसर मिला, वे जमनालालजीको कभी नहीं भूल सकते।

नई दिल्ली, १९६३ — जे० बी० कृपालानी

झंडा-सत्याग्रह

गया-कांग्रेसमें कांग्रेसने एक पलटा खाया। गांधीजी जेलमें थे। दो दल बन गए। एक दल कौंसिलोंमें जाना चाहता था, दूसरा कौंसिलोंमें जाना ठीक नहीं समझता था। सन् '२३ की कोकनाडा-कांग्रेस तक बड़ी उम्रके और वकील-पेशा सब कौंसिलवादी बन गए। कुछ जोशीले जवान बच रहे, जो कौंसिलोंमें जाना पसन्द नहीं करते थे। कौंसिलवालोंका दल सत्याग्रहसे जी चुराता था। जो कौंसिलवाले नहीं थे वे सत्याग्रहकी तरफ इस तरह दौड़ते थे, जिस तरह पतंगा दीपककी ओर। वे कोई मौका हाथसे खोना नहीं चाहते थे। आखिर सन् १९२३ में जबलपुरमें झंडा-सत्याग्रह छिड़ गया। वहां सरकारने दबाया तो वह नागपुरमें जा फटा और वहां उसने बड़ा उग्र रूप धारण कर लिया।

नागपुरका यह हाल था कि प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी कौंसिलवादी-प्रधान थी। नागपुरकी नगर-कांग्रेस-कमेटी सत्याग्रहवादियोंसे भरी हुई थी। नगर-कांग्रेस-कमेटीने अपने बल पर सत्याग्रह छेड़ दिया। अब कांग्रेसकी वर्किंग कमेटीमें ज्यादातर ऐसे आदमी थे जो हर समयसे फायदा उठाना चाहते थे। उन्होंने नागपुरके सत्याग्रहको नहीं रोका। एक तरहसे मदद ही की। उसको चलानेके लिए पांच आदमियोंकी जो कमेटी बनी उसमें सेठ जमनालाल बजाज भी थे। खजांचीकी हैसियतसे जमनालालजी आल इंडिया वर्किंग कमेटीके सदस्य भी थे। मैं उस कमेटीका मेम्बर था। स्वयंसेवक-विभाग मेरे सुपुर्द था। एक तरहसे सत्याग्रहके संचालनका कार्य मेरे हाथमें था। धन इकट्ठा करनेकी जिम्मेदारी सेठजी पर थी। पर सेठजी थे वर्किंग कमेटीके मेम्बर। अगर वे किसी वजहसे उस कमेटीको छोड़कर चल देते, तो उनकी जगह किसी दूसरेको लेकर पांचकी कमेटी काम चला सकती या नहीं, ऐसा कोई निर्णय देना मुश्किल है।

अब हुआ यह कि पहले ही दिन जो दस स्वयंसेवकोंका जत्था भेजा गया, वह गिरफ्तार कर लिया गया। दूसरे दिनके लिए सिर्फ तीन स्वयंसेवक थे और चाहिए थे दस। इस बातका पता मेरे सिवाय कमेटीके किसी मेम्बरको न था। मेरा यह विश्वास था कि सेठजीको इस बातका पता देना खतरेसे खाली नहीं है, क्योंकि आल इंडिया वर्किंग कमेटी, जिसके सेठजी सदस्य थे, उन दिनों सत्याग्रहमें इतना पक्का विश्वास नहीं रखती थी, जितना मैं और मेरी नगर-कांग्रेस-कमेटी। मुझे यहां तक डर था कि स्वयंसेवकोंकी इस कमीका कहीं यह असर न हो कि सेठजी मेम्बरी छोड़कर अलग हो जायं। अब सवाल यह था कि इस कमीको पूरा कैसे किया जाय? पूरा करनेके लिए कुछ समयकी जरूरत थी। उतना समय मिल नहीं सकता था। मैंने सेठजीसे अलहदामें सलाह की। उन्हें समझाया कि जब सत्याग्रह शुरू हो गया है तो यह महीनों चलेगा। इसलिए ठीक यह रहेगा कि हफ्तेमें एक रोजकी छुट्टी रखी जाय।

सेठजी राजी हो गए, बोले, "इतवार ठीक रहेगा।"

उनका सुझाया इतवार था तीसरे दिन और मुझे फिक्र थी दूसरे दिन यानी कलकी। मैं तुरन्त बोला, "सेठजी, इतवारसे शनीचर अच्छा। शनी-चरका दिन होता भी मनहूस है। इतवारका दिन सरकारी दफ्तरोंकी छुट्टी का दिन होता है और हम नहीं चाहते कि हमारा सत्याग्रह सरकारी नौकर न देख सकें। उनके लिए यही दिन बढ़िया दिन होगा। इसलिए इतवारके दिन जरूर सत्याग्रह होना चाहिए। छुट्टी शनीचरकी ही रहेगी।"

सेठजीने यह बात मान ली और इतवारके दिन ग्यारह आदमियोंका जत्था भेजा गया। शनीचरकी कमजोरीका पता किसीको भी न चल पाया। बहुत दिनों बाद जब सेठजीको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने खुले दिलसे कहा, "बेशक, अगर वक्त-के-वक्त मुझे पता चल गया होता तो जरूर मुझसे कोई ऐसा काम हो गया होता, जिससे सत्याग्रहको धक्का पहुंचता, क्योंकि मैंने वर्किंग कमेटीको यह विश्वास दिला रखा था कि हमारे पास सत्याग्रहके लिए स्वयंसेवकोंकी कोई कमी नहीं है और न पैसे और काम करनेवालोंकी।"

झंडा-सत्याग्रहके वाद सन् १९२३ में सितम्वरके महीनेमें दिल्लीमें स्पेशल कांग्रेस हुई। उस कांग्रेसमें सत्याग्रहवादियोंका जोर था। दिसम्वरके महीनेमें देहरादूनमें यू० पी० कांफरेंस हुई। उसमें 'देशवन्धु' भी शामिल हुए। इसमें कौंसिलवादियोंका जोर था। दिल्लीकी स्पेशल कांग्रेसके वाद कोकनाडामें कांग्रेसका वाकायदा जलसा हुआ। इसके प्रेसिडेंट मौलाना मोहम्मदअली थे। वह कम सत्याग्रहवादी और ज्यादा कौंसिलवादी थे। राजगोपालाचारी भी पूरे-पूरे सत्याग्रहवादी न थे। नतीजा यह हुआ कि जमनालालजी भी कौंसिलवादकी ओर झुक गए। सत्याग्रहके जन्मदाता और महारथी महात्मा गांधी यरवदा जेलमें थे। सर पर कफन वांधकर गांधीजीको जेलसे छुड़ानेकी वात वकील-पेशा लोगोंको निरी मूर्खता जंची। उन्हें आसान यही मालूम हुआ कि वे सरकारके किलेमें घुसकर यानी कौंसिलोंमें शामिल होकर ही गांधीजीको छुड़ा सकते हैं।

आखिर कोकनाडामें दासवावू और भाई मोतीलालजीकी जीत हुई। कांग्रेस दो हिस्सोंमें वंट गई। एक कहलाए परिवर्तनवादी और दूसरे कहलाए अपरिवर्तनवादी। जमनालालजी परिवर्तनवादी थे और मैं था अपरिवर्तनवादी। कोकनाडा-कांग्रेस ३१ दिसम्वर, १९२३ को खत्म हुई।

महात्मा भगवानदीन

मंदिर-प्रवेश

जबसे कांग्रेसने महात्मा गांधीजीके अस्पृश्यता-निवारण-प्रस्तावको स्वीकार किया तबसे जमनालालजी इस तरफ थोड़ा ध्यान देने लगे। उस समयके वातावरणके अनुरूप उन्होंने हरिजन-बस्तियोंमें प्रचारक रख दिए थे और हरिजन-छात्रोंको वजीफा भी देना शुरू कर दिया था। इस कार्यमें जितना भी खर्च होता था, वह सेठजी अपने पाससे किया करते थे। मगर इस तरहकी सेवा करनेसे उनका दिल नहीं भरता था और वह हर समय यही सोचा करते थे कि कोई बड़ा और ठोस काम इस दिशामें किया जाय। अन्तमें उन्हें एक मार्ग सूझ गया। वह यह कि हरिजनोंको सार्वजनिक कुओं पर पानी भरनेकी छूट होनी चाहिए और मन्दिरोंमें उन्हें दर्शन करने जानेकी इजाजत मिलनी चाहिए। यह बात जब उनके ध्यानमें आई तो उन्होंने सबसे पहले अपने घरसे ही सुधार करनेका निश्चय किया। पर इस मार्गमें उनके सामने कई अड़चनें थीं। उनके पूर्वजोंके बनवाए हुए श्री लक्ष्मीनारायणके भव्य मन्दिरकी व्यवस्था ट्रस्टियोंके हाथमें थी और एक धर्मशालाकी भी व्यवस्था ट्रस्टियोंके हाथमें थी। इसलिए कोई भी काम बिना ट्रस्टियोंकी इजाजतके करना अवैध था। दूसरे सेठजी मत-स्वतन्त्रताको शुरूसे ही मानते आए थे, इसलिए उनके लिए तो यह और भी कठिन बात थी। उन्होंने मन्दिरके तथा धर्मशालाके ट्रस्टियोंको समझाना शुरू किया और उन्हें बतलाया कि इस समय देशको हरिजनोंके साथ न्याय करनेकी जरूरत है। इसलिए अपना मन्दिर, धर्मशाला और कुएं हरिजनोंके लिए खुल जाने चाहिए, जिससे देशके काममें अधिक जागृति उत्पन्न हो। पर ट्रस्टी लोग इस तरह कहां माननेवाले थे? सेठजीने धैर्य न छोड़ा। सतत प्रयत्न करते रहे और उन्हें युक्तिसे समय-समय पर समझाते रहे। अन्तमें धर्मशालाके ट्रस्टी इस बात पर राजी हो गए कि धर्मशालाके कुएं हरिजनोंको पानी भरनेके लिए खोल

दिए जायं। इस निर्णयके अनुसार वर्धाकी वच्छराज धर्मशालाके कुएं सन् १९२७ में खोल दिए गए। इस तरह यह कार्य देशमें पहला ही था। इस कुएंका उपयोग हरिजन करने लगे तब सेठजीने अपनी मालिकीके अन्य कुएं, जो बगीचों, गांवों और खेतोंमें थे, खोल दिए। इस काममें थोड़ी-थोड़ी अड़चनें जनता और कर्मचारियों द्वारा आई, पर उससे कोई डरने जैसी बात पैदा नहीं हुई।

सेठजीके प्रयत्नोंसे, मन्दिरके ट्रस्टियोंके दिल भी पिघल गये और उन्होंने अनुमति दे दी। मन्दिरकी ट्रस्ट-कमेटीने वर्धाका लक्ष्मीनारायण मन्दिर हरिजनोंके लिए खुला करनेका प्रस्ताव पास किया और उसकी एक तिथि भी निश्चित की[1]। समाचारपत्रों द्वारा यह खबर सारे देशमें फैल गई।

जब मन्दिरके ट्रस्टियोंने मन्दिर हरिजनोंके लिए खोलनेका निश्चय कर लिया, तब जमनालालजीकी जिम्मेदारी पहलेसे भी अधिक बढ़ गई; क्योंकि अब आगे जो कठिनाइयोंका ताता बंधनेवाला था, उसके लिए उन्हें पहलेसे ही तैयार हो जाना जरूरी था। इसलिए उन्होंने अपने खास व्यक्तियोंसे चर्चा शुरू कर दी और सावधान रहनेको भी कह दिया।

निश्चित समय पर याने सुबहके ८ बजे हरिजनोंकी एक टोली भजन करती हुई श्री परांजपेकी अध्यक्षतामें आई और मन्दिरमें प्रवेश किया, फिर आहिस्ता-आहिस्ता हरिजनोंकी और कई भजन-मण्डलियां आती गई और वे मन्दिरमें बैटकर भजन करने लगीं। उधर सनातनी लोग न तो सत्याग्रह ही करने आये और न विरोध करने। उलटे वे सड़क साफ करनेवाले मेहतर-मेहतरानियोंको पकड़-पकड़कर मन्दिरमें भिजवाने लगे। यह काम तो उन्होंने द्वेषवश किया था, पर जमनालालजीके लिए तो वह सहायक हो गया। इस तरह उस दिन १२ बजे तक करीब तीन-चार हजार हरिजनोंने भगवानके दर्शनोंका लाभ लिया।

इस तरह बिना किसी अड़चनके जमनालालजीका यह 'यज्ञ' समाप्त हुआ। कई हरिजनोंने भगवानके दर्शन करनेके बाद आ-आकर जमनालालजीके कार्यकी प्रशंसा की और धन्यवाद दिया।

पूनमचन्द बांठिया

---

१. लक्ष्मीनारायण मन्दिरमें प्रथम हरिजन-प्रवेश ता० १९.७.'२८ को हुआ।

जयपुर सत्याग्रह

जयपुरके प्रधान मंत्रीके साथ पूज्य महात्माजी एवं जमनालालजीका पत्र-व्यवहार चला। पूरे दो महीनेकी कोशिशके बाद जब जमनालालजीने देखा कि जयपुर सरकारके दरबारमें सुनवाई होनेकी कोई सम्भावना नहीं है, तब पूर्व निश्चयानुसार १ फरवरी, १९३९ को उन्होंने जयपुर-स्टेशनमें प्रवेश कर दिया।

इसके बादका सारा इतिहास कम रोमांचकारी नहीं है। जमनालालजीने दो बार जयपुरमें प्रवेश करनेकी कोशिश की और दोनों बार अधिकारियोंने उनके साथ अमानुषी व्यवहार किया। सैकड़ों मील उन्हें दिन-रात मोटरोंमें घुमाया। उनकी इच्छाके विरुद्ध एकसे अधिक लोगोंके द्वारा उन्हें जबरन् खटियासे उठवाकर मोटरमें सुलवाया और जयपुरसे बाहर रखनेकी नाकामयाब कोशिशें कीं। और आखिर अधिकारियोंको हारना पड़ा।

११ फरवरी, १९३९ को जमनालालजी जयपुरसे करीब ९० मील दूर बिलकुल एकान्त स्थानमें ले जाकर रख दिए गए। उनके साथ उनके एक कर्मचारीके सिवा और किसी भी व्यक्तिको रहनेकी इजाजत नहीं दी गई।

इधर जयपुरमें पं० हीरालाल शास्त्री, चिरंजीलालजी मित्र, कपूरचन्दजी पाटनी, हरिश्चन्द्रजी शास्त्री आदि सभी प्रमुख कार्यकर्ताओंकी भी गिरफ्तारियां हुई। सत्याग्रह-आन्दोलन भी पूरे जोरके साथ शुरू हुआ। जयपुरके अतिरिक्त झुनझुन, पिलानी, मुकुन्दगढ़, सीकर, रींगस आदि स्थानोंमें भी सत्याग्रह जोरसे बढ़ा। हजारों गिरफ्तारियां हुई, तीन सौ से अधिक लोग जेलमें बन्द कर दिए गए।

जमनालालजीके साथी अपनी सजाएं पूरी करके रिहा हुए ही थे कि ९ अगस्त, १९३९ को याने करीब ६ माहकी नजरबन्दीके बाद जयपुर सरकार ने जमनालालजीको भी रिहा कर दिया।

जमनालालजीने भी अपने सहज औदार्यके अनुसार अपने साथके दुर्व्यवहारोंकी किसीको याद तक न दिलवाई और अपने वयानमें यह आशा प्रकट की कि जयपुरमें नवीन युगका श्रीगणेश हुआ है। अपने भ्रमणमें भी स्थान-स्थान पर उन्होंने महाराजा साहबकी सहृदयता और जनहितकी भावना की भूरि-भूरि प्रशंसा की। लोक-हितकी दृष्टिसे महाराजा साहबने समावन्दीका कानून रद्द कर दिया, अखवारों परसे पावन्दियां उठा लीं, सीकरके मामलेमें पूरी सहानुभूतिके साथ विचार करनेका वचन दिया और पब्लिक सेफ्टी रेगुलेशनमें ऐसा संशोधन करनेका आश्वासन दिया कि प्रजा-मण्डल या उस जैसी अन्य संस्थाओंकी रजिस्ट्री करवानेकी आवश्यकता ही न रहे।

जयपुर सत्याग्रह आन्दोलनकी सफलताका यह था दृश्य रूप, जिसे सत्याग्रहकी भाषामें हृदय-परिवर्तन कहा जा सकता है। जयपुरके अंग्रेज तथा अन्य बाहरी अधिकारियोंके कारण जो परिस्थिति विगड़ गई थी वह महाराजा साहबके हाथों वातकी वातमें सुलझ गई।

जयपुरको आदर्श रियासत बनानेका उनका स्वप्न था। जयपुरकी याद उन्हें हमेशा बनी रही। ब्रिटिश भारतके सत्याग्रह आन्दोलनमें उन्हें फिर जेल जाना पड़ा, लेकिन जेलमें से भी उन्होंने जयपुरकी स्थिति सुलझानेकी पूरी कोशिश की।

जयपुर उनका चिर-ऋणी रहेगा।

दामोदरदास मूंदड़ा

अनुकरणीय उदाहरण

सेठजी निस्सन्देह कुशल व्यापारी थे—केवल आर्थिक जगत्के ही नहीं आध्यात्मिक क्षेत्रके भी, बल्कि यों कहना चाहिए कि उनका आर्थिक व्यापार भी मुख्यतया आध्यात्मिक क्षेत्रकी सेवाके लिए ही अर्पित था। उनका रुपया किन-किन व्यापारोंमें लगा हुआ था उसके जाननेकी इच्छा भी हमारे मनमें कभी उत्पन्न नहीं हुई। पर इतना हम जानते हैं कि महात्माजीके कार्यों पर उनका जितना भी पैसा लगा, वही इस लोक और परलोकमें भी सबसे अधिक मुनाफेका सौदा सिद्ध होगा, क्योंकि उस क्षेत्रका घाटा भी मुनाफा ही है।

सेठजीके निम्नलिखित शब्द हम सबके लिए एक सन्देश रखते हैं:

"एक व्यापारीके नाते मैं प्रतिवर्ष अपने जन्मदिनके अवसर पर अपना पूरा हिसाब जांच लेता हूं। अब तककी अपनी कमजोरियोंमें से मैं किन-किन को दूर कर सकता हूं और अपनी मानसिक उन्नतिके मार्गमें अब भी क्या-क्या रुकावटें हैं—इनका विचार करके, उनका इलाज ढूंढ़नेकी आदत मैंने डाल रखी है।" सेठजीका यह रूप मेरे सामने पहले कभी नहीं आया था। अमितगति आचार्यके 'सामयिक सार' में एक श्लोक आता है:

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं मनः वचः काय कषाय निर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलम्।।

यानी—"मैं निन्दा, आलोचना और घोर निन्दा द्वारा अपने सांसारिक दुःखों के कारण मन, वचन और शरीर द्वारा किए गए पापोंका विनाश करता हूं, उसी तरह जैसे कोई वैद्य मंत्र-बलसे विषका निवारण करता है।"

जैन लोगों द्वारा नित्यप्रति पढ़ी जानेवाली इस पुस्तिकाका नाम जमनालालजीने चाहे सुना हो या न सुना हो, पर इसके अनुसार कार्य वे अवश्य करते थे। आत्म-चिन्तन व आत्मशुद्धिके लिए उनका यह उदाहरण अनुकरणीय है।

बनारसीदास चतुर्वेदी

बापूके आशीर्वाद

बापूके आशीर्वाद

मोतीहारी, जुलाई १९१७

सुज्ञ भाईश्री जमनालालजी,

आपका खत और हुंडी १५०० रु० की मिली है। मैं ऋणी हुआ हूं। आपका दान हिन्दी-शिक्षा-प्रचारमें ही रखा जायगा। यदि दूसरे कोई सिर्फ इसी कामके लिए भेज देंगे और कुछ धन बचेगा, तो आपका दान दूसरे कार्योंमें भी खर्चा जायगा। मेरा फिर वर्धा आनेका होगा तो खबर दूंगा।[1]

आपका
मोहनदास गांधी

नड़िआद, २७.७.'१८

भाईश्री जमनालालजी,

आपके प्रेमभावसे मैं लज्जित होता हूं। मैं इतने प्रेमके लिए लायक बनूं, ऐसा चाहता हूं—प्रभुजीसे मांगता हूं। आपकी भक्ति आपको हमेशा नीतिमार्गमें आगे ले जायगी, ऐसी मैं आशा रखता हूं।

मारवाड़में विद्या-प्रचारके कार्यकी सफलताके लिए अच्छे व्यवस्थापक की आवश्यकता है।

आपका
मोहनदास गांधी

---

१. फाइलमें प्राप्त जमनालालजीको लिखा गया गांधीजीका यह पहला पत्र है।

सावरमती जेल, १८.३.'२२

भाई जमनालाल,

केवल आर्थिक दृष्टिसे मैं कह सकता हूं कि यदि विदेशी सूत और कपड़ों का व्यापार करनेवाले अपने व्यापारको नहीं छोड़ेंगे और जनता विदेशी कपड़ेके मोहको नहीं छोड़ेगी, तो मुल्ककी महावीमारी – भूख – हरगिज मिट नहीं सकती है। मेरी उम्मीद है, सब व्यापारी खद्दर और चरखा-प्रचारमें पूरा हिस्सा देंगे।

आपका

मोहनदास गांधी

जुहू, जून १९२४

चि० जमनालाल,

तुमको दुःख हुआ उससे मुझे भी हुआ। मैंने उस खतमें चिरंजीव विशेषणका उपयोग नहीं किया, क्योंकि वह मैंने खुला भेजा था। उसमें चि० विशेषण सब लोग पढ़ें, यह उचित होगा या नहीं इसका निर्णय उस समय मैं नहीं कर सका। इससे मैंने 'भाई' शब्दका प्रयोग किया। तुम चि० होनेके योग्य हो या नहीं, अथवा मैं पिताका स्थान लेने लायक हूं या नहीं इसका निर्णय कैसे हो? तुम्हें जैसे अपने बारेमें शंका है वैसे ही मुझे अपने बारेमें है। यदि तुम अपूर्ण हो तो मैं भी अपूर्ण हूं। पिता बननेसे पहले मुझे अपने बारेमें ज्यादा विचार करना था। तुम्हारे प्रेमके वश होकर मैं पिता बना हूं। ईश्वर मुझे इसके योग्य बनाये। यदि तुममें कमी रहेगी तो मेरे सम्पर्ककी वह कमी होगी। मुझे विश्वास है कि हम दोनों प्रयत्न करते हुए अवश्य सफल होंगे। इतने पर भी यदि निष्फलता हुई तो भगवान, जो कि भावनाका भूखा है और हमारे अन्तःकरणको देख सकता है, हमारी योग्यताके अनुसार हमारा फैसला करेगा। इसलिए जब तक मैं ज्ञानपूर्वक अपने अन्दर मलिनताको स्थान नहीं देता हूं तब तक तुमको चिरंजीव ही मानता रहूंगा।

बापूके आशीर्वाद

आश्रम, साबरमती, ४.१२.'२५

मुरब्बी भाईश्री,

आपका तार बापूको दिखाया था। उन्होंने कहा कि डूमस-सम्बन्धी सुझाव शंकरलालका होना चाहिए। मुझे तो पता ही नहीं था। शंकरलालने डूमसके लिए जोर दिया। लेकिन अपना पक्षपात मैंने वर्धाके लिए – आपके लिए और पूज्य विनोबाजीके सहवासके लिए – बताया और बापूने भी कहा कि "मुझे जमनालालजी और विनोबाजी जितनी शान्ति दिलायेंगे उतनी दूसरा कोई नहीं दिला सकता।" इसलिए आज जो तार दिया है वह बापूके कहे अनुसार दिया है। बापू कहते हैं कि एक दिन बम्बई ठहरे बिना यदि नवीं तारीखको ही वर्धा पहुंच सकें तो अच्छा।

बापूको कहां रखा जाय, कहां अधिक से अधिक आराम तथा शान्ति और विनोबाजीका सहवास मिलेगा, यह तो आप ही जानें और तय करें। वहां आयेंगे, यह निश्चित है।

आप आनन्दमें होंगे। बापू आजकल अंबालालभाईके यहां हैं। कल फिर आश्रममें जायंगे। तबीयत ठीक सुधरती जा रही है।

स्नेहाधीन महादेवके प्रणाम

साबरमती, २१.११.'२६

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम दीर्घायु होओ और तुम्हारी पवित्रतामें वृद्धि हो। इस जगतमें बिना दूषणके तो कोई भी नहीं है। हम उसे दूर करनेका प्रयत्न ही कर सकते हैं। वह प्रयत्न तुम कर रहे हो। प्रयत्नशीलकी दुर्गति नहीं है ऐसा भगवानका आश्वासन है।

अब तो ४ ता० को मिलेंगे। ताप्ती व्हेली होकर आनेका विचार कर रहा हूं। शास्त्रीयार[1] कल आ रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

---

१. शास्त्रीयार: श्रीनिवास शास्त्री।

२१.९.'३०

चि० जानकीवहन,

तुम वहुत चंट मालूम होती हो। ज्यों-त्यों करके पत्र लिखनेसे वच निकलना चाहती हो। और यदि भाषण करते-करते हाकिम—'डिक्टेटर' वन जाओगी, तो फिर हम जैसेके तो वारह ही वज जायेंगे न? मालूम होता है जमनालालने नासिकमें अपना धंधा ठीक जमा लिया है। यह तो मैं जानता ही था। उसके पंजेसे कोई छूट ही नहीं सकता।

वापूके आशीर्वाद

य० सं०, २०.८.'३२

चि० जानकीमैया,

खूव! आखिर पेंसिलकी दो सतरें लिखनेकी तकलीफ की तो! जेल जाकर भी आखिर आलस्य नहीं गया न? 'अ' वर्ग देनेमें ही भूल हुई। 'क' वर्ग देकर खूव काम कराना चाहिये था। आलस्यका तो ठीक, परन्तु अव शरीरकी हालत ठीक कर लेना। विनोवाके शिकंजेमें खूव फंसी हो। पत्र वरावर नहीं आयेंगे तो सजा मिलेगी। पुरानी क़मली (शाल) जिस पर तुमने खादी सीकर फिरसे नई वनाई थी वह राज-महलमें हो आई, यह वात मैं कह चुका हूं न? यहां भी वह है। अभी तो वहुत चलेगी।

वापूके आशीर्वाद

वर्धा, अगस्त १९३२

पूज्य वापूजी,

आपका कार्ड ता० १५.८का मिला था। उसमें आपने शिवाजी वगैरा की खवर मंगवाई थी। उसका उत्तर पहुंच गया होगा।

आपका पत्र ता० २०.८.'३२का भी मिला। ओम कहती है कि वापूजीको विशेष काम नहीं होगा जिससे वड़े-वड़े विशेषण लगाते हैं। मेरा

ચિ. જાનકીબ્હેન,

મને કાગળ લખજો. તમારી તબીયત કેમ [illegible] રહે છે? શું ખાઓ છો? દૂધ બરાબર લેવાં જોઈએ. તબીયત સુધારવી જોઈએ. જમનાલાલની કે કમલનયનની કે બીજા કોઈની ફિકર કરવાની હોય નહિ.

કંઈ વાંચવાનું છે કે? સાથે કોણ છે?

અમે ત્રણે મજામાં છીએ. તમને ઘણી વાર સંભારીએ છીએ.

બાપુના આશીર્વાદ

ય. મં.

૨૪-૪-૩૨

From
M. K. Gandhi
Prisoner
Y. C. P.

Shrimati Jankidevi
Bajaj
C class Prisoner
Central Prison
Nagpur
C. P.

'ए' क्लास आपको खटकेगा यह मैं जानती थी। आप 'क' वर्गके लिए इच्छा रखें या उससे भी नीचेके वर्गके लिए, अगर आप मुझे रसोई सिखाना चाहते हों तो यह हो नहीं सकता। और यहां वर्धा तहसीलकी १०० बहनें होनेके कारण दूसरी मेहनत करना चाहूं तो भी आलस्यमें ही समा जाती हूं। लेकिन मुझे तो एक ही भय था कि कहीं 'क'की खुराकसे मर जाती तो?

जानकीका प्रणाम

य० मं०, १९.९.'३२

चि० जानकीमैया,

'क' वर्गका खाना खाकर मरनेका भय तुम जैसोंको होता है, इसीसे बिना खाये जीनेका रास्ता मैंने पकड़ा है। कलसे यह देख लेना। खा-खाकर तो सारा संसार मरता है। 'अ' वर्गका खाकर कितना जी लोगी यह देख लेंगे। परंतु अनशन करते-करते जीनेकी कला कैसी है! एक शर्त जरूर है। तमाम मैयाओंको जोगन बनकर बाहर निकलना पड़ेगा और अस्पृश्योंको स्पृश्य बनाकर खुद भी ईश्वरी शक्ति होनेका दावा साबित करना पड़ेगा। इतना करना और फिर 'अ' वर्गका ही खाना खाती रहना। परंतु यदि कोई 'अ' वर्गका न दे, तो 'क' वर्गके खानेसे भी संतोष मानना।

परंतु मान लो कि जोगनोंका भी कोई बस न चला तो भले ही यह मिट्टीका पुतला टूटकर अभी गिर जाय, मैं तो जीनेवाला ही हूं। जब तक एक भी मैया मेरा काम करती होगी तब तक कौन कहेगा कि मैं मर गया? भले ही आत्माकी अमरता-संबंधी गीताका तत्त्वज्ञान हम छोड़ दें, जो अमरता मैंने बताई है वह तो हम चर्म-चक्षुओंसे भी देख सकते हैं। इसलिए खबरदार जो जरा घबरा गई तो! शोभित होना और शोभित करना। तन, मन, धन ईश्वरको सौंपकर सुखी होना व रहना। नखरीली ओमको और ज्ञानी मदालसाको आज नहीं लिख सकूंगा।

यह तुम सबके लिए है ऐसा समझना। तुम्हारा सौभाग्य अखंड रहे।

बापूके आशीर्वाद

य० मं०, ८.११.'३२

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र अभी हाथ लगा, सुना और उसका जवाब लिखा रहा हूं। तुम चाहते हो वे सब आशीर्वाद टोकरियों भर तुम्हारे जन्म-दिवस पर तुम्हें मिलें। जो मृत्यु चाहे जब छोटे-बड़े, गोरे-काले, मनुष्य-पशु या दूसरे सबके लिए आने ही वाली है, फिर उसका डर क्या? और उसका शोक भी क्या? मुझे तो बहुत बार ऐसा लगता है कि जन्मकी अपेक्षा मृत्यु अधिक अच्छी चीज होनी चाहिये। जन्मसे पहले माताके गर्भमें जो यातना भोगनी पड़ती है, उसे तो मैं छोड़ देता हूं। परंतु जन्मते ही जो यातना शुरू होती है उसका तो हमें प्रत्यक्ष अनुभव है। उस वक्तकी पराधीनता कैसी है? और वह तो सबके लिए एक-सी होती है, जबकि मृत्युमें, यदि जीवन स्वच्छ हो तो पराधीनता जैसी कुछ नहीं रहती। बालकमें ज्ञानकी इच्छा नहीं होती और न उसमें किसी तरह ज्ञानकी संभावना ही होती है। मृत्युके समय तो ब्राह्मी स्थितिकी संभावना है। इतना ही नहीं बल्कि हम जानते हैं कि बहुत लोगोंकी मृत्यु ऐसी स्थितिमें होती है। जन्मके माने तो दुःखमें प्रवेश है ही, जबकि मृत्यु संपूर्ण दुःख-मुक्ति हो सकती है। इस प्रकार मृत्युके सौंदर्यके विषयमें और उसके लाभके विषयमें हम बहुत-कुछ विचार कर सकते हैं और उसे अपने जीवनमें संभवनीय बना सकते हैं। इस प्रकारकी मृत्यु तुमको प्राप्त हो, ऐसे आशीर्वाद और ऐसी कामनामें जो कुछ भी इष्ट हो वह सब आ गया। इस इच्छामें हम दोनों साथी हैं, ऐसा समझो।

बापूके आशीर्वाद

२६.३.'३३

चि० जानकीमैया,

वाह! मेरे पत्रका जवाब तक न देना? मेरा इतना ज्यादा डर है? हरिजनको देते हुए जी दुःख पाता हो तो ऐसा लिखो! मुझे संतरे भेजते हुए थैली खुल जाती है, किन्तु हरिजनके लिए बंद रहती है क्या?

बापूके आशीर्वाद

अ० सौ० प्रिय जानकीवहन,

. . . सूजन अभी कम नहीं हुई। उसमें फिर कैलनबैक बीमार पड़ गए। विजयालक्ष्मी आई हैं, वे आपके यहां ठहरी हैं क्या?

वल्लभभाई कल आ गए होंगे। आज तो जवाहरलाल भी आयेंगे। अब वर्किंग कमेटी बैठेगी। आपके यहां वर्किंग कमेटी बैठेगी न? बीचमें तो सुभाष भी मिलने आ गए।

राधाकृष्ण कहां है? उसका कुछ अभी सुनाई नहीं देता। अनसूया अच्छी होगी।

जमनालालजीकी तबीयत अच्छी होगी। वे भी मेरी तरह भोले हैं। दुःख पड़े तो भी बात भूल जायं। कमलनयन आपके पास है या बम्बई? चि० रामकृष्ण जमनालालजीके साथ बारडोली आया था तब देखा था। उसकी तबीयत अच्छी होगी।

बा के शुभ आशीर्वाद

फरवरी, १९३६
(गुजराती पत्रसे अनूदित)

गांधीजीने सेवाग्राममें रहनेके लिए जानेसे पहले जमनालालजीको "ग्राम-निवास सम्बन्धी मेरी कल्पना" के रूपमें यह लिख कर दिया था:

दिल्ली
१९.३.'३६

बा की इच्छा हो तो उसे लेकर, न हो तो अकेले मुझे ही, सेगांवमें एक झोंपड़ी बनाकर रहना।

मीराबहनवाली झोंपड़ी शायद मेरे लिए काफी न हो।

झोंपड़ी बनानेमें कमसे कम खर्च करना। १०० रु० से ऊपर तो आना ही नहीं चाहिए।

मुझे जितनी मददकी जरूरत हो वह सेगांवमें से ही प्राप्त कर लेनी चाहिए।

जब जब जरूरत हो मुझे मगनवाड़ी जाते रहना चाहिए। ऐसा करनेके लिए जो वाहन मिले उसका उपयोग करना।

. . . के पास ही मीरा . . . रहे। मेरी सेवामें समय न दे, लेकिन गांवके काममें मदद दे सकती है।

जरूरत हो तो महादेव, कांति आदि वहीं रहें। उनके लिए सादी झोंपड़ी बनाना।

ऐसा करते हुए बाहरके जिन कामोंमें मैं भाग ले रहा होऊं उनको जारी रखूं।

खास जरूरतके बगैर बाहरके लोग मुझसे मिलनेके लिए सेगांव न आवें। मगनवाड़ी जानेके जो दिन तय हुए हों उन दिनों वहां मिल लिया करें।

बाहर भ्रमण करनेकी जरूरत मालूम होने पर (जा भी सकता हूं पर) मेरा पूर्ण (विश्वास है कि ऐसा) करनेसे खास (तो मुझको ही) लाभ होनेवाला है और ग्राम-उद्योगका काम अधिक गतिसे चलेगा, लोगोंका ध्यान ग्राम-उद्योगकी तरफ अधिक झुकेगा।

ऐसा करनेसे मीराबहनकी सारी शक्तिका पूरा उपयोग होगा। और महादेव, कांति आदिको भी नया और अच्छा अनुभव मिलेगा।

मेरे गांवमें बस जानेसे मेरी कल्पनामें जो दोष होंगे वे ऊपर आ जायेंगे। दूसरोंको प्रोत्साहन तो मिलेगा ही।

सेगांवमें ही बसनेका (मेरा खास आग्रह) नहीं है, पर वह प्रवाह-पतित मालूम होता है। लेकिन कोई दूसरा गांव अधिक ठीक मालूम हो तो उस पर विचार करनेको मैं तैयार हूं।

बापू

सेगांव, २६.१२.'३८

चि० जमनालाल,

अभी अंग्रेजीकी एक सुन्दर उक्ति देखी थी। उसका अर्थ यह है कि मनुष्यको अपने दोषोंका चिंतन न करके गुणोंका करना चाहिये, क्योंकि मनुष्य जैसा चिंतन करता है वैसा बनता है। इसका अर्थ यह नहीं कि दोष देखे ही नहीं। देखे तो जरूर, लेकिन उनका विचार करके पागल न बने। ऐसा हमारे शास्त्रोंमें भी मिलता है। इस कारण तुमको आत्म-विश्वास रखकर यह निश्चय करना चाहिए कि तुम्हारे हाथों कल्याण ही होनेवाला है। हुआ तो है ही।

बापूके आशीर्वाद

देहरादून, २६.८.'४१

पूज्य बापूजी,

मेरा स्वास्थ्य और मन बहुत ठीक है। यहां स्वाभाविक जीवन बिताने को मिल रहा है। मांका प्रेम भी मुझे जैसा चाहिए मिल रहा है। मां अहिंसा व प्रेमकी मूर्ति मालूम होती हैं। वातावरण भी हरि-स्मरण, कीर्तन व मौनका रहता है। मां पढ़ी-लिखी न होते हुए भी जटिल प्रश्नोंको बहुत सुन्दर तौरसे समझाती हैं। सदा आनंदमें रहती हैं। इनके बारेमें बंगला में काफी लिखा गया है। अंग्रेजी, हिन्दीमें लिखा हुआ तो है, परंतु अभी छपा नहीं है। मांके एक भक्त ज्योतिशचन्द्र रायने, जिन्हें यहां 'भाई' कहा जाता था, आपसे पत्र-व्यवहार भी किया था। उनका स्वर्गवास हो गया है। मांके पति भोलानाथजी, जिन्होंने मांके उपदेशसे संन्यास ले लिया था, कहते हैं पहले बहुत क्रोधी थे। बादमें धीरे-धीरे क्रोध कम हो गया बतलाते हैं। उनकी सेवा भी मांने खूब की थी। उनका स्वर्गवास भी यहीं किशनपुर आश्रममें हो गया। मां गृहस्थी होते हुए भी बाल-ब्रह्मचारिणी बताती हैं। सत्यका ठीक आग्रह रखती हैं। यहांका जीवन भी सीधा-सादा है। कई विद्वान व सज्जन पुरुष मांके भक्त हैं। मां तो अपना सम्प्रदाय या गुरुकुल फैलाना नहीं चाहतीं, परंतु भक्त व पुजारी लोग, जैसा दस्तूर है, आडंबर थोड़ा-बहुत रचते ही रहते हैं। यहांका सृष्टि-सौन्दर्य भी अच्छा है, झरनेका पानी भी स्वास्थ्यके लिए लाभकारक है। इन सब बातोंका विचार करके करीब एक एकड़ जमीन मांके हालके स्थानके पास ही लेनेकी बात है। उस पर दो-तीन हजार रुपये लगाकर छोटा-सा मकान बनानेका विचार किया है। जब कभी मन हो गया या आरामकी जरूरत हुई और छुट्टी मिली तो यहां कुछ रोज आकर रह जानेसे शरीर व मनकी थकावट कम होना संभव है।

मेरा विचार तारीख २ या ३ को यहांसे दो रोजके लिए हरिद्वार जानेका हो रहा है। वहांसे नैनीताल। शायद भाई जवाहरलालसे दुबारा दो-चार रोजमें मिलना हो जायगा। वर्धा तारीख २१ सितंबर तक तो पहुंचना है ही, क्योंकि मैं जेलमें रहता तो इस तारीखको छूटता, सादी सजाके कारण।[1] इसलिए इस तारीखको आपकी सेवामें हाजिर हो जाऊंगा।

---

१. जमनालालजी नागपुर जेलसे बीमारीके कारण ता० ३०.६.'४१ को रिहा हुए थे। उन्हें व्यक्तिगत सत्याग्रहमें ता० २१.१२.'४० को ९ मासकी सजा हुई थी।

बादमें आप मेरी शारीरिक व मानसिक स्थिति समझकर जेल जानेकी आज्ञा देंगे, तो वहां चला जाऊंगा, अन्यथा आपकी सलाहसे कार्यक्रम बनाऊंगा। मुझे शिमला-देहरादूनकी मुसाफिरीसे ठीक अनुभव व शांतिलाभ हो रहा है।

मेरी इच्छा तो हो रही है कि श्री आनन्दमयी मांकी आपसे भेंट हो। आपकी भी इच्छा होगी तो फिर प्रयत्न करके इन्हें वर्धा लानेकी व्यवस्था करूंगा। मुझे 'सेठजी' कहा जाना अच्छा नहीं लगता था, इसलिए 'भैया' या 'भैयाजी' कहना शुरू हो गया है। मांको भी यह पसंद आया है।

जमनालालका प्रणाम

बारडोली
२१.१२.'४१

चि० जमनालाल,

मेरे विचारसे तो ए० आई० सी० सी० की बैठक वर्धामें हो, यही ठीक होगा। तुमको भी ठीक लगे तो तारसे निमंत्रण भेज देना। बैठक मेरे आनेकी तारीखके बाद और १९ तारीखसे पहले हो जानी चाहिए।

मुझे चरखा-संघमें तुम्हारी अनुपस्थिति बहुत महसूस हुई और अब वर्किंग कमिटीमें भी मालूम होगी। पर तुमसे आग्रह न करनेमें ही मैंने श्रेय समझा है।

बापूके आशीर्वाद

गोपुरी, वर्धा,
२४.१२.'४१

पूज्य बापूजी,

आपका ता० २१.१२ का पत्र अभी मिला। पू० राजकुमारी बहनका पत्र यहां कल आ गया था, परन्तु मैं पू० विनोबाके साथ मानखेड गया था।

चि० मदू व बेबी खुश हैं। श्री० जानकीदेवी व पू० मां अभी सीकर से नहीं आई हैं।

क्या चि० इन्दू आपके साथ यहां आनेवाली है?

गो-सेवा संघकी कान्फरेन्स ता० १, २, ३, ४ फरवरीको रखी गई है। सर दातारसिंह भी उस समय आवेंगे ही। और भी कुछ व्यक्तियोंको बुलवा रहा हूं।

मुझे अपने काममें, गो-सेवा संघमें व पू० विनोबाके साथ या अकेले ही देहातोंमें घूमनेसे ठीक शान्ति व उत्साह मिलता जा रहा है। मेरा गाड़ा ठीक चल रहा है। मेरा पत्र तो श्री मौलाना सा० को समय पर मिल ही गया होगा।[1]

जमनालाल बजाजका प्रणाम

३१.७.'४४

चि० जानकी बहन,

ईश्वरकी कृपा होगी तो तुम्हारी खबर लेनेके लिए तीसरी तारीखको पहुंच रहा हूं। 'कृपा' तो भूलसे लिख गया। ईश्वरकी तो हमेशा कृपा ही होती है। हम उस कृपाको न पहचान सकें यह हमारी मूर्खता है। पर उसकी इच्छाके तो हम अपनी इच्छा या अनिच्छासे अधीन हैं ही। अर्थात् उसकी इच्छा होगी तो तीसरीको मिलेंगे। मदालसा और ओम वहां होंगी यह ठीक है। सावित्रीकी अनुपस्थिति खलेगी। कमलका तो कहना ही क्या? वह तो बहुत जंजाली है। अब और नाम भरने लगूंगा तो दूसरी चिट लेनी पड़ेगी और फिर वक्त?[2]

१. बापूके नाम आखिरी पत्र।

२. श्री जमनालालजीके अवसानके बादका यह पत्र है।

जबसे सृष्टिकी रचना हुई और धरातल पर मानवका प्रादुर्भाव हुआ, तभी से 'जीवेत शरदः शतम्'– याने 'सौ बरस जीवो' का आशीर्वाद लेकर ही वह धरती पर अवतरित हुआ है। इसीसे मानवको शतायु कहा जाता है। इतना ही नहीं, सौ बरस जीनेकी कला-कुशलता और साधन-साधनाकी सभी बातें खूब अच्छी तरहसे मानवको समझाई गई हैं। वेदोपनिषदादि जितने शास्त्र हैं और मानव-जीवनके आधारभूत विश्वके जितने धर्मग्रन्थ हैं, वे मानवके शतायु होनेके साधन और साधनाओंके अप्रतिम दृष्टान्तोंसे भरे हुए हैं। वैसे सभी धर्मग्रन्थोंमें मानवके सौ बरस तक जीनेकी बात पर तरह-तरहसे जोर दिया गया है। दयाभावसे दीन-दुःखियोंकी सेवा करना, परस्पर एक-दूसरेके साथ सहयोग करते हुए आत्मोन्नतिके मार्ग पर आगे बढ़ना, सदा विश्व-कल्याणकी कामना करना, अखिल विश्वको एक परिवार समझना और दुनियामें सब मानव सदा सुखी हों ऐसी निरंतर प्रार्थना करना यही हमारी धर्म-भावना है।

स्मरणिका : चार :

पूर्णमिदम्

सन्तों की मालिका के मणि

कल शामको चार बजे महिलाश्रममें मेरा व्याख्यान रखा हुआ था। उस व्याख्यानके लिए मैं वहां जा पहुंचा, लड़कियां आकर बैठीं और मैं मेरा भाषण शुरू ही करनेवाला था कि इतनेमें मोटर आई। साथमें आए हुए आदमीने कहा कि "जमनालालजी बीमार हैं और आपको बुलाया है।" जमनालालजी ऐसे बीमार तो नहीं थे, इसलिए उनके बीमार होनेकी खबर सुनकर भी उसका अधिक विशेष गहरा अर्थ मैं नहीं समझा, फिर भी व्याख्यान छोड़कर मैं गांधीचौकमें आया। गाड़ीसे नीचे उतरते ही देखा कि दिलीप ऊपरसे उतर रहा है। उसके चेहरे पर दुःख दिखाई दे रहा था, फिर भी मुझे पूरी कल्पना नहीं आई और मैंने उसको पूछा कि "जमनालालजीकी तबीयत कैसी है?" उसने कहा-"वे तो गए!"

इतनी अचानक, अनपेक्षित और चित्तको क्लेश पहुंचानेवाली खबर सुनकर मुझे क्या लगना चाहिये, यह आप समझ सकते हैं। परन्तु मुझे तो अत्यन्त विलक्षण और अनोखा ही अनुभव आया। वह खबर क्लेशदायक तो थी ही, पर उसे सुनकर मुझे कुछ एक विशेष आनन्दका आभास अन्तरमें मिला और उस आनन्दकी अवस्थामें ही मैं ऊपर जिस कमरेमें उनका शव पड़ा था वहां गया। जो लोग वहां बैठे हुए थे उनके चेहरे पर जब स्पष्ट दुःखकी छाया मैंने देखी, तब मुझे भास हुआ कि ऐसी कुछ घटना हो गई है कि जिससे अनेकोंको दुःख हो सकता है। फिर भी मुझे कबूल करना चाहिए कि भीतरसे जिस आनन्दका अनुभव मुझे हो रहा था वह कुछ कम नहीं हुआ। अन्तमें सायंकाल प्रेतको अग्नि-संस्कार देनेके बाद जब 'ईशोपनिषद्' और 'गीताई' के श्लोक मैं बोलने लगा तब तो उस आनन्दका पारावार नहीं रहा। यह मेरी हालत रातको सो जाने तक ऐसी ही रही। सबेरे उठनेके

बाद जमनालालजीकी मृत्युसे कितनी क्षति हो गई है और हमारी जिम्मेवारी कितनी बढ़ी है, इसका धीरे-धीरे भान होने लगा। आगे सारी हालत कैसी हुई होगी यह आप समझ सकते हैं, परन्तु मुझे जो आनन्द अनुभव हुआ वह किस वजहसे आया यह बताना आवश्यक है।

जमनालालजीने गो-सेवाका काम हाथमें लिया है, यह बात मुझे जेलमें मालूम हुई थी। उसे सुनकर मुझे समाधान मिला। यह उपयोगी काम जमनालालजीने उठाया है तब देशका तो उससे भला होगा ही, परंतु उनके अपने चित्तको भी उसकी वजहसे शान्ति मिलेगी ऐसा लगा। साथ ही साथ उनके थके हुए शरीरको यह काम असह्य होनेवाला है यह सम्भावना भी मैं देखता ही था। मैं जेलसे बाहर आया तब पहली बार भेंटते ही उन्होंने प्रश्न पूछा कि: "मैंने गो-सेवा-संघका काम लिया है, उसके विषयमें आपका मत क्या है? आपका क्या अभिप्राय है?" मैंने उनको कहा: "यह सुनकर मेरे चित्तको बहुत समाधान मिला है।" मेरे इतने शब्द बोलते ही उनकी आंखोंमें पानी आ गया। इधर इन दो-तीन महीनोंमें गो-सेवाके जैसा पवित्र प्रेमभाव उत्पन्न करनेवाला और आत्माकी उन्नतिके लिए साधनरूप ऐसा यह सुन्दर काम मिलनेसे उनके चित्तको बहुत समाधान हुआ दिखाई देता था और हमेशासे भी अधिक एकाग्रतासे और दृढ़तासे उन्होंने यह काम चलाया। वे जब गुजरे तब उनके मनकी जितनी उन्नत अवस्था थी, उतनी पहलेके पूरे बीस वर्षोंके प्रयत्नोंमें नहीं थी। गत बीस वर्षोंसे मनके सूक्ष्म परीक्षणका उनका अभ्यास होते हुए भी मनकी जो उन्नत अवस्था उन्हें प्राप्त नहीं हो सकी, वह इन दो-तीन महीनोंमें उन्हें झपाटेसे प्राप्त हो गई। शुरूसे उनके साथ निकटका परिचय होनेसे मैं यह कह सकता था। ऐसी उन्नत अवस्थामें मृत्यु होना बहुत आनन्दकी बात है। मृत्यु तो हरेकको ही आनी है, पर मरने मरनेमें भी विभिन्नता होती है। एकदम आखिर तक काम करते करते, दूसरेकी सेवा न लेते हुए मनकी उन्नत अवस्थामें देह त्याग कर जानेका भाग्य प्राप्त होनेसे अधिक जीवनका सुन्दर अन्त और क्या हो सकता है? यह ध्यानमें आनेसे मैं आनन्दमें था। प्रस्तुत घटना दुखदायक होते हुए भी उसमें आनन्दकी जो अनुभूति थी वह मैंने आपके सामने रखी। मुझे लगता है कि ऐसी ही मृत्यु भगवानके पास हम मांगें और इसी दिशामें और इसी हेतुसे अपना सारा प्रयत्न हो।

रामायणमें एक प्रसंगका तुलसीदासजीने वर्णन किया है। सुग्रीव और वालीका युद्ध चल रहा था तव रामने वालीको वाण मारा और उस वाणसे विह्वल होकर वाली गिर पड़ा तब वाली और रामका जो संवाद हुआ वह दिया है। रामने वाण मारा इसके लिए वालीने रामको ठपका दिया। तव राम वालीको कहते हैं कि: "हे मेरे प्यारे वालक, मैंने तुझे यह वाण नहीं मारा है, वल्कि यह मैंने तुझ पर प्रेम किया है। परन्तु अगर तेरी इच्छा ही हो तो मैं तुझे जिन्दा रखूं। तेरी जैसी इच्छा हो वैसा करूं।" तव वालीने कहा—"राम, आज तुम्हारा प्रत्यक्ष दर्शन मिला है। और ऐसा लाभ मिलनेके साथ मुझे मरनेका मौका मिल रहा है, तव मैं उसे गुमाऊं और तुमसे आयुष्य मांगूं? तो फिर जव मरनेकी वारी आयेगी तव यह दर्शन इन आंखोंको मिलेगा इसका मुझे भरोसा नहीं है। इसलिए यही स्थिति मैं स्वीकारता हूं। मुझे अव जीनेकी इच्छा नहीं है, अभी मरना मेरे लिए श्रेयस्कर है।" इतना वोलकर वाली मुक्त हो गया और रामकी ज्योतिमें मिल गया। ऐसे चित्र और चरित्रका रामायणमें वर्णन किया है। इसमेंका भाव यह है कि चित्तका शोधन करते-करते उन्नत अवस्था तक पहुंच कर उसी अवस्थामें मरना भला है। मैं जानता हूं कि जमनालालजीने ऐसी मृत्यु पाई और इसलिए यह दुःखका विषय नहीं पर आनन्दका विषय है, उसकी ईर्ष्या होने जैसी बात है।

उनके अनेक गुणोंका वर्णन हम कर सकते हैं, परन्तु उनका सबसे बड़ा गुण यह था कि सेवाके अनेक कार्य करते हुए यह सेवा कितनी हुई इसका वाहरी अन्दाज वे हिसावी व्यक्तिके नाते लगाते थे, फिर भी उसका मुख्य नाप वे अलग तरहसे ही लगाते थे कि इस सेवासे मेरे अन्तःकरणका मैल, अशुद्धि कम हो रही है न? यह वे देखते थे। जो सेवाकार्य किया उसका परिणाम चित्तशुद्धिके रूपमें दिखाई दिया तो वह सेवा सच्ची; और चित्तशुद्धिका परिणाम कम दिखाई दिया तो वह सेवा खोटी, ऐसा उन्हें लगता था। हरेक सेवाको चित्तशुद्धिकी कसौटी पर वे घिस लेते थे। चित्तशुद्धिके फलको ही वे सेवाका कस (निचोड़) समझते थे। चित्तशुद्धिकी ऐसी भावनामें जो देह छोड़ गया वह गया ही नहीं। वह छोटे देहमें से गया, किन्तु समाजके व्यापक शरीरमें प्रविष्ट हो गया, ऐसा अनेक वार होता है।

देह आत्माके विकासके लिए ही है, परन्तु जिनकी आत्मा विशेष उन्नत हुई है उनके आगेके विकासके लिए देहमें पूरा अवकाश नहीं मिल पाता।

उनकी उस विशाल आत्माके लिए शरीर छोटा पड़ने लगता है तव वे आत्माएं देहको फेंककर देहरहित अवस्थामें अधिक सेवा करती हैं; और ऐसी स्थिति जमनालालजीकी हुई है। तुम्हारे मेरे शरीरमें उन्होंने प्रवेश किया है ऐसा मैं तो देख रहा हूं। ऐसी मृत्यु जिन्दा मृत्यु है। मृत्यु भी जिन्दा हो सकती है और जीवन भी मृत हो सकता है। जिन्दा मृत्यु वहुत कमको प्राप्त होती है। जमनालालजीकी यह ऐसी मृत्यु है। इसका परिणाम तुम पर हम पर अवश्य होगा। लेकिन वैसा परिणाम होनेके लिए अनुकूल मनकी ऐसी खुली दशा हमें रखनी चाहिए। ऐसे परिणामका एक छोटासा ही उदाहरण देता हूं।

जमनालालजीकी मृत्युके वाद उनकी पत्नीको ऐसा संकल्प करनेकी प्रेरणा हुई कि अपना देह राष्ट्र-कार्यमें समर्पण हो। उन्होंने अपनी खुदकी निजी सम्पत्ति राष्ट्रको समर्पण करनेका संकल्प किया। जानकीवाई कोई विशेष पढ़ी-लिखी वहन नहीं हैं अथवा विकासका एकाध स्वतन्त्र सावन उन्हें प्राप्त हुआ हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह परिणाम जमनालालजी की मृत्युका हुआ ऐसा इसका अर्थ है। देह रहते हुए आत्मा जो परिणाम नहीं कर सकती है या कर सकती है वह अथवा उससे अविक परिणाम देह छूट जानेके वाद वह कर सकती है। इसका यह एक दृष्टान्त है। और भी ऐसे उदाहरण होंगे। कारण वड़ी आत्माएं देह छोड़नेके वाद ही अविक वलवान वनती हैं। सन्तोंके दृष्टान्त हम देखते ही हैं। वे जीवित थे तव समाज उनकी कीमत नहीं करता था वल्कि उनका छल करता था। परन्तु देहसे मुक्त हो जानेके वाद देहसे वाहर रहकर वहुत ही शक्तिशाली परिणाम समाजके चित्त पर वे कर सके। ऐसी ही मालिकामें जमनालालजीका छोटासा ही क्यों न हो स्थान है। इसलिए उन्होंने जितने जोरोंसे कार्य किया उससे अधिक जोरसे वह कार्य आगे चलानेकी प्रेरणा हमें ईश्वरकी कृपासे मिल सकने वाली है। वह प्रेरणा ग्रहण करनेके लिए हमारा चित्त खुला रहे, यह प्रार्थना करके श्रद्धाका यह भाषण समाप्त करता हूं।[1]

---

१. श्री जमनालालजीके निधन पर गांधीचौकमें हुआ विनोवाजीका दिनांक १२ फरवरी, १९४२ का भाषण। ब्रह्मविद्या मंदिर, परंधाम: गौतम वजाजके सौजन्यसे प्राप्त।

'शुद्ध धर्म-भावना'

सेठ जमनालाल बजाजको छीनकर कालने हमारे बीचसे एक शक्तिशाली व्यक्तिको छीन लिया है। जब-जब मैंने धनवालोंके लिए यह लिखा है कि वे लोक-कल्याणकी दृष्टिसे अपने धनके ट्रस्टी बन जायें तब-तब मेरे सामने सदा ही इस वणिक-शिरोमणिका उदाहरण मुख्य रहा। अगर वह अपनी संपत्तिके आदर्श ट्रस्टी नहीं बन पाये, तो इसमें दोष उनका नहीं था। मैंने जान-बूझकर उनको रोका। मैं नहीं चाहता था कि वे उत्साहमें आकर ऐसा कोई काम कर लें, जिसके लिए बादमें शांत मनसे सोचने पर उन्हें पछताना पड़े। उनकी सादगी तो उनकी अपनी ही चीज थी। अपने लिए उन्होंने जितने भी घर बनाये, वे उनके घर नहीं रहे, धर्मशाला बन गये। सत्याग्रहीके नाते उनका दान सर्वोत्तम रहा। राजनैतिक प्रश्नोंकी चर्चामें वह अपनी राय दृढ़तापूर्वक जाहिर करते थे। उनके निर्णय पुख्ता हुआ करते थे। त्यागकी दृष्टिसे उनका अंतिम कार्य सर्वश्रेष्ठ रहा। वे किसी ऐसे रचनात्मक काममें लग जाना चाहते थे, जिसमें वे अपनी पूरी योग्यताके साथ अपने जीवनका शेष भाग तन्मय होकर बिता सकें। देशके पशुधनकी रक्षाका काम उन्होंने अपने लिये चुना था, और गायको उसका प्रतीक माना था। इस काममें वह इतनी एकाग्रता और लगनके साथ जुट गये थे कि जिसकी कोई मिसाल नहीं। उनकी उदारतामें जाति, धर्म या वर्णकी संकुचितताको कोई स्थान न था। वे एक ऐसी साधनामें लगे हुए थे, जो कामकाजी आदमी के लिए विरल है। विचार-संयम उनकी एक बड़ी साधना थी। वे सदा ही अपनेको तस्कर विचारोंसे बचानेकी कोशिशमें रहते थे।

उनके अवसानसे वसुंधराका एक रत्न कम हो गया है। उनको खोकर देशने अपना एक वीरसे वीर सेवक खोया है। जिस कार्यके लिए उन्होंने अपना शेष जीवन समर्पित कर दिया था, उसे अब उनकी विधवा जानकीदेवीने

स्वयं करनेका निश्चय किया है। उन्होंने अपनी समस्त निजी संपत्तिको, जो करीव ढाई लाखके आसपास है, कृष्णार्पण कर दिया है। ईश्वर उन्हें अपने इस अंगीकृत कार्यमें सफल होनेकी शक्ति दें।

हरिजनसेवक, १५.२.'४२

वे 'रायवहादुर' थे। लेकिन मेरे साथ उनका सम्वन्ध 'रायवहादुरी' से पहले ही कायम हो चुका था। मैंने उन्हें रायवहादुरी लेने दी, क्योंकि उन दिनों मैं सोचता था कि उसका भी कुछ सदुपयोग हो सकेगा। जब उसे छोड़नेकी वात आई, तो उन्हें उसका त्याग करनेमें एक क्षणकी भी देर न लगी।

उनकी निर्भयता तो असाधारण ही थी। जवसे 'पुत्र' वने तवसे वे अपनी समस्त प्रवृत्तियोंकी चर्चा मुझसे करने लगे थे। अन्त-अन्तमें जव उन्होंने गो-सेवाके लिए फकीर वननेका निश्चय किया, तो वह भी मेरे साथ पूरी तरह सलाह-मशविरा करके ही किया।

वे जिस कामको हाथमें लेते थे, उसमें जी-जानसे जुट जाते थे। यही उनका स्वभाव था। जव रुपया कमाने लगे तो ढेरों रुपया कमाया। लेकिन जहां तक मुझे मालूम है, मैं दावेके साथ कह सकता हूं कि अनीतिसे उन्होंने एक पाई भी कभी नहीं कमाई। और, जो कुछ कमाया, सो सव उन्होंने जनता-जनार्दनके हितमें ही खर्च किया।

परन्तु उनमें जो शाश्वत था, मगर एक सीमामें वंधा हुआ था, वह अव हम सवका हो गया है। जव तक जीवित थे, जमनालालजी कुछ ही लोगोंके थे, किन्तु अब वे सारे विश्वके वन गए हैं। उनके शरीरका अन्त हुआ है, किन्तु उनके व्रत, उनकी प्रतिज्ञाएं, उनकी गो-सेवा, उनकी खादी-सेवा, सत्य और अहिंसाकी उनकी लगन, ये सव तो अव हममें आकर मिल गई हैं... हमारी विरासत वन गई हैं। उन्होंने इन सव व्रतोंको सिद्ध करनेके लिए जो कुछ भी किया, सो सव तो अव हमारा है ही; लेकिन जितना कुछ वह

अधूरा छोड़ गये हैं, उसे पूरा करनेका जिम्मा भी हमारा है। अपनी मृत्यु द्वारा वे आज हमें यही सिखा गये हैं।

मेरे सब काम अच्छी तरह चलते हैं या नहीं, मेरा समय कोई नष्ट तो नहीं करता, मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहता है या नहीं, मुझे आर्थिक सहायता बराबर मिलती है या नहीं, इसकी फिक्र उनको बराबर रहा करती थी। कार्यकर्ताओंको लाना भी उन्हींका काम था। अब ऐसा दूसरा पुत्र मैं कहांसे लाऊं? जिस रोज मरे उसी रोज जानकीदेवीके साथ वह मेरे पास आनेवाले थे। कई बातोंका निर्णय करना था, लेकिन भगवानको कुछ और ही मंजूर रहा। ऐसे पुत्रके उठ जानेसे बाप पंगु बनता ही है। यही हाल आज मेरा है। जो हाल मगनलालके जानेसे हुआ था, वही ईश्वरने इस बार फिर मेरे साथ किया है। इसमें भी उसकी कोई छिपी कृपा ही है। वह मेरी और भी परीक्षा करना चाहता है, करे। उत्तीर्ण होनेकी शक्ति भी वही देगा।

२२.४.'४२

सच्ची श्रद्धा का सबूत

कहा जाता है कि मेरे साथ जमनालालजीका सम्बन्ध करीब-करीब तभीसे शुरू हुआ जबसे मैंने हिन्दुस्तानके सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया। उन्होंने मेरे सभी कामोंको पूरी तरह अपना लिया था, यहां तक कि मुझे कुछ करना ही नहीं पड़ता था। ज्यों ही मैं किसी नए कामको शुरू करता वह उसका बोझ खुद उठा लेते थे। इस तरह मुझे निश्चिन्त कर देना, मानो उनका जीवन-कार्य ही बन गया था। यों हमारा काम मजेमें चल रहा था, लेकिन अब तो वह खुद ही चले गए हैं और उनके सब कामोंको चलानेका भार मेरे कंधों पर आ पड़ा है। इसलिए . . . अपना भिक्षापात्र लेकर मैं आपके सामने खड़ा होता हूं। लेकिन मैं धन-दौलतकी भीख नहीं मांगता। वैसी भीख भी मैंने जीवनमें खूब मांगी है। लेकिन गरीबकी कौड़ी और अमीरोंके करोड़ोंकी आज मुझे जरूरत नहीं है।

आज जो काम मुझे करना है उसमें रुपये-पैसेकी कम ही जरूरत है। अगर मैं चाहता तो आजके दिन जमनालालजीके सव धनिक मित्रोंको यहां इकट्ठा करके उन पर दवाव डाल सकता था, उनकी खुशामद कर सकता था और उनकी भावनाओंको द्रवित करके थैलियोंके मुंह खुलवा सकता था। यह धंधा भी मैंने अपने जीवनमें जी भरकर किया है और वह मुझे अच्छी तरह आता भी है। लेकिन वही सव आज मैं यहां करने वैठता तो उस व्यक्तिके नामको वड़ा धव्वा लगता। मुझे अपना कर्तव्य देकर वह चल वसा है, जो मेरे पास आया तो मेरी परीक्षा लेनेको, मगर पुत्र वनकर वैठ गया और मेरा सारा वोझ उठाता रहा। मुझे जो भिक्षा आज आपसे मांगनी है वह तो यह है कि जमनालालजीके उठ जानेसे जो वोझ वढ़ गया है उसको उठानेमें कौन-कौन मेरी मदद करेंगे? अकेले एक आदमीकी मददसे काम नहीं चलेगा। मदद तो सवको मिलकर देनी होगी और काम वांट लेना होगा।

इस संवंधमें आगे कुछ कहनेके पहले मैं आपको वता दूं कि अभी तक मैंने क्या किया है। ११ फरवरीको जव मैं जमनालालजीके द्वार पर पहुंचा तो उनका देहांत हो चुका था। मेरे पास वर्धासे संदेशा तो सिर्फ यही आया था कि खूनका दौरा कम करनेकी दवा भेजें। मैं दवा भेजकर अपने दिलकी तसल्ली कर सकता था। लेकिन उस दिन मैंने महसूस किया कि नहीं, मुझे खुद ही जाना चाहिए। जव वहां पहुंचा तो मामला कुछ और ही पाया। मैं उस अवसर पर भी निर्दयी वन गया। जानकीदेवी तो पतिके शवके साथ सती होनेकी वात करती थी। मैंने कहा कि सचमुच सती वनना है तो जीती-जागती सती वन जाओ। धनका जितना त्याग कर सको कर दो। यह तो उनके लिए एक मामूली वात थी। आखिर धनसे वह कितना सुख और आराम भोग सकती थीं! लेकिन दूसरी चीज उतनी आसान नहीं थी। संभव है, वह भी उतनी आसान न हो। मैंने कहा कि वह अपने पतिका स्थान ले लें। उन्हें संकोच हुआ, फिर भी मैंने उनसे प्रतिज्ञा करा ही ली। इतना कठोर मैं वन गया।

इस तरह जानकीदेवीने त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली। लेकिन फिर मैंने सोचा कि उनके लड़के-लड़कियों और दामाद वगैराको भी ऐसा ही त्याग

करना चाहिए। मैं उनके साथ भी कठोर हो गया। मैंने उनसे कहा, "बेशक आप जमनालालजीकी तरह व्यापार कीजिए, लेकिन उसमें उनकी विशेषताको निबाहते रहिए, यानी व्यापार भी सेवाभाव अथवा धर्मभावसे कीजिए। जितना कमाएं, नीति-पूर्वक कमाइए और उसे खर्च भी पुण्य कार्यके लिए कीजिए। अपने ऐश-आरामके लिए नहीं, यानी आप अपने कमाए धनके भी संरक्षक बनकर रहिए।

जमनालालजी करीब ६ लाख रुपया अपने लड़कोंके पास छोड़ गये थे, ताकि वे उसका उपयोग सेवार्थ करें। यानी इससे मेरे जैसे भिखारियोंकी झोलियां भरें। लड़के कह सकते थे कि एक बार हमें जी भर कर ऐश-आराम करने दीजिए, फिर हम त्याग भी करते रहेंगे। लेकिन नहीं, एक-दो दिनके गंभीर विचारके बाद उन्होंने वह सारी रकम सेवा-कार्यके लिए दे दी।

इस तरह शुभ संकल्पोंके साथ यह काम शुरू हुआ है। जमनालालजी की आंख बंद होते ही मैंने उनके बोझका बंटवारा कर लिया है। आप देखेंगे कि जमनालालजीके कामोंकी फेहरिस्त आपको भेजी गई है। उसमें उनके आखिरी कामको पहला स्थान मिला है। यह काम स्वराज्य-प्राप्तिके कामसे भी कठिन है। स्वराज्य मिलनेसे वह अपने आप ही नहीं हो जायगा। यह सिर्फ पैसेसे होनेवाला काम नहीं। मैं इस बातका साक्षी हूं कि आजीवन अलौकिक निष्ठासे काम करनेवाले उस व्यक्तिने किस अपूर्व निष्ठासे उस कामको शुरू किया था। उन्हें इस तरह काम करते देख कर एक दिन सहज ही मेरे मुंहसे निकल गया था कि जिस वेगसे वह इस कामको कर रहे हैं उसको उनका शरीर सह सकेगा या नहीं? कहीं बीचमें ही वह धोखा तो नहीं दे जायगा! आज मेरा वह कथन भविष्यवाणी सिद्ध हुआ है, मानो उस समय भगवान ही मेरे मुंहसे बोल रहे थे। सारांश यह कि यह काम पैसेसे नहीं, एकनिष्ठासे होनेवाला है। जानकीदेवीने जो ढाई लाखकी रकम दान की है उसमें से ढाई हजार रुपए गायोंके काममें खर्च करनेका वह पहले ही संकल्प कर चुकी थीं। इसके सिवा वर्धामें एक प्रसूति-गृह बनानेकी उनकी इच्छा थी। कुछ रुपया उसमें लगेगा। बाकी करीब सवा दो लाख

गोमाताके कामके लिए रह जाता है। वीस-पच्चीस हजार रुपया अखिल भारत गो-सेवा-संघका था, वह भी आज हमारे पास है। जानकीदेवीके दानकी रकमके साथ मिलकर यह रकम हमारी आजकी आवश्यकताके लिए काफी है, लेकिन कार्यकर्ता काफी नहीं हैं। गो-सेवाका काम आज तक जिस तरह चला उससे न जमनालालजीको संतोष था, न मुझे। इस कामको संतोष-जनक रूपमें चलानेके लिए मुझे आपकी तन, मन, धनसे मदद मिलनी चाहिए। जब तक यह न हो जायगा मुझे चैन न पड़ेगा। असलमें वारिस तो उन्हें मेरा बनना चाहिए था, पर वह तो चले गए और जी गए। अव परीक्षा मेरी है। मैं एक नये रूपमें उनका वारिस बन गया हूं। यानी उनके सारेके सारे कामोंको मैंने अपने जिम्मे ले लिया है। लेकिन यह तो एक ऐसी चीज है जिसके वारिस आप सब बन सकते हैं। जब आप सब मिल कर इन कामोंको उठा लेंगे तो यह पहलेसे भी ज्यादा व्यवस्थित और संतोष-जनक रीतिसे चलेंगे और तभी मैं इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो पाऊंगा।

जमनालालजी तो बड़भागी थे। उनकी तरह हम भी अपनेको बड़-भागी साबित कर सकते हैं, बशर्ते कि जो चीज उनके रहते हमें साफ नहीं दिखाई दी वह उनके बाद हमें साफ दिखाई देने लगे। जो जाग्रति हममें उनके जीवित रहते नहीं आई वह अब सबमें आ जाय। यह सब कठिन है। मगर एक तरहसे आसान भी है। अगर आप यह कठिन काम कर सकते हैं तो करें। परंतु मैं नहीं चाहता कि आप कुछ शरमा-शरमी करें। इससे तो आप जमनालालजीके प्रति अपनी सच्ची श्रद्धाका सबूत नहीं दे सकेंगे। लेकिन बिना किसी संकोचके सोच-समझकर उनके काममें थोड़ीसी मदद पहुंचायेंगे, तो आप यहांसे एक बड़ा काम करके चले जायंगे।

उनका सबसे बड़ा काम गो-सेवाका था। वैसे तो यह काम पहले भी चलता था; लेकिन धीमी चालसे। इससे उन्हें सन्तोप न था। उन्होंने इसे तीव्र गतिसे चलाना चाहा, और इतनी तीव्रतासे चलाया कि खुद ही चल बसे। अगर हमें गायको जिन्दा रखना है, तो हमें भी इसी तरह उसकी सेवामें अपने प्राण होमने होंगे। इसी तीव्रतासे काम करना होगा। अगर हम गायको बचा पाये तो हम भी बच जायंगे।... जमनालालजी हमें अपना

रास्ता बता गये हैं। शायद आपको मालूम हुआ होगा कि उन्होंने गो-सेवाकी दो योजनाएं तैयार की थीं। एक सारे देशके लिए, दूसरी वर्धाके लिए।

अब दूसरी चीज लीजिये। मिसालके तौर पर, खादीके काममें उनकी दिलचस्पी मुझसे कम न थी। खादीके लिए जितना समय मैंने दिया उतना ही उन्होंने भी दिया। उन्होंने इस कामके पीछे मुझसे कम बुद्धि खर्च नहीं की थी। इसलिए कार्यकर्ता भी वह ही ढूंढ़-ढूंढ़कर मेरे पास लाया करते थे। थोड़ेमें यह कह लीजिये कि अगर मैंने खादीका मंत्र दिया, तो जमनालालजीने उसको मूर्त रूप दिया। खादीका काम कुछ होनेके बाद मैं तो जेलमें जा बैठा, मगर वह जानते थे कि मेरे नजदीक खादी ही में स्वराज्य है। अगर उन्होंने तुरन्त ही उसमें रत होकर उसे संगठित रूप न दिया होता, तो मेरी गैरहाजिरीमें सारा काम तीन-तेरह हो जाता।

यही बात ग्रामोद्योगकी थी। उन्होंने इसके लिए तो मगनवाड़ी दी ही थी। साथ ही उसके सामनेकी कुछ जमीन भी वह मगनवाड़ीके लिए खरीदने का संकल्प कर चुके थे। अब चि० कमलनयनने वह जमीन भी मगनवाड़ीको दे दी है। ग्रामोद्योगका काम इतना व्यापक है कि इसमें अटूट रुपया खर्च किया जा सकता है।

जमनालालजीके दूसरे कामोंके बारेमें मैं आपका इस वक्त ज्यादा समय नहीं लेना चाहता। वे सब आपकी आंखोंके सामने ही हैं। महिला-आश्रमको ही लीजिये। यह उनकी अपनी एक विशेष कृति है। . . . उन्होंने कहा कि कमसे कम उनकी लड़कियोंको सरकारी मदरसोंके मुकाबलेमें अच्छी ही तालीम मिल सकेगी। बस, इसी खयालसे महिला-आश्रमकी स्थापना हुई। आज इस आश्रमके लिए एक त्यागी और सुशिक्षित महिलाकी आवश्यकता है। आप इस आवश्यकताकी पूर्तिमें सहायक हो सकते हैं। बुनियादी तालीम और हरिजन-सेवक-संघके कामका भी यही हाल है। आप इनमें शरीक हो सकते हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए उनके दिलमें खास लगन थी। उनके अन्दर साम्प्रदायिक द्वेषकी बू तक न थी। आप उनके जीवनसे इस गुणको ग्रहण कर सकते हैं। . . .

२०.२.'४२

सच्चा स्मारक

जमनालालजीका स्मृति-स्तम्भ खड़ा करके हम उनकी यादको चिरस्थायी नहीं बना सकते। स्तम्भ पर खुदे हुए शिला-लेखको तो लोग पढ़कर थोड़े ही समयमें भूल जायंगे, परन्तु जिस आदमीने दुनियाके लिए इतना कुछ किया है उसके कामको चिरस्थायी रखनेका संकल्प कोई कर ले, तो वह सच्चा स्मारक हो रहेगा। किन्तु उसके लिए मैं जबरदस्ती नहीं करना चाहता और न मैं आपसे ही वैसी कोई आशा रखता हूं। जिसे जो कुछ भी करना हो आत्मोन्नतिके लिए करे। अगर दिखावेके लिए कुछ भी होगा तो उससे मुझे और जमनालालजीकी आत्माको उल्टा कष्ट ही होगा। . . . जो शुद्ध धर्म-भावना अन्तिम समयमें जमनालालजीकी थी, उसे मैं कायम रखना चाहता हूं। इसलिए जो कुछ करना हो उसी भावनासे करें। एकान्तमें बैठें, अन्तर्मुख बनें और ईश्वरको साक्षी रखकर जो संकल्प करना हो करें।

मो. क. गांधी

बापू का आह्वान

आप जानते हैं कि जमनालाल और मेरे बीच कितना घनिष्ठ सम्बन्ध था। ऐसा कोई काम मैंने नहीं किया जिसमें उनका पूरा सहयोग तन, मन और धनसे न रहा हो। जिसको राजकाज कहते हैं, वह न मेरा शौक था, न उनका। वह उसमें पड़े, क्योंकि मैं उसमें था। लेकिन मेरा सच्चा राजकाज तो था रचनात्मक कार्य और उनका भी राजकाज यही था। मेरी आशा थी कि मेरे बाद जो मेरे खास काम माने जायं, उन्हें वह संपूर्णतया चलावेंगे। उन्होंने मुझे ऐसा आश्वासन भी दे रखा था। लेकिन मनुष्यकी इच्छाकी पूर्ति तो ईश्वर ही करता है। हमारी इच्छा सफल न हुई। मेरी श्रद्धा मुझे सिखाती है कि इस निष्फलतामें ही सफलता मिलेगी। जो भी हो, अब मुझे सोचना है कि जमनालालजीके बदलेमें उनके कार्य कौन करेंगे और कैसे? इस प्रश्नकी चर्चा, और हो सके तो उसे हल करनेके लिए आपको कष्ट दिया जाता है। किसीको आनेका आग्रह तो इसमें हो नहीं सकता है। जिन कामोंमें जमनालालजीने खास दिलचस्पी ली है, उनकी फेहरिस्त वक्तके क्रमसे इसके साथ है। इन कामोंमें आप हिस्सा लेना चाहते हैं और आप आ सकते हैं तो अवश्य आइये।[1]

आपका

सेवाग्राम, १४.२.'४२ मो० क० गांधी

जमनालालजी के महत्त्वपूर्ण जीवन-कार्य

१. शिक्षा-मण्डल की स्थापना
२. सत्याग्रह आश्रम तथा ग्रामसेवा
३. राष्ट्रभाषा
४. अखिल भारत चरखा-संघ
५. गांधी-सेवा-संघ
६. महिला-सेवा-मण्डल
७. हरिजन-सेवा
८. देशी रियासत
९. ग्रामोद्योग-संघ
१०. नव भारत विद्यालय तथा अर्थवाणिज्य महाविद्यालय
११. नई तालीम
१२. गो-सेवा

---

१. जमनालालजीके देहांतके चौथे दिन ही उनके मित्र-समुदायको यह निमंत्रण भेजा गया था।

मोक्ष का साधन

पिछले दिनों जब नागपुर जेलमें हम सब साथ थे, वे अक्सर बातचीतके दौरान मुझसे कहा करते थे, "ऐसा कोई काम या प्रवृत्ति मुझे चाहिए, जिसमें सारी शक्ति और समय लगाकर मैं देशकी सेवा कर सकूं।" इसी दरमियान एकाएक तबीयत खराब हो जानेकी वजहसे वे अपनी मियादके कोई पांच-छ: हफ्ते पहले ही जेलमें से रिहा कर दिए गए। रिहा होते ही वे एक सत्याग्रही सिपाहीके नाते सीधे गांधीजीके सामने हाजिर हुए। हुक्म मिला कि जब तक सजाकी मुद्दत पूरी न हो, दुबारा सत्याग्रह करना मुनासिब न होगा। यह वक्त तन्दुरुस्तीको संभालनेमें खर्च होना चाहिए। अतएव स्वास्थ्य-सुधारके विचारसे वे करीब एक महीने शिमला रह आये और जिस दिन उनकी नौ महीनेकी सजाकी मुद्दत पूरी होती थी, ठीक उसी दिन वापस गांधीजीके पास आ पहुंचे। बहुत सोच-विचारके बाद गांधीजीने तय किया कि उनके शरीरकी जर्जरित अवस्थाको देखते हुए उन्हें फिरसे जेल जाने की इजाजत तो वे न दे सकेंगे। चुनांचे जमनालालजी किसी कामको आधे दिलसे तो कभी करते ही न थे। जिस चीजको हाथमें ले लेते थे, उसके पीछे अपना सर्वस्व लगा देते थे। वे तुरन्त गो-सेवाके व्रतधारी बन गए। वर्धा और नालवाड़ीके दरमियान उन्होंने अपने रुपयोंसे बहुत-सी खुली जमीन खरीद ली और उस पर अपने लिए घास-फूसकी एक कुटिया बनाकर उसीमें रहने लगे।

फिर क्या था? जमनालालजी थे और उनकी गो-सेवा थी। रात-दिन उसीकी लगन, उसीकी धुन। सचमुच गो-सेवाको उन्होंने अपने लिए 'मोक्ष का साधन' ही मान लिया था। ऐसा मालूम होता था मानों वसिष्ठकी

नन्दिनीके इस वरदानको उन्होंने अपने जीवनका सूत्र बना लिया हो—'न केवलानां पयसः प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम्।' अर्थात् यह न सोचो कि मैं केवल दूध ही दे सकती हूं; मैं कामधेनु हूं, प्रसन्न हो जाऊं तो जो चाहूं, दे सकती हूं।

इसलिए जब उनके अग्निदाहका प्रश्न उठा तो गांधीजीने उसके लिए गोपुरीकी भूमि ही पसन्द की। वहीं उनकी अर्थी पहुंचाई गई। वर्धाकी अधिकांश जनता तो उन्हें अपने पिताके रूपमें देखती थी। शामके वक्त उनकी शव-यात्राके साथ सारा शहर गोपुरीमें उमड़ पड़ा। वहीं गांधीजी भी जमनालालजीकी अस्सी वर्षकी वयोवृद्ध माता, पत्नी जानकीदेवी और अन्य कुटुम्बी-जनोंके साथ आए। अतिशय स्नेह और आदरके साथ उन्होंने जमनालालजीकी सूनी कुटियाके कोने-कोनेकी यात्रा की।

एक ओर उन्होंने जमनालालजीकी माताको दिलासा दे-देकर शान्त किया, दूसरी ओर जानकीदेवीको, जो 'सती' होनेके विचारसे चिता पर बैठनेको तैयार थीं, 'सती' का सच्चा अर्थ समझाया और चिताग्निकी साक्षीमें पतिके अपूर्ण कार्यको पूरा करनेके लिए उनसे अपना सर्वस्व दे देने और शेष जीवन यज्ञ-बुद्धिसे बितानेका संकल्प करवाया। श्री विनोबा तो वहां थे ही। कुष्ठरोगसे पीड़ित श्री परचुरे शास्त्री भी अपनी रोगशय्या छोड़कर सेवाग्रामसे पैदल गोपुरी आए थे और वहां मौजूद थे। विनोबाजीके और शास्त्रीजीके मंत्रोच्चारकी ध्वनिसे सारी गोपुरी गूंज उठी। श्रीमती अम्तुल सलामने 'फातेहा' पढ़ा, कुरानकी कुछ आयतें पढ़ीं। इतनेमें काफी अंधेरा हो गया। चिता धू-धू जल रही थी। थोड़े ही समयमें जमनालालजीका भौतिक शरीर जलकर भस्म-स्वरूप बन गया, किन्तु चिताग्निकी लाल-नीली लपटोंके उस प्रकाशमें जब सब लोग विसर्जित होकर अपने-अपने घर लौटे तो बजाय शोक या रुदनके सबके चेहरों पर सतीके पुण्य-संकल्पकी झलक ही नजर आई। ऐसा प्रतीत होता था मानो सब अपने किसी महानुभाव साथीको

किसी लम्बी पुण्य-यात्राके लिए विदा करके उसके पदचिह्नों पर चलनेका निश्चय लिये लौट रहे हों।

उस दिन सेवाग्राम लौटने पर शामकी प्रार्थनाके बाद गांधीजीने आश्रम-वासियोंके सामने सारी घटनाका वर्णन करते हुए अपने हृदयके जो उद्‌गार प्रकट किए, श्री महादेवभाईके शब्दोंमें उनका सार इस प्रकार है:

"सवाल यह था कि अग्निदाह कहां किया जाय – सेवाग्रामके पास टीले पर, सार्वजनिक श्मशान-भूमिमें या गोपुरीमें? आखिर यह तय हुआ कि जिस गोपुरीको उन्होंने अपना घर बनाया था, जहां अपने जीवनके अन्तिम कार्यके लिए अपना सर्वार्पण करके उन्होंने फकीरीको अपनानेका निश्चय किया था, अग्निदाह भी वहीं किया जाय। मैं इस बारेमें तटस्थ था, लेकिन मुझे यह निर्णय अच्छा लगा।

"उनके शवके साथ हजारों लोग गोपुरी तक आए। अग्निदाहके बाद विनोबाने अपने मधुर कण्ठसे सारे का सारा ईशोपनिषद् सुनाया। फिर मैंने उनसे 'गीताई' का बारहवां अध्याय सुनानेको कहा, ताकि वहां उपस्थित सब लोग उसे समझ सकें। बारहवां अध्याय मैंने इसलिए सुझाया था कि वह छोटा है, किन्तु उन्हें तो अठारहों अध्याय जबानी याद हैं, इसलिए उन्होंने नवां सुनाया। मगर उतनेसे मुझे तृप्ति न हुई। मैंने कहा, 'कोई अभंग सुनाओ।' इस पर उन्होंने तुकारामका एक अभंग भी सुनाया। अन्तमें मैंने कहा, अब 'वैष्णव जन तो तेने कहीए' भी सुना दो। उन्होंने वह भी सुनाया। श्री परचुरे शास्त्री वहां पहलेसे ही पहुंच चुके थे। उन्होंने वेद-मंत्र पढ़े और मेरे कहने पर लोगोंको उन मंत्रोंका अर्थ भी सुनाया। मंत्र बड़े अर्थ-गम्भीर और सामयिक थे। थोड़ेमें उनका सार यह था – जो ज्योति जमनालालजीमें सीमित थी, वह अब सीमारहित विश्व-ज्योतिमें समा गई है, यानी हम सबमें आ मिली है। शरीर तो मिट्टीका था, मिट्टीमें मिल गया। परन्तु उसमें जो शाश्वत था, मगर एक सीमामें बंधा हुआ था, वह

अब हम सबका हो गया है। जब तक जीवित थे, जमनालालजी कुछ ही लोगों के थे; किन्तु अब वे सारे विश्वके बन गए हैं। उनके शरीरका अन्त हुआ है, किन्तु उनके व्रत, उनकी प्रतिज्ञाएं, उनकी गो-सेवा, उनकी खादी-सेवा, सत्य और अहिंसाकी उनकी लगन, ये सब तो अब हममें आकर हमारी विरासत बन गई हैं। उन्होंने इन सब व्रतोंको सिद्ध करनेके लिए जो कुछ भी किया, सो सब तो अब हमारा है ही, लेकिन जितना कुछ वह अधूरा छोड़ गए हैं, उसे पूरा करनेका जिम्मा भी हमारा है। अपनी मृत्यु द्वारा वे आज हमें यही सिखा गए हैं।"

दूसरे दिन सभाकी कार्रवाई शुरू करते हुए गांधीजीने कहा :

"अगर जमनालालजीकी मृत्युसे हम फायदा उठाना चाहते हैं, तो हमें बहुत ज्यादा सावधान बनना होगा, बहुत ज्यादा संयम और त्याग सीखना होगा।

"मैं अक्सर सोचता हूं कि अगर हममें से हरएकको एक सालके फौजी अनुशासनका तजुरबा रहता तो आज हमारी हालत कुछ और होती। जमनालालजी किसी फौजी विद्यालयमें तालीम लेने नहीं गए थे। मगर उन्होंने खुद अपनी कोशिशसे अपने अन्दर फौजी अनुशासनके गुण पैदा कर लिए थे। वैसी ही तालीम हममें से हरएकको खुद ले लेनी होगी।"

प्यारेलाल

ईश्वर ने उन्हें वही दिया . . .

जमनालालजीका जन्म ४ नवम्बर, १८८९ को हुआ था और मृत्यु हुई ११ फरवरी, १९४२ के दिन। कुल ५२ वर्ष ३ महीने और ७ दिन उन्होंने अपने भौतिक शरीरमें वास किया। इन वर्षोंमें संसारकी इस रंगभूमि पर जमनालालजीने अनेक पात्रोंके अभिनय किए। सेठका अभिनय किया और राजनैतिक नेताका भी। महलोंमें रहे, जेलोंमें भी रहे। पुत्रका स्वांग धारण किया, पिताका भी। पर इन सभी स्वांगोंमें कुछ अनोखे लक्षण थे, जो जमनालालजीके हर अभिनयमें स्पष्ट प्रकट हो जाते थे।

किसीको अपने शरीर पर आवश्यकतासे अधिक खर्च करनेका अधिकार ही क्या है? इस मंत्रको उन्होंने यहां तक पचा डाला था कि वह उनकी एक ग्यारहवीं इन्द्रिय बन गया था। शारीरिक आराम और विश्राम-सम्बन्धी इस हद दरजेकी कृपणताके बीच उनका धनके प्रति निर्मोह और अद्‌भुत उदारता, यह दो विषयोंका एक अनोखा संमिश्रण था। पर इस समन्वयका भाष्य आसानीसे किया जा सकता है। शारीरिक खर्च सम्बन्धी जमनालालजीकी कृपणता इस बातकी द्योतक थी कि जो ईश्वरने हमें दिया उस निधिके हम महज संरक्षक हैं। उसको 'स्व' भोगोंके लिए नहीं, किन्तु 'पर' के उत्थानके लिए ही हम व्यय कर सकते हैं। धनके प्रति उनकी उदासीनता इस बातकी द्योतक थी कि धन अन्य साधनोंकी तरह परोपकारके लिए,एक साधारण साधन मात्र है। उसके विना आसानीसे व्यवहार चल सकता है। जहां दैवी सम्पदा है, परोपकार वृत्ति है, वहां धन हो तो क्या, न हो तो क्या? दैवी सम्पदा ही प्रधान है, धन गौण साधन है। उनकी यह भावना उनके आत्म-विश्वास की निशानी थी। उनकी ईश्वरमें अटूट श्रद्धाका यह चिह्न था। उन्हें युधिष्ठिरके इस कथनका मर्म अच्छी तरह विदित था:

यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा, यज्ञाय सृष्टः पुरुषो रक्षिता च।
तस्मात्सर्वं यज्ञ एवोपयोज्यं, धनं न कामाय हितं प्रशस्तम्॥

विधाताने यज्ञ अर्थात् परोपकारके लिए धन पैदा किया और मनुष्य को उसका संरक्षक अर्थात् ट्रस्टी बनाया। इसलिए मनुष्यको अपना सारा धन परोपकारमें लगाना चाहिए, न कि ऐहिक भोग-विलासमें।

जिस ट्रस्टीशिपकी कल्पना गांधीजीने आज धनिकोंके सामने रखी है, उसी पद्धतिका युधिष्ठिरने भी आजसे पांच हजार साल पहले जिक्र किया था। जब मनुष्य धनका एक रक्षकमात्र है और धनकी सृष्टि परोपकार के लिए ही हुई है, तो मनुष्य उस धनका—पराये धनका—अपने भोग-विलासके लिए व्यय कर ही कैसे सकता है? और करता है तो अमानतमें खयानत करता है—ऐसा युधिष्ठिरका कथन था। और यही आज गांधीजीका भी कथन है।

एक दिन क्रोधमें बच्छराजजीने बालक जमनालालको कुछ भला-बुरा कह दिया। और यह भी कहा कि तुम्हें तो मेरे धनसे प्रेम है मुझसे नहीं, इसलिए तुम वापस अपने जन्मदाता पिताके यहां चले जाओ। जमनालालजी जैसे आत्माभिमानी बालकको इससे बुरा तो लगना ही था। पर इस घटनासे उन्हें अपने नैसर्गिक गुणोंको प्रकट करनेका मौका मिल गया। चट अपना बंधना-बोरिया बांधकर वह घरसे निकल बाहर हुए। दौलतको लात मारी और अपनी निर्लोभताका उन्होंने अद्‌भुत परिचय दिया। उन्होंने बच्छराजजीको एक दस्तावेज दे दिया जिसमें अपने सारे के सारे कानूनी हकको तिलांजलि दे दी। बच्छराजजी लड़केकी यह त्यागवृत्ति, निर्भयता, आत्माभिमान, धर्म-भीरुता और स्वाश्रयता देखकर गद्‌गद हो गए। अहिंसाकी विजय हुई। बच्छराजजीको अपनी भूलका ज्ञान हुआ और उन्होंने बालकको वापस बुला लिया।

जमनालालजीने जो पत्र उस समय बच्छराजजीको लिखा वह एक अनूठा दस्तावेज है। जमनालालजीकी उम्र उस समय सत्रह सालकी थी। सत्रह सालकी उम्रमें ही बालक जमनालालके विचार कितने सुलझ गए थे, उनमें कितनी निर्भयता आ गई थी, धनके प्रति उनकी कितनी उदासीनता थी, उनमें कितना आत्म-विश्वास था, धर्ममें उनकी कितनी श्रद्धा थी, दानमें कितनी अभिरुचि थी, विपक्षीके प्रति क्रोधका उनमें कितना अभाव था, भाषामें कितनी स्पष्टोक्ति थी, ये सब बातें जमनालालजीका वह पत्र अत्यन्त

स्पष्टतासे हमें बताता है। ये सब गुण, जो बालक जमनालालमें बचपनमें ही आ गए थे, आगे जाकर पनपते ही गए और जमनालालजीको एक महान व्यक्ति बनानेमें सहायक हुए।

पितामह बच्छराजजीको पौत्र जमनालाल द्वारा लिखा गया वह अनूठा पत्र इस प्रकार है:

॥ श्री गणेशजी ॥

"सिद्ध श्री वर्धा शुभस्थान पूज्य श्री बछराजजी रामधनदास सूं लिखी चि० जमनका पांवांधोक बांचीज्यो। अठे उठे श्री लक्ष्मीनारायणजी महाराज सदा सहाय छे। अपरंच समाचार एक बांचीज्यो। आपकी तबीयत आज दिन हमारे ऊपर निहायत नाराज हो गई सो कुछ हरकत नहीं। श्री ठाकुरजीकी मरजी और गोदका लियोड़ा था जद आप इस तरह कह्यो। सो आपको कुछ कसूर नहीं, जिको हमाने गोद दियो जिनको कसूर छे। बाकी आप कह्यो कि तुम नालिस करो सो ठीक। बाकी हमारो आपके ऊपर कुछ कर्जो छे नहीं। आपको कमायेड़ो पीसो छे। आपकी खुसी आवे सो करो। हमारो कुछ आप ऊपर अधिकार छे नहीं। हमां आपसूं आज मिती ताईं तो हमारे बारेमें अथवा जो हमारे ताईं जो खर्च हुयो, बाकी आज दिनसूं आप कनेसूं एक छदाम कोड़ी हमां लेवांगा नहीं, अथवा मंगावांगा नहीं। आप आपके मन मां कोई रीतका विचार करज्यो मतना। आपकी तरफ हमारो कोई रीतको हक आज दिनसूं रह्यो छे नहीं और श्री लक्ष्मीनारायणजी सूं अर्ज ये है कि आपको शरीर ठीक राखे और आपने हाल बीस-पच्चीस बरस तक कायम राखे। और हमां जठे जावांगा, बठेसूं थांके ताईं इस माफक ठाकुरजी सूं विनती करांगा। और म्हारे सूं जो कुछ कसूर आज ताईं हुयो सो सब माफ करजो। और आपके मनमें हो कि सब पीसांका साथी है, पीसांके ताईं सेवा करे छे, सो हमारे मनमां तो आपके पीसांकी बिलकुल छे नहीं। और भी ठाकुरजी करेगा तो आपके पीसेकी हमारे मनमें आगे भी आवेगी नहीं। कारण हमारो तगदीर हमारो साथ छे। और पीसो हमारे पास होकर हमां कांई करांगा। म्हाने तो पीसा नजीक रहनेकी बिलकुल परवा छे नहीं।

"आपकी दयासे श्री ठाकुरजीका भजन सुमिरन जो कुछ होवेगा सो करांगा। सो इस जनम मांही भी सुख पावांगा और अगला जनम मांही भी सुख पावांगा। और आप आपके चित्तमां प्रसन्नता राखियो। कोई रीतको फिकर करजो मतना। सब झूठा नाता छे। कोई कोईको पोतो नहीं। और कोई कोईको दादो नहीं । सब आप आपका सुखका साथी छे। सब झूठो पसारो छे। आप हाल ताईं मायाजाल मांही फंस रह्या छो। हमां आज दिन आपके उपदेश सूं मायाजाल सूं छूट गया छां। आगे श्री भगवान संसार सूं बचावेगा। और आपके मनमां इस तरह बिलकुल समझो मतना कि हमारे ऊपर नालिस फरियाद करेगो। हमां हमारे राजीखुशी सूं टिकिट लगाकर सही कर दीनी छे कि आपके ऊपर अथवा आपकी स्टेट, पीसा, रुपया, गहना-गांठी और कोई भी सामान ऊपर आजसे बिलकुल हक रह्यो नहीं सो जाणज्यो। और हमारे हाथको कोईको करजो छे नहीं । कोईने भी एक भी पीसो देनो छे नहीं सो जाणज्यो। और तो समाचार छे नहीं। और समाचार तो बहुत छे, परन्तु हमारेसे लिख्यो जावे नहीं।

"संवत् १९६४ मिती वैसाख वदी २, मंगलवार, पूज्य श्री १०५ दादाजी श्री बछराजजी सूं जमनका पांवांधोक बांचीज्यो।

"घणे घणे मानसेती आपकी तरफ हमारो कोई रीतको लेन-देन रह्यो नहीं। श्री ठाकुरजीके मंदिरको काम बराबर चलाज्यो। और आपसुं दान धरम बने सो खूब करता जाइयो और ब्राह्मण साधूने गाली बिलकुल दीजो मतना और कोईने भी हाथको उत्तर देइजो, मुंहको उत्तर दीजो मतना। ज्यादा कांई लिखां। इतना मांह समझ लीजो। और हमां आपकी चीजां सागे ल्यांगा नहीं। सो सर्व अठेई आपके छोड़ गया छां। खाली अंग ऊपर कपड़ा पहर्या छां।"

जमनालालजीके अनेक गुण हैं, जो उनकी कीर्तिको स्थायी रखेंगे। पर यदि जमनालालजीमें अनेक गुण न भी होते तो उनका यह अकेला पत्र भी उनके यशको अमर बनाये रखनेके लिए काफी था। कितने माईके लाल होंगे जो घर आई लक्ष्मीसे मुंह मोड़कर, बिना किसी विषाद या उद्वेगके, इस तरह धनसे भरे घरको लात मार दें?

जमनालालजीका यह पत्र अवश्य ही कल्याण-मार्गके पथिकोंके लिए अंधेरेकी ज्योति है। या तो यह चिट्ठी 'ताप-तिमिर-तरुण-तरणि-किरण-मालिका' है।

गुदड़ी में भी लाल होते हैं

शायद १९१२ की वात है। बम्बईमें मारवाड़ी पंचायत-वाड़ीमें विशिष्ट मारवाड़ियोंका एक छोटासा समाज मंत्रणाके लिए इकट्ठा हुआ था। बम्बई में एक मारवाड़ी विद्यालयकी स्थापनाका आयोजन हो रहा था। समाजके धनी और वृद्ध, सभी लोग उपस्थित थे। किन्तु किसीने स्कूली शिक्षा नहीं पाई थी। इसलिए उन्हें यह पता नहीं था कि क्या करना है। पर धन एकत्र करना है, यह तो सभी जानते थे। सभामें तरह-तरहके लोग थे। अप्रस्तुत वातें भी चलती थीं। विषयान्तर भी होता था। पर एक मनुष्य था, जो जब अपना मुंह खोलता तो लोग उसे ध्यानसे सुनते थे। मैंने भी उसे ध्यानसे देखा। वह पुरुष नितान्त युवक था। पचीसीके इसी ओर ही। गौर वर्ण, स्थूल शरीर, गोल मुंह, शरीर पर रेशमी कोट और सिर पर काश्मीरी काम की टोपी। खादीकी तो उस समय किसीको कोई कल्पना भी नहीं थी। स्वदेशीकी परिभाषामें उस समय जापानी कपड़ा तक त्याज्य नहीं माना जाता था। इसीसे युवककी वेश-भूषाके सारे कपड़े स्वदेशी नहीं थे। ठाठबाट अमीराना था। चेहरे पर नजाकत थी, पर आंखोंसे सरलता और एक तरहकी तेजस्विता टपकती थी। शिक्षित तो साधारण-सा ही मालूम होता था, पर वोल रहा था निर्भयता और पूरे आत्म-विश्वासके साथ, और वह लोगोंको प्रभावित भी कर रहा था।

मैं तो उस नवयुवकसे भी छोटा था, वीसीके इसी पार। पर मुझसे उमरमें थोड़ा ही बड़ा वह युवक जिस आत्म-विश्वास, अनुभव और प्रभावके साथ वोल रहा था, वह देखकर मुझे कुछ डाह-सी हुई। मैंने किसीसे पूछा कि यह युवक कौन है? पता लगा कि इस नौजवानका नाम जमनालाल वजाज है। इस छोटी-सी उम्रमें देहातमें रहनेवाला एक साधारण शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति सामाजिक कार्योमें इतनी लगन और सचाईसे रस ले सकता है, यह जानकर कुछ आश्चर्य और कुछ कुतूहल हुआ। मुझे जानना चाहिये था कि गुदड़ीमें भी

लाल होते हैं। बस, वहींसे मेरा जमनालालजीसे परिचय हुआ, और उनसे उस दिनसे जो मैत्री हुई, वह फिर जमती ही गई।

तथास्तु

गांधीजी एक महान व्यक्ति हैं और बेजोड़ राजनीतिक नेता भी। पर असलमें तो सत्यके तकाजेने उन्हें राजनीतिमें घसीटा। उनका वास्तविक गुण तो शुद्ध सत्य है। राजनीति न तो उनका ध्येय है, न वह इसके कारण महान व्यक्ति हैं। महत्ता उनकी स्वतन्त्र विभूति है। उनकी राजनीति उस विभूतिका फल है। हजार साल पहले यदि गांधीजी जन्मते, तो भी उनकी महत्ता तो इतनी ही होती, पर उनके कार्य राजनीतिक न होकर किसी दूसरी वांछनीय दिशामें होते।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

इस ईश्वरीय प्रतिज्ञाका अर्थ इतना ही है कि जिस समय सन्ताप होता है उस समय कोई दैवी विभूति उस सन्तापको दूर करनेके लिए प्रकट होती है। मूक पशुओंकी यज्ञके नाम पर होनेवाली हत्याको मिटाने और बढ़े हुए भोग-विलास और विषय-वासना पर अटकाव डालनेके लिए बुद्ध जन्मे। तो गोरी प्रजाके बढ़े हुए लोभको अटकाने, उनके द्वारा पीली काली गेहुआं प्रजाके दुःख-दर्दोंको काटने, उनकी परतन्त्रता मिटाने, उनकी जड़ता हटाने और संसारमें अहिंसा-स्थापनाके लिए शायद गांधीजीने जन्म लिया हो। हेतु तो दोनोंमें धर्मका अभ्युत्थान था, पर बाहरी रूप एकका संन्यासीका था, दूसरेका राजनीतिक नेताका; यह तो बड़ी आत्माओंकी बात हुई। पर मध्यम श्रेणीके लोगोंके जीवनका भी तो हेतु होता है। रामके साथ वानर जन्मे, कृष्णके साथ गोप। बुद्धके साथ श्रमण आये। गांधीजीके साथ अनेक नेता और स्वयंसेवक-सेना आई।

तो जमनालालजी भी परमार्थके लिए आये। बाहरी रूप उनका चाहे नेताका रहा, पर उनका मन तो परमार्थमें बसा था। बुद्धके समयमें वह जन्मते

तो श्रमणोंकी सेवामें दान-धर्म करते-करते शायद स्वयं श्रमण बन जाते। इस जमानेमें जन्मे तो राजनीतिक वातावरणसे अलिप्त न रह सके। कहा जा सकता है कि उनके परमार्थने उन्हें राजनीतिमें घसीटा और इसका भी दिलचस्प इतिहास है।

जमनालालजीके घरमें कुछ जमींदारी भी थी। उनके पितामह बच्छराजजीके जमानेमें सरकारी वसूलीका खजाना बैलगाड़ी पर लादे हुए कुछ सिपाही उनकी जमींदारीमें से गुजरे और महज इसीलिए कि उन सिपाहियों को खानेके लिए सब चीजें मुफ्त मिलीं, पर घी-दूध कुछ कम मिला, उनके एक प्यादेको सरकारी सिपाहियोंने खूब पीटा। उनके घरानेकी सरकारमें काफी चलती थी, उनके पितामह बच्छराजजी आनरेरी मजिस्ट्रेट भी थे। उन्होंने सरकारी सिपाहियोंको सजा दिलानेकी कोशिश की, पर दौड़-धूप करने पर भी बजाज-कुटुम्बको न्याय न मिला। जमनालालजीके चित्तको इस घटनासे काफी सदमा पहुंचा। परमार्थ-वृत्ति जमनालालजीको राजनीतिमें ढकेलने लगी।

गांधीजी इन दिनों अफ्रीकामें थे। पर बिना देखे ही गांधीजीमें जमनालालजीकी भक्ति जम गई। जमनालालजीमें स्वदेश-भक्तिके साथ-साथ सादगी और आत्मोत्थानकी लगन थी। इसलिए गांधीजीकी ओर उनकी आंखें सहज ही जाती थीं। गांधीजीका अनोखापन उन्हें अपनी ओर जोरसे खींच रहा था, और गांधीजी जब स्वदेश लौटे तो वह उनके सहवासमें अधिकाधिक आने लगे। गांधीजीका भी इनके प्रति स्नेह बढ़ने लगा। एक रोज जमनालालजीने हठात् गांधीजीसे कहा, "आपसे एक दान मांगता हूं।" गांधीजीको सुनकर आश्चर्य हुआ कि जमनालाल क्या दान मांगेगा।

"कहो तो सही। देखूं, क्या मांगते हो। शक्ति होगी तो दूंगा।"

"बस मैं इतना ही चाहता हूं कि मुझे देवदासका भाई, अपना पांचवां पुत्र आप मान लें!"

गांधीजीको सानन्द आश्चर्य हुआ और उन्होंने "तथास्तु" कह दिया। गांधीजीका पुत्र बननेके लिए भी मनुष्यमें पात्रता चाहिए। गांधीजीका दत्तक पुत्र बनना या शिष्य बनना एक ही बात है। किसी महापुरुषका

दत्तक पुत्र बनना या शिष्य बनना, यह एक कमर तोड़नेवाली जिम्मेदारी है और आत्मोत्थानका एक वरदान भी है।

जो हो, जमनालालजीने एक बड़े साहसके क्षेत्रमें कदम रखा और गांधीजीने उस साहसको उत्तेजन दिया। वह दिन और उनकी मृत्युका दिन, इसके बीचके समयको उन्होंने गांधीजीके 'पुत्रत्व'को निवाहनेमें बिताया और जी-जानसे प्रयत्न किया।

भविष्य की पूजा

"बापू, जमनालालजी तो चले गये"—बस उसने इतना ही कहा। ये अत्यंत कठोर शब्द थे। तो भी, पता नहीं क्यों, इस अनिष्टका विश्वास करनेको जी नहीं चाहा।

एक दृश्य शुरूका मेरी आंखोंके सामने आया, जब जमनालालजीको बम्बईमें पंचायत-वाड़ीमें मैंने देखा था। जमनालालजी उस समय नौजवान थे, ताजा थे। एक स्वरूप वह था, एक शक्ल जमनालालजीकी आजकी थी!

कितना अन्तर था इन दोनोंमें!

पहला दृश्य पूरे तीस सालकी प्राचीनता पा चुका था। इस लम्बे अरसेमें कितनी घटनाएं घटीं। कितना ऊंचनीच जमनालालजीने देखा। पर जमनालालजीकी गाड़ी तो बस जो चली तो फिर वह चली ही चली। सन्मार्गकी पटरियों पर तेजीके साथ वह दौड़ती ही रही। पानी और कोयलेके लिए इंजन ठहरता है। पर जमनालालजीने तो दाना-पानी भी दौड़ते-दौड़ते ही चुगा। अविश्रान्त गतिसे दौड़ती हुई गाड़ीमें कहींका पुर्जा ढीला हो गया, तो कहींसे कील टूटकर गिर गई। पर जमनालालजीको तो अपनी मंजिल पर पहुंचना था। इसलिए मरम्मतके लिए भी उन्हें फुरसत कहां? ढलती उम्रमें शरीर ढीला पड़ गया था। पर गाड़ी तो दौड़ती ही जाती थी।

'वृद्धत्वं जरसा विना'—बावन सालकी उम्रमें ही जमनालालजीको बुढ़ापा क्यों आ गया? क्योंकि उन्होंने अपनी गाड़ीकी रफ्तार बढ़ा दी

थी। जमनालालजीने अपने बावन वरसोंमें, इससे कहीं अधिक वरसोंकी जिन्दगी बसर की। उन्हें धीरज नहीं था कि मंजिल पर धीरे-धीरे पहुंचें। इसलिए गाड़ी टूटती गई। तो भी जमनालालजीने मुड़कर नहीं देखा। गाड़ी टूटती है या साबुत रहती है, इसकी जमनालालजीको न कोई चिन्ता थी, न उसका विषाद। ध्येय था मंजिल पर पहुंचना और जल्दीसे जल्दी पहुंचना। इसलिए शरीरकी अवज्ञा करके भी उनकी आत्मा उड़ान लेती जा रही थी।

शरीर बेचारा आत्माका कहां तक साथ दे सकता था? अन्तमें शरीरने दौड़नेसे इन्कार कर दिया, तो आत्माने शरीरको तजा और अकेली ही दौड़ने लगी। घोड़ोंकी डाकमें एक घोड़ा थक जाता है, तो सवार दूसरे घोड़े पर चढ़के देखता है। जमनालालजीका भी यही हाल था। जब शरीर थक गया तो आत्माने उस थके शरीरको छोड़ दिया। आत्माको तो अभी दौड़ना ही है। उसे अपनी मंजिल पर पहुंचना है। तो फिर ताजा घोड़ा — शरीर क्यों न पकड़ा जाय?

आत्मा शरीरको छोड़कर उड़ गई। दौड़ जारी है। जमनालालजीकी आत्मा जब तक मंजिल पर नहीं पहुंचती, विश्राम ले ही नहीं सकती। उसकी उड़ान जारी रहेगी। जमनालालजीके जीवनकी यह सूत्ररूप कहानी है।

गांधीजीने आते ही जमनालालजीके सिर पर हाथ रखा। जमनालालजी की धर्मपत्नी, जानकीदेवी तो कुछ हक्की-वक्की-सी रह गई थीं। गांधीजीको देखते ही वह आशाकी तरंगोंमें उछलने लगीं।

"बापूजी, ओ बापूजी! आप पासमें होते तो यह न मरते। मैंने आपको इनकी तबीयत बिगड़ते ही जल्दी खबर क्यों न भेज दी! इन्हें आप अब जिन्दा कर दीजिये? क्या आप इन्हें जिला नहीं सकते?"

गांधीजीने कहा, "जानकी, अब तुम्हें रोना नहीं है। तुम्हें तो हंसना है और बच्चोंको हंसाना है। जमनालाल तो जिन्दा ही है। जिसका यश अमर है, तो फिर उसकी मृत्यु कैसी? उसकी मृत्यु तो तभी हो सकती है, जब तुम उसका मार्ग-अनुसरण करनेसे मुंह मोड़ो। जमनालालने परमार्थकी जिन्दगी बिताई। तुम्हारी जैसी साध्वी स्त्री उसे मिली, तो फिर रोना

कैसा? जो काम उसने अपने कन्धे पर लिया था, उसे अब तुम सम्हालो। उसी ध्येयके लिए तुम अपने-आपको सम्पूर्णतया अर्पण कर दो। और जमनालाल जिन्दा ही है, ऐसा मानो। तुम जानती हो कि मृत सत्यवानको सावित्रीने अपने तपसे पुनर्जीवित कर लिया था। वह पुनर्जीवन शरीरका क्या हो सकता था? शरीर तो नाशवान ही है। सावित्रीने अपने तपसे सत्यवानके तपको सदाके लिए अमरत्व दे दिया। यही 'सावित्री-सत्यवान' की कथा का सच्चा अर्थ है। तुम भी अपने तपसे अपने पतिके यशको जागृत रखोगी, तो फिर जमनालाल जिंदा ही है, ऐसा हम मान सकते हैं।"

"बापूजी, मैं तो अपने-आपको अर्पण करनेको तैयार हूं। पर मेरी शक्ति ही क्या? मेरा तप ही क्या? मैं उनके कामको कैसे चलाऊंगी? कैसे उनके तपको जागृत रखूंगी? आप इन्हें मरने मत दीजिये। आप क्या इन्हें जिला नहीं सकते? तो क्या ये मर ही गए? क्या अब बोलेंगे नहीं?"

"मैं तुम्हें झूठा धीरज नहीं देने आया हूं। जमनालालका शरीर मर गया। पर असल जमनालाल तो जिन्दा ही है। और आगेके लिए उसे जिन्दा रखना हमारा काम है।"

जानकीदेवी तो श्रद्धामें ओतप्रोत हो रही थीं। बार बार "इन्हें जिलाइये" की धुन लगी हुई थी। बेचारी कैसे विश्वास करें कि गया हुआ किसी भी हालतमें कोई लौटा नहीं? उनका विलाप तो किसा गोतमीकी कहानीकी याद दिलाता था। किसा गोतमीका बच्चा मर गया था, तो मोहवश उसने उसका दाह नहीं किया। उसने सोचा, शायद मरा हुआ भी फिरसे जिन्दा हो सकता है। इसलिए बच्चेको लेकर भगवान बुद्धके पास पहुंची और कहने लगी, "भगवान, इसे जिला दीजिये।" बुद्धने कहा, "देवी, इसे मैं अवश्य जिला दूंगा। तुम कुछ राईके दाने मुझे ला दो। पर वह ऐसे कुटुंबसे लाना, जहां किसीकी मृत्यु न हुई हो।" गोतमी घर-घर भटकी। पहले कुछ राईके दाने मांगती, फिर पूछती, आपके यहां कभी कोई मृत्यु तो नहीं हुई? जवाब वही मिलता, जो मिलना चाहिए था। अन्तमें थक गई। तब बुद्ध भगवानके पास वापस लौटी और कहने लगी,

"भगवान, मैं अनेक घरोंमें गई, पर ऐसा एक भी घर न मिला, जो मृत्युसे प्रहारित न हो।" तब भगवान बुद्धने उसे उपदेश दिया और उसका मोह हटाया।

गांधीजीने भी जब उपदेश दिया तो जानकीदेवीकी आशा टूट गई। अब तो वह बाणसे पीड़ित हरिणीकी तरह तड़फड़ा उठीं।

"पर जिला नहीं सकते तो उन्हें भगवानका दर्शन तो कराइये। बापू, कुछ भजन गाइये। विनोबाजीसे गीता सुनवाइये। हम सब भजन गायेंगे। चलो, अब 'ॐ, ॐ' बोलें। कोई मत रोओ। सब 'राम-राम' पुकारो।"

"जानकी, जमनालालको तो भगवानके दर्शन हो चुके। अब तुम्हें दर्शन करना है, उसकी तैयारी करो। जो काम उन्होंने आधा किया है, उसे पूरा करो। उस कामके लिए तुम अपना तन-मन-धन सारा होम दो।"

"तो बापू, मुझे सती करा दीजिये। क्या इस जमानेमें कोई सती नहीं हो सकती? आप विश्वास रखिये, मुझे आग नहीं सतायेगी, कोई दर्द नहीं होगा। मैं सुखसे जल जाऊंगी। मुझे सती करा दीजिये।"

"जानकी, जलनेमें क्या बहादुरी है? हजारों स्त्रियां पतिके साथ जली हैं। उसमें एक तरहकी बहादुरी है सही, पर वह सच्ची बहादुरी नहीं है। असल सती होना कुछ न्यारी चीज है। वही सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है। सतीको शरीरका क्या जलाना है? वह तो तुच्छ है, मिट्टी है। तमाम दुर्गुणोंको जला देना ही सच्चा सतीत्व है:

जड़-चेतन गुण-दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुणपय पियहिं, परिहरि वारि विकार॥

"सो तुम हंसका अनुकरण करो।

"अपने सब दुर्गुणोंको जमनालालजीकी चितामें होम दो। बाकी जो बचे वह शुद्ध कांचन है। उसे कैसे जलाया जा सकता है? उसे तो कृष्णार्पण ही किया जा सकता है। मेरा मानना है कि स्त्री ही त्याग-मूर्ति बन सकती है, क्योंकि हिन्दू स्त्री विधवा होने पर सारे भोगोंको तिलांजलि दे देती

है और विकारोंका शमन कर लेती है। इस तपके कारण उसमें एक नया वल आ जाता है । तुम अव त्याग-मूर्ति वन गई । अपने अवगुणोंको तुम जमनालालके हवन-कुण्डमें उसके शरीरके साथ भस्म करो और जो शुद्ध सुवर्ण रह जाय उसे कृष्णार्पण कर दो। यही सती होना है। उठो, तुम सती हो जाओ।"

"वापूजी, जैसी आपकी आज्ञा। धनको तो मैंने मिट्टी माना है। मुझे चाहिए भी क्या? खानेभरको तो मेरे वच्चे भी मुझे देंगे । आप हैं, भगवान हैं, यह संसार है । मुझे कौन भूखों मरने देगा? इसलिए मेरी संपत्ति और मैं सव कृष्णार्पण!"

जानकीदेवी इतना कहकर स्वस्थ और शांत वन गईं। . . .

जमनालालजीने सुखकी मौत पाई। पन्द्रह मिनटके भीतर-भीतर किस्सा खत्म हुआ। मुझे अक्सर लिखते थे, "ईश्वरसे मांगो कि मुझे सुखकी मौत मिले।" ईश्वरने उन्हें वही दिया, जो वे चाहते थे।

जमनालालजीका यह अन्तिम चित्र हृदयको अवश्य ही द्रवित कर देनेवाला है । पर उनका असली चित्र तो उनका कर्म-समुच्चय है, जो भविष्यकी पूजाके लिए दीप-शिखाकी भांति स्थायी रूपसे मार्ग-प्रदर्शक हो सकता है।

घनश्यामदास बिड़ला

अमरता का पूजारी

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।

सुना है, देव अमर होते हैं और अमरावतीमें रहते हैं। उनको न वुढ़ापा आता है, न वीमारी सताती है। मौत तो उनके पास फटकती भी नहीं। इसीलिए वे अजर-अमर कहलाते हैं। हमारे पुराणोंमें देवोंकी और देवलोककी एकसे एक अद्भुत और अनुपम कथाएं भरी पड़ी हैं। मानव-मनकी कल्पनाने उन्हें वड़ा ही सरस, सुहावना और लुभावना स्वरूप दे रखा है।

राम और कृष्णको मैंने नहीं देखा, वुद्ध और महावीरको मैंने नहीं देखा, ईसा, मूसा और मुहम्मदको मैंने नहीं देखा। शिवाजी और प्रतापको मैंने नहीं देखा, रामकृष्ण और विवेकानन्दको मैंने नहीं देखा, लाल-वाल-पाल को मैंने नहीं देखा, गोखले और रानडेको भी मैंने नहीं देखा।

अगर ये अमर हैं, तो मैं मानता हूं कि मैंने जिस मानवको देखा था, जिसमें मैंने मानवताके निर्मल और उज्ज्वल दर्शन किए थे, जिसकी यादमें आंसूकी इन लड़ियोंमें पिरोकर श्रद्धाके ये फूल चढ़ाए जा रहे हैं, वह भी अमरताका एक अनन्य पुजारी था और मरकर अमर होनेकी साव रखता था। निश्चय ही आज वह मरकर अमर हुआ है, और हमारे हृदय-मन्दिर में देव वनकर निवास करने लगा है। हमारे हृदयमें उसका यह स्थान अक्षुण्ण रहे, हमारे हृदयका कोना-कोना उसके प्रोज्ज्वल प्रकाशसे निरन्तर प्रदीप्त रहे, आजके दिन उसकी यादमें यही तो हम सव चाह सकते हैं।

हमारे बीच एक जोत जलती थी और हम उसे देखते थे। उसके प्रकाशमें अपने अंधेरेका नाश करके आश्वस्त होते थे। अब वह जोत हमसे अलग नहीं रही—हममें आ मिली है और हम—उसके चाहनेवाले, उसके देखनेवाले—स्वयं प्रकाशित हो उठे हैं। उसने हमें मजबूर किया है कि हम अपनी लौ में उसकी लौ को मिलाकर उसे शत-सहस्र गुनी प्रभामयी बना दें।

मैं नतमस्तक हो उसको सौ-सौ बार प्रणाम करता हूं और उसका जयजयकार करता हूं।

कोई पूछेगा—"आखिर तुम्हारा वह मानव कौन था?"

मैं कहूंगा—"दुनिया उसको जमनालाल कहती थी, गांधीका वह पांचवां बेटा था और भारत मांका सच्चा सपूत।"

काशिनाथ त्रिवेदी

सच्चा सहगमन

ग्यारह तारीखको जमनालालजीका कनिष्ठ पुत्र रामकृष्ण लगभग तीन वजे अपने 'घनचक्कर' मित्रोंके साथ गपशप कर रहा था। इतनेमें एक नौकरसे उसे खबर मिली कि 'काकाजी' एकाएक सख्त बीमार हो गए। मुझे यह खबर करीब सवा तीन वजे मिली। हम लोग तुरन्त चल पड़े। लेकिन उनकी कोठीके फाटक पर ही मालूम हुआ कि वह नहीं रहे। करीब पौन घण्टेमें सारा खेल खत्म हो गया।

जिस कमरेमें उनका शव पड़ा था वहां पहुंचने पर हमने जो अद्‌भुत दृश्य देखा, उसका वर्णन करना असम्भव है। वह दृश्य जितना करुण था उतना ही उदात्त था; जितना गम्भीर था उतना ही प्रेरणाप्रद था। जमनालालजीके शवके पास गांधीजी और जानकीदेवी बैठे थे और चर्चा कर रहे थे। शोकके उद्रेकसे दोनोंका हृदय विदीर्ण हो रहा था; लेकिन दोनोंको यह चिन्ता थी कि उनका क्या कर्तव्य है। जानकीदेवी अपने श्वसुर-तुल्य और गुरु-स्वरूप बापूजीसे पूछ रही थीं, "अब मेरा क्या कर्तव्य है? सती-धर्मका आचरण करनेके लिए मुझे क्या करना चाहिए?" उस गम्भीर अवसर पर वापू जमनालालजीके शवके समीप बैठकर सती-धर्मकी व्याख्या अपनी अनुपम सीधी-सादी और घरेलू भाषामें कर रहे थे। उन्होंने कहा, "जिस कार्यके लिए जमनालालजी जीये, जिसका अनुशीलन और चिन्तन करते हुए वह यहां से चले गए, उस कामको अपना सारा जीवन और सम्पत्ति समर्पण करना ही सच्चा सहगमन है, यही यथार्थ सती-धर्म है, यही सहधर्माचरण है।"

उस शोकाकुल स्थितिमें भी जानकीदेवीने अपने पतिदेवके नश्वर शरीरको साक्षी रखकर नम्रतापूर्वक, सकुचाते हुए, यह पवित्र और गम्भीर संकल्प किया। वापू और विनोवासे उन्होंने विनय की, "भगवानसे प्रार्थना कीजिए कि वे मुझमें उनकी शक्ति, वुद्धि और गुण भर दें, जिससे उनका कार्य आगे चला सकूं।"

यह सारा संवाद मेरे समाजवादी मित्र डा० राममनोहर लोहिया सुन रहे थे। वह कहने लगे, "भई, गांधीजी गजबके आदमी हैं।"

गांधीजीने कहा है, "जमनालालजी बड़े तगड़े आदमी थे।" लेकिन जब-जब यह दृश्य याद आता है तो मैं सोचने लगता हूं, "जानकीदेवी दबंग स्त्री हैं!" अपने अनुरूप उनका साहस, निष्ठा और त्याग देखकर जमनालालजीकी आत्मा कृतकृत्य हुई होगी।

यह दृश्य पुराणकालकी याद दिलानेवाला था। उसके बाद विनोबाकी मधुर-गम्भीर ध्वनिमें गीताके बारहवें अध्यायके पाठने उस अवसरको एक पुण्यपर्वका रूप दे दिया। पुण्यात्माका प्रयाण-काल भी एक शुभ मुहूर्त ही होता है। इसीलिए वह पुण्यतिथिके रूपमें मनाया जाता है।

गांधीजीने कहा है—जमनालालजी एक दिग्गज पुरुष थे। कहीं भी भीड़में खड़े होते थे तो दूर ही से उनकी गर्दन और सिर दिखाई देता था। उनका डील-डौल लम्बा-चौड़ा और भारी-भरकम था। एक कहावत है कि चंगे शरीरमें चंगा मन रहता है। जमनालालजीके ऊंचे-पूरे और विशाल शरीरमें उतनी ही विशाल आत्मा और उन्नत हृदय था। उनकी विशालतामें स्वाभाविकता थी। उनका शरीर कसरत या व्यायामसे कमाया हुआ नहीं था। उसी तरह उनकी बुद्धिमें भी आधुनिक शिक्षाकी चमक-दमक नहीं थी। फिर भी उसमें स्वाभाविक संस्कारिता, कुशाग्रता तथा मूलगामिताकी कमी नहीं थी। उनकी बुद्धिकी उदारता और शक्ति उनके साथ अनेक संस्थाओंमें काम करनेवाले उनके सहकारी भलीभांति जानते हैं, उनके हृदयकी विशालताका अनुभव तो सभीको है। उनके शरीरकी ऊंचाई मानो उनके विचारोंकी उच्चताकी द्योतक थी।

यों तो संसारमें पैदा होनेवाला हरएक व्यक्ति अपूर्व और अद्वितीय ही होता है। एकके जैसा दूसरा नहीं होता। इसलिए हरएकको हम पहचान सकते हैं। इसी प्रकार हरएककी शक्ल-सूरत एकसी नहीं होती। परन्तु जमनालालजी एक विशेष अर्थमें अपने ढंगके एक ही आदमी थे। वह केवल दानवीर ही नहीं, तपोवीर और सेवावीर भी थे।

दादा धर्माधिकारी

मानव-जन्म की सार्थकता

आज हम स्वर्गीय जमनालालजीकी पुण्यतिथि मना रहे हैं। ऐसी कितनी ही पुण्यतिथियां आती हैं और जाती हैं। लेकिन सोचनेकी बात यह है कि हम इनसे क्या सीख सकते हैं।

हमें चरित्र-गठनकी ओर ही अधिक ध्यान देना चाहिए। क्योंकि कोई भी सामान्य व्यक्ति निरंतर प्रयत्नसे यह चीज हासिल कर सकता है और हम जमनालालजीके चरित्रसे यही बात सीख सकते हैं। हम प्रयत्न करें तो उनके जैसे बन सकते हैं। हमें तो अपना चारित्र्य बनानेकी ओर ही ध्यान देना चाहिए। हमें विविध क्षेत्रोंमें बहुतसे लोग ऐसे दीखते हैं जो काफी काम कर रहे हैं, लेकिन स्वतःके अंतःकरणकी शुद्धिके लिए प्रयत्न करनेवाले तो बहुत ही थोड़े हैं।

जमनालालजीने जीवन भर अपने अंतःकरणकी शुद्धिके लिए काफी प्रयत्न किया है। ऐसा हमें उनके जीवनसे दीखता है। जमनालालजी तो हर समय अच्छे-अच्छे आदमियोंकी खोजमें रहा करते थे। जहां कहीं अच्छा आदमी दीखा कि वह उसे अपने पास लानेकी कोशिश किया करते थे। उनकी हमेशा अच्छे आदमियोंकी संगतिमें रहनेकी कोशिश रहा करती थी। अनायास साधु-संतोंके, अच्छे लोगोंके सहवासका मौका मिले तो उसका लाभ तो कोई भी उठायेगा। लेकिन उसके लिए विशेष प्रयत्न करनेवालोंमें जमनालालजी थे।

जमनालालजी तो सत्यके बड़े उपासक थे। व्यापारमें ईमानदारी नहीं चलती है ऐसा बहुतोंका मानना है। आप जानते ही हैं कि जमनालालजी एक बड़े व्यापारी थे और उन पर अदालतोंमें मुकदमे भी चल रहे थे, जो

वहुत पुराने यानी ५०–६० वर्षके थे और उन पर कुछ वयान देना वड़ा मुश्किल काम रहता था। मुझे उस समयके सब कानूनी कागज देखनेको मिले थे। वकील लोगोंको तो उन पर केस वनाना भी काफी मुश्किल हो जाता था। कई वार तो ऐसा होता था कि मुकदमोंके कागजोंसे कुछ अलग वात निकलती थी और जमनालालजी कुछ अलग वात कहते थे। जो सत्य वात रहती थी उसी पर वे दृढ़ रहते थे, फिर कागजोंमें चाहे जो क्यों न हो। उनकी सत्यनिष्ठा वहुत ही तीव्र थी।

कई वातोंमें हमें उनका अनुकरण करना चाहिए। आज केवल उनका स्मरण करनेसे काम नहीं चलनेवाला है। हमें सोचना है कि हम उनके जैसे वन सकते हैं या नहीं? जमनालालजीको तो इन वातोंके लिए काफी कष्ट सहने पड़े और उन्होंने वे सव आनन्दसे सहे। वे तो किसी भी बातकी परवाह न करते हुए अपने रास्ते पर आखिर तक चलते रहे। हमें भी अन्त:करण-शुद्धिका प्रयत्न करते रहना चाहिए। इन सव कामोंमें धन-सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, घरवालोंकी नाराजी, मित्रोंकी नाराजी – इन सव वातोंकी परवाह न करते हुए अंत:करण-शुद्धिका प्रयत्न करना चाहिए। भगवानने हमें मानव-जन्म दिया है तो उस मानव-जन्मकी हमें सार्थकता करनी चाहिए। मनुष्यकी मानवताको वढ़ाना इसीमें जीवनकी सार्थकता है। इसीलिए पहले अपने अंत:करणकी शुद्धिके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

श्रीकृष्णदास जाजू

ईश्वरीय प्रेरणा

उत्तरायण, बुधवार, ११ फरवरी १९४२, एकादशीका दिन। कुरुक्षेत्रके युद्धके बाद भीष्म-पितामह अपने नाशवान शरीरको छोड़नेके लिए जिस दिन की राह देख रहे थे, वही यह पवित्र दिन था। पितामहके स्वर्गारोहणके दिन की सारी अनुकूलताएं उस दिन भी थीं। बुधवार विशेषमें था। ऐसा था वह महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक और पौराणिक पावन पर्व।

करीब दस रोज पहले मैंने वर्धा छोड़ा था। वहांसे कलकत्ता, डालमिया नगर, बनारस होता हुआ अपनी मिल पर गोला गोकरणनाथ आया था। वर्धासे निकलनेके पहले दिन शामको काकाजी (पिताजी) से बजाजवाड़ीमें मिलने गया। मैं शहरके मकानमें रहता था। करीब ५।। महीने पहले उन्होंने गो-सेवाका व्रत लिया था। व्यापारके हर कामसे वे इस बीच पूरी तरहसे निवृत्त हो चुके थे। इतना ही नहीं व्यापार-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करना या कोई सलाह आदि देना भी उन्होंने बन्द कर दिया था।

काकाजीने कभी किसी बातके लिए जीवनमें मुझसे 'ना' नहीं कहा था। अपनी राय वे दे देते थे अथवा कार्य होनेके बादमें उसके अच्छे बुरेकी स्पष्ट चर्चा कर लेते थे। उनके प्रति मेरी भक्ति निर्मल और आदर अटूट रहा है। मैं उनसे मजाक कर लिया करता था, लेकिन जीवनमें उनके आदेशकी मैंने कभी अवहेलना नहीं की थी। उनका भी मुझ पर असीम स्नेह और विश्वास था।

कलकत्तेसे टेलीफोन आया। खयाल था कि वह रामेश्वरजीका ही होगा। आनन्दकिशोरजी नजदीक थे। उन्होंने ही उसे उठाया। टेलीफोन रामेश्वरजीका ही था। उन्होंने बहुत ही कांपती हुई आवाजमें कहा, "वर्धासे

वहुत ही खराव खवर है।" पास होनेकी वजहसे मुझे भी उनकी आवाज सुनाई पड़ रही थी। मेरा दिल सन्न हो गया, कंपकंपी आ गई। मनमें यही डर–विचार हुआ कि कहीं वापूको कुछ न हो गया हो। ऐसा हुआ तो अनर्थ हो जायगा। भगवान करे, इससे तो काकाजीको कुछ हो गया हो तो चलेगा, लेकिन वापूको इस समय कुछ नहीं होना चाहिए। इस तरह के भाव मेरे मनमें गुजरे कि तुरन्त रामेश्वरजीकी आवाज फोन पर सुनाई दी कि जमनालालजी नहीं रहे। मेरी आंखोंमें अंधेरा छा गया। आसमान ही मुझ पर टूट पड़ा। मनमें इस विचारने वल पकड़ा कि जो कुछ हुआ, इसमें दुःख मनानेका कोई कारण नहीं। काकाजीका जीवन उन्नत रहा और सफल रहा। उनके चले जानेमें उनका भला हो सकता है। हमें दुःख हमारे मोह और स्वार्थसे होता है, आदि विचारों की शृंखला वन गई।

लखनऊ स्टेशन पर मालूम हुआ कि माता आनन्दमयी भी उसी गाड़ी से जा रही हैं। काकाजी उनके पास रह गए थे और उनके अशान्त मनको उनके पास रहनेसे शान्ति मिली थी। मैं उनके डिव्वेमें गया। उन्हें प्रणाम कर काकाजीके चले जानेके समाचार दिए। उनके साथियोंमें भी दुःखका वातावरण छा गया। माताजीको विशेष आश्चर्य या दुःख नहीं हुआ। उन्हें शायद मालूम था कि वे जानेवाले थे।

घर पहुंचा और सावित्रीसे मालूम हुआ कि सव कुछ हो चुका है। न तो उसे विशेष वोलनेकी हिम्मत थी, न मुझे ही कुछ पूछते वन पाता था। स्नान आदि करके सीधा गोपुरी गया। वहां माताजी तपस्विनीकी तरह वैठी थीं। उनको प्रणाम किया और लिपट गया। मनमें डर था कि मांसे कैसे मिलूंगा। वहांका वातावरण देखकर मुझे वहुत अच्छा लगा और मेरा भी ढाढ़स वंधा। होम, हवन, प्रार्थना, गीतापाठ आदि रोजाना वारहवें दिन तक वरावर चलते रहे। कुछ स्वामी अचानक उन्हीं दिनोंके लिए आ गए थे। उन्होंने होम, हवन आदिका कार्यक्रम वहुत अच्छी तरह चलाया। उन्हें न तो पहले हमने देखा था, न वादमें। पिताजीके फूल कैलाश पर चढ़ाने और मानसरोवरमें प्रवाहित करनेके लिए लेकर वे अचानक चले गए। उसके वाद उनसे कभी मिलाप नहीं हुआ।

काकाजीने कुछ महीनों पूर्व गोपुरीमें घूमते समय एक स्थान पर खड़े होकर अचानक मुझसे कहा था कि मेरी समाधि यहां होगी और इशारा करते हुए कहा था कि यह बीचकी और कुछ उठी हुई जगह है। इधर महिलाश्रम काकावाड़ी है, यह विनोबाजीकी नालवाड़ी है, उधर बापूका सेवागांव है, उधर मगनवाड़ी है। बापू जब सेवाग्रामसे वर्धा आते-जाते रहेंगे तो यहांसे मुझे उनके दर्शन होते रहेंगे। चारों तरफ मेरी नजर रहेगी।

मुझे दुःख था कि काकाजीकी इस इच्छाको मैंने किसीसे व्यक्त नहीं किया था। मुझे क्या पता था कि मैं ऐसा अभागा होऊंगा कि उस आखिरी दिन उनके दर्शन मुझे नसीब न होंगे। वर्धा आने पर पता चला कि दाग देनेका जब सवाल खड़ा हुआ तो कई जगह सोची गई। मदालसाने फिर उसी स्थानकी सूचना की जो बापू आदि सभीको सुहाई। मदालसाको काकाजीकी ही आत्माने प्रेरणा दी होगी; अन्यथा उसको जानकारी नहीं थी। यह जानकर कि उनका दाग वहीं हुआ, मेरे सिरसे एक भारी बोझ हट गया। पवित्र आत्माओंकी इच्छापूर्ति ईश्वरीय प्रेरणासे ही होती है। हम उसको पूरी करनेवाले कौन? यह विचार मेरे मनमें घर कर गया।

पूज्य काकाजीके वियोगने मुझे जितना सावधान किया है उतना अपने जीवनमें मैं कभी नहीं था। मेरे जीवन पर सबसे ज्यादा असर भी उन्हींका था। उनके छत्रके नीचे हमारी कमजोरियां दबी-छिपी और फूलती-फलती भी रहीं। वे ही थे जो हमारी कमजोरियोंको सहन कर सकते थे।

गुरुजनोंके प्रेम और आशीर्वादसे यद्यपि हम लोग धीरज और शान्तिसे इस महान आपत्तिको निबाह ले गए, फिर भी अपने आपको हम लोग अभी भी नहीं सम्भाल सके हैं। मांकी हिम्मतको देखकर तो हम सभी दंग रह गए। मुझे तो पूरा विश्वास है कि उनके सारे काम उसी तरह चलते रहेंगे, जिस तरह कि वे करते आये थे।

कमलनयन बजाज

बापू काकाजी की इजाजत

छुटपनसे ही जबसे मैंने होश संभाला, घरका वातावरण आश्रमका-सा था। वचपनके चार-पांच साल सावरमती-आश्रममें गुजरे। उसके वाद सव लोग वर्धा आ गए। बापूजीका प्रभाव काकाजी पर तो पूरा-पूरा था ही, धीरे-धीरे सारे परिवार पर भी फैलता गया। काकाजीका आग्रह था कि बच्चोंको अच्छेसे अच्छे संस्कार व राष्ट्रीय वृत्तिकी शिक्षा मिलनी चाहिए। ऐसी शिक्षा उस समयके कालेजों या स्कूलोंमें मिलनी संभव नहीं थी। इस-लिए भाई कमलनयनको उन्होंने गुजरात विद्यापीठमें काकासाहब कालेलकर की संरक्षकतामें पढ़ने भेजा, बहन मदालसाको विनोवाजीको सौंपा और ओमको पहले सावरमती, फिर कन्याश्रम वर्धामें रखा।

जव मेरी उम्र पढ़ने-लिखने योग्य हुई तव वही सवाल उठा कि मुझे कहां भेजा जाय। काकाजीकी सवसे ज्यादा इच्छा यह थी कि मैं विनोवाजी के पास पढ़ूं, लेकिन उसकी सुविधा नहीं हुई। काकासाहव आदिसे वे वरावर पूछते रहे कि मेरी शिक्षा कहां हो। सवकी सलाहसे वह जिम्मेदारी उन्होंने नाना आठवलेको सौंपी। काकाजी भी मानते थे कि वच्चोंकी शिक्षा किसी संस्कारी गुरुजनके अधीन हो तो भविष्यमें वच्चों और स्वयं परिवारके लिए हितकर होगा। सिर्फ स्कूली पढ़ाईमें क्या धरा है!

व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलनके सिलसिलेमें जव काकाजीको गिरफ्तार किया गया उस समय मैं मैट्रिककी परीक्षा देनेवाला था। सारे वातावरणमें गर्मी थी और हम भी सत्याग्रहके काममें वड़े उत्साहसे, जो कुछ कर सकते थे, करते थे। काकाजीको जव गिरफ्तार करके जेल ले जाया जा रहा था तो मैंने उनसे कहा कि आपसे अव न जाने कव मिलना होगा, लेकिन

मेरे मनमें सत्याग्रह-आन्दोलनमें भाग लेकर जेल जानेकी वात है। आपकी इजाजत चाहता हूं। उनके लिए यह अनपेक्षित वात थी, क्योंकि यह प्रस्ताव उनके पास पहली ही वार इस तरहसे एकाएक रखा गया था। उस समय उनको गिरफ्तार करके ले जाया जा रहा था, शांतिसे वैठकर सोचनेका तो समय ही कहां था! मेरी उम्र १६ वर्षकी रही होगी, इसलिए उनको चिंता तो हुई, लेकिन फिर भी मुझे लगा कि जैसे मेरी इस तैयारीसे उनके दिलमें वड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक सच्चे सिपाहीकी भांति कहा—"तुम्हारी उम्र छोटी है, फिर भी इस वारेमें तुम्हें वापूजीसे पूछना चाहिए। दो-तीन महीनेमें तुम मैट्रिककी परीक्षा दे लो। तव वापूजी तुमको इजाजत दें तो तुम जरूर जेल जा सकते हो। मेरी तरफसे तुम्हें इजाजत है।" अधिक वात करनेका समय नहीं था, लेकिन इतनेसे ही उन्होंने अपनी स्पष्ट राय दे दी।

घरके करीव-करीव और सव लोग तो जेल हो आये थे, मैं नहीं गया था। इसलिए मेरे मनमें एक तरहका डर लगा रहता था कि कहीं ऐसा न हो कि मुझे जेल जानेका मौका ही न मिले और स्वराज्य मिल जाय। इसलिए मैट्रिककी परीक्षा खत्म होते ही मैं वापूजीके पास पहुंचा और अपनी वात कही। उन्होंने कहा—"अठारह वर्षके नीचे मैं किसीको भी इजाजत नहीं देता हूं। तुमको भी कैसे दूं?" मैंने दो-तीन दिन तक वहुत आग्रह किया तो उन्होंने सेवाग्राममें रोककर सव तरहसे मेरी कड़ी परीक्षा ली और तव सत्याग्रह करनेकी अपवाद स्वरूप इजाजत दी। मेरी खुशीका ठिकाना न रहा।

...जब वापूजीने मुझे इजाजत दे दी तो फिर उसकी पूरी जिम्मेदारी भी उन्होंने अपने ऊपर ही ले ली।

वर्धाके डिप्टी कमिश्नरको खुद ही चिट्ठी लिखी कि मैं, अमुक जगह पर युद्ध-विरोधी नारा लगाकर सरकारका कानून भंग करूंगा। सत्याग्रह की पहली रात उन्होंने मुझे सेवाग्राममें ही वुलवा लिया था और कह दिया

था कि पूज्य माताजीके साथ मैं सेवाग्राममें ही रहूं। रातको देर हो गई थी, वह काफी थक भी गए थे, फिर भी उन्होंने मुझे बुलाया और अपने हाथका लिखा एक वक्तव्य मुझे पढ़नेके लिए दिया। यह वक्तव्य उन्होंने खुद ही मेरे लिए तैयार किया था। मैं जब गिरफ्तार होकर जेल जाऊं और अदालतमें मेरी पेशी हो, तब वहां वक्तव्य देनेके लिए यह उन्होंने बनाया था, जो इस प्रकार है:

"महाशय,

मेरा मामला कुछ निराला है। मैं एक भूतपूर्व विद्यार्थी हूं। आज जब कि विद्यार्थी-जगत्में अराजकता फैल रही है, मैं यह बात कह देना जरूरी समझता हूं। मेरी उम्र अठारह सालसे कम है, लेकिन मुझे विद्यार्थी-जगत् और बाहरी संसारका इतना अनुभव जरूर है कि मैं हर बातमें अनुशासनकी आवश्यकता महसूस कर सकूं। इसलिए मैंने जो कदम उठाया है, उसमें मैंने अपने माता-पिता और दूसरे बुजुर्गोंकी आशिष प्राप्त की है। अपने माता-पिताकी देखभालमें मैंने जीवनकी हरएक छोटी-मोटी तफसीलमें अहिंसाकी व्यावहारिक शिक्षा पाई है। मैंने हाल ही में मैट्रिककी परीक्षा दी है। मैंने स्कूल जाना देरसे शुरू किया। मेरे माता-पिताने १९२० के असहयोग-आंदोलनके दिनोंमें ही, जबकि मैं पैदा भी नहीं हुआ था, हम लोगोंकी बाकायदा स्कूलकी पढ़ाई बंद कर दी। मेरे माता-पिताने हम सभी को स्वतंत्रताके वायुमण्डलमें पाला, इसीलिए जब मैंने स्कूल जाकर मामूली शिक्षा लेनी चाही तो मुझे इजाजत दे दी गई। लेकिन जब मौजूदा आन्दोलन शुरू हुआ तो मेरा दिल चंचल हो उठा। मैं सोचने लगा कि स्वतंत्रता-प्राप्तिके प्रयत्नमें मुझे जो प्रत्यक्ष अनुभव होगा, वह मामूली स्कूलकी पढ़ाईसे कहीं कीमती होगा, क्योंकि हरेक स्कूलका लड़का जानता है कि यह शिक्षा जनताकी भलाईके लिए नहीं शुरू की गई है, वरन् हमारे राज्यकर्ताओंके फायदे लिए की गई है। यह जानते भी अगर हम स्कूलकी शिक्षा लेते हैं तो उसका यही कारण है कि आज कई वर्षोंसे वही अकेली प्रचलित रही है और

उसकी वदौलत हमारी यह दुर्दशा हुई है। मैं इस आन्दोलनके राजनैतिक महत्त्वकी अपेक्षा नैतिक महत्त्वसे अधिक आकर्षित हुआ हूं। मैं जानता हूं कि अगर हिन्दुस्तान संसारके सामने पूर्ण अहिंसाका उदाहरण पेश कर सके तो वह मानवीय प्रगतिमें अपूर्व सहायता पहुंचायेगा। यह दिव्य आदर्श मेरे तरुण चित्तको मुग्ध करता है और ऐसे उच्च और उज्ज्वल आदर्शकी प्राप्तिके लिए मैं किसी भी क्लेश या कष्टको अत्यधिक नहीं मानूंगा।"

मेरे पढ़ चुकने पर उन्होंने उस वक्तव्यका अर्थ मुझे समझाया और कहा, "कोई बात न समझे हो तो मुझसे पूछ लो।" वादमें यह भी कहा कि यदि उसमें से किसी वातसे मैं असहमत होऊं तो मैं उनसे कह दूं, वह उतना हिस्सा वदल देंगे। मैं तो यह सुनकर गद्गद हो गया। एक सत्रह वरसके बच्चेसे वापूजी वरावरीका नाता रखकर पूछ रहे थे। मैं उनसे भला क्या असहमत हो सकता था? लेकिन उनके इस तरहके व्यवहारसे दिल उत्साहसे भर गया और अधिक जिम्मेदारी महसूस होने लगी। जितने भी दिन जेलमें विताने थे उनको खुशीसे वितानेका संबल मिल गया।

सत्याग्रह करने पर एक विचित्र समस्या उठ खड़ी हुई। छोटी उम्रकी वजहसे पहले तो सरकार पकड़ती ही नहीं थी। यदि पकड़ती भी तो जुर्माना करके छोड़ देती। मुझे बड़ा वुरा लगता, क्योंकि मुझे तो किसी तरहसे जेल जाना था। आखिर जब मैं बराबर सत्याग्रह करता रहा तो सरकारको सजा देनी पड़ी। यह मेरे लिए बड़े सद्भाग्यकी और खुशीकी बात थी। गिरफ्तारीके वाद सरकारने मुझे नागपुर जेलमें भेज दिया, जहां पिताजी और विनोवाजी आदि भी थे।

काकाजी अनुशासन कितना मानते थे, इसका मुझे जेलके अन्दर वरावर दर्शन होता रहा। वहां जाते ही उन्होंने मुझे समझाया कि तुमने सत्याग्रह किया है तो तुम्हारा अलग व्यक्तित्व शुरू हो रहा है। तुम्हारे लिए अव सिर्फ मेरे ही अनुशासनमें रहना और मेरी ही वातके अनुसार चलना जरूरी नहीं है। जहां तक घरेलू, पारिवारिक व व्यापारिक वातोंका संवंध है, तुम्हें

मेरी बात माननी चाहिए, लेकिन राजनैतिक बातोंमें तुम्हें बापूजी और विनोबाजीकी सलाहसे चलना चाहिए। विनोबाजीको तो पहला सत्याग्रही चुना गया है। इसलिए यदि उनकी और मेरी रायमें अंतर हो जाय तो तुम्हें मेरी नहीं, बल्कि उनकी बातका अनुसरण करना चाहिए।

जेलमें प्रथम श्रेणीके लोग बहुत कम थे। काकाजीको द्वितीय श्रेणीके लोगोंके साथ रखा था। मुझे भी उन्हींके साथ एक अलग कमरेमें रहनेकी इजाजत मिल गई थी।

सार्वजनिक कामोंमें और लोगोंकी चिन्ताएं तथा कठिनाइयां सुलझानेमें काकाजी रात-दिन व्यस्त रहते थे। उन दिनों मैं बच्चा ही था, इसलिए उनके कामका महत्त्व आंक नहीं पाता था। अब जबकि उनके पत्र-व्यवहार तथा डायरियों आदिके सम्पादनका काम करता हूं, तो उनके कार्यकी विशालता और व्यापकताका कुछ अंदाज होता है। उनका दिल हरएक व्यक्तिके लिए, जो सम्पर्कमें आता था, प्रेमसे लबालब भरा रहता। सार्वजनिक काममें लगे व्यक्तियोंकी व्यक्तिगत चिन्ताएं दूर करनेकी उन्हें हमेशा फिक्र रहती। हम लोगोंका कई बार पिताजीसे मिलना व शांतिसे बात तक करना कठिन हो जाता। कई बार ऐसे मौके आते कि हमको पहलेसे समय निश्चित करके बातचीतका मौका मिलता। कई बार दो-दो, तीन-तीन दिन तक समय न मिल पाता।

काकाजीके देहान्तके समय मैं तो केवल १९ वर्षका था और उनके रहते हर प्रकारकी जिम्मेदारी या भारसे मुक्त था। किसी भी पिताका इस तरहसे जाना बच्चोंके लिए दुःखदायी होता है, लेकिन उनके जैसे पिताका इस तरहसे एकाएक चले जाना हम सभीके लिए बहुत बड़ा आघात था।

काकाजी हमेशा मृत्युका मजाक उड़ाया करते थे और बड़े ही हल्के ढंगसे उसकी चर्चा किया करते थे, जैसे कोई बहुत मामूली बात हो। कई बार लोगोंको बुरा भी लगता, लेकिन वे इसी तरहसे आसपासके लोगोंका

मृत्युके प्रति डर दूर करनेकी कोशिश करते थे। "एक दिन मरना अवश्य है और मरना तो हैजाका अच्छा।" यह वे बराबर कहते रहते थे। हैजाको वे इसलिए पसंद करते, क्योंकि उसमें तुरन्त मृत्यु हो जाती है और आसपासके लोगोंको तकलीफ नहीं होती। वे तो कहते थे कि यदि मुझे कोई पहलेसे बता दे तो मैं पहलेसे ही श्मशानमें जा बैठूं, जिससे मेरे शरीरका भारी वजन उठाकर ले जानेकी भी जरूरत न पड़े।

वे जो बात कहते, खुद करते। इसलिए उनके जीवनका सारे कुटुंब पर बड़ा असर था और अब भी है। हर बातमें और हर कामको करते समय उनकी याद आ जाती है और उनके जीवनसे बराबर प्रेरणा मिलती रहती है।

हम लोग उनके नाम और कामको यदि आगे नहीं बढ़ा सकें, तब भी उसमें किसी तरहका धब्बा न लगने दें, यही हमारे लिए बड़े संतोषकी बात होगी।

रामकृष्ण बजाज

स्वसुख-निरभिलाष:

बीज मिट्टीमें छिप जाता है तभी वह वृक्षके रूपमें धीरे-धीरे विकसित होता है। वृक्षके पीछे छिपकर धीरे-धीरे कलिकाकी मधुरता खुलती जाती है। कलिकाके पीछे छिपा रहता है तभी फूल आगे आकर डोलने लगता है। फूलके पीछे रहकर ही धीरे-धीरे रसभरा फल वृक्ष पर उच्च स्थल प्राप्त करके अपने आत्म-वैभवकी परिसीमासे सबको मुग्ध कर देता है। ओहो, छिपनेमें कैसा मजा है! इस मजेको वही जानता है जो छिपनेका गूढ़ रहस्य सचमुच समझता है। छिपते-छिपते अंतरतम सत्यका रहस्य जीवनमें केन्द्रित होने लगता है, वही वैराग्य है। अरे, वैराग्य क्या उदासी है? नहीं, बिलकुल नहीं। यह अंतर्मुख अवस्था ही वैराग्य है। इसी अवस्थामें 'य इमं परमं गुह्यं'–भगवानका परम गुह्य–प्राप्त होता है। क्या छिपनेमें भय है? नहीं-नहीं, कदापि नहीं! वह तो बिलकुल निर्भय अवस्था है। उस अवस्थामें नवनवोन्मेषशाली सत्यकी सुवर्ण कुंजी हाथ लगती है। सत्यका साराका सारा सार, अनंत आनंदमय खजाना हाथमें आता है। फिर क्या देखना है! इसलिए ए जीव! सारी प्रकटता (बाह्य दृष्टि) छोड़ दे और मधुरताकी मधुरता अंदर ही अंदर प्राप्त करता जा।

पूज्य विनोबाजीके अंतर्मुख साधनामय जीवनका अमृत संदेश कैलाशवासी पूज्य जमनालालजी जैसे महाभक्तोंके सिवा कौन प्राप्त कर सकता था! आज पूज्य विनोबाजीके पीछे हजारों लोग दौड़ते हुए दिखाई देते हैं। क्यों? उनकी विख्यातिके कारण ही न? कुछ लोग ऐसा सवाल पूछते हैं। सवालकी भूमिका भले ही पूर्ण सत्य न हो, लेकिन इसमें शक नहीं कि यहां शककी गुंजाइश है। लेकिन जब पूज्य विनोबाजी बिलकुल अप्रकट थे तब स्व० जमनालालजीने उन्हें पहचाना। वह तो संशयातीत बात थी। पहचाना ही नहीं, अपितु अपना संपूर्ण हृदय समर्पित किया।

अपने लाड़ले वच्चोंको, एकके पीछे एक, उन्हींकी शिक्षा-दीक्षामें वह सौंपते गए। कितनी भी विरोधी टीका होती रही, हितैषियोंका कितना भी हितोपदेश मिलता रहा, तो भी उन्होंने उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। ध्यान नहीं दिया, इसलिए नहीं कि वह व्यवहार कुछ कम समझते थे, वल्कि इसलिए कि उनकी पूज्य विनोवाजीकी अध्यात्म-शिक्षामें पूरी श्रद्धा थी।

वी० ए० पास करनेके वाद नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) रामकृष्ण परमहंसके पास गये तो रामकृष्ण परमहंसने पूछा, "और भी परीक्षा पास करेगा न?" तव नरेन्द्रनाथने जवाव दिया, "गुरुदेव, अव तक जो कुछ पढ़ा हूं वह सव कैसे भूल जाऊं, इसकी कोई तरकीव हो तो वताइये।" इसी तरह जगत्की सारी उपाधियां पूज्य विनोवाजीके अध्यात्म-ज्ञानके सामने शून्यवत् हैं, ऐसा जमनालालजीने माना था और वह यह स्पष्ट रूपमें मानते थे कि आजकलकी शिक्षामें आध्यात्मिक ज्ञान तो छोड़ ही दीजिये, वल्कि जो विषय पढ़ाये जाते हैं वे भी विलकुल कच्चे और केवल परीक्षा पास करनेकी दृष्टिसे ही पढ़ाये जाते हैं। विद्यार्थियोंके ऊपर तो शिक्षाका एक भारी वोझ ही लादा जाता है। लेकिन विद्याका ध्येय तो वोझसे पूर्ण मुक्ति—'सा विद्या या विमुक्तये' होना चाहिए।

उन दिनोंमें तो कोई-कोई ऐसा भी कहनेवाले थे कि देखो, विनोवाजीके आश्रममें विद्यार्थी या तो कवीर जैसे संत होंगे या गंवार, वुद्धू, वैल और न जाने क्या-क्या होंगे! कवीर वनेगा तो एकाध वन सकता है, वाकी तो अवश्य वेवकूफ वनेंगे—ऐसा ही कुछ उस समय पूज्य विनोवाजीकी आश्रम-शिक्षाके वारेमें लोगोंका, खास करके वड़े गिने जानेवाले लोगोंका, ख्याल था। लेकिन जमनालालजी व्यवहार-ज्ञानमें किसीसे तनिक भी कम न होते हुए भी विचलित नहीं हुए और अपने वच्चोंको वार-वार पूज्य विनोवाजीके पास सत्संगका लाभ उठानेके लिए प्रेरित करते रहे। जमनालालजीने सिर्फ अपने वच्चोंको पूज्य विनोवाजीकी अध्यात्म-शिक्षामें रहनेका प्रोत्साहन दिया, इतना ही नहीं, वल्कि उन्होंने खुद जेलमें और वाहर विलकुल एक जिज्ञासु विद्यार्थीकी हैसियतसे पूज्य विनोवाजीका सत्संग प्राप्त किया और उनके ग्रंथोंका परिशीलन किया।

जमनालालजीकी पुत्र-पुत्रियां भोली-भाली थीं और ऐसे ही भोलेपनसे उन्होंने आश्रम-शिक्षाको स्वीकार किया, ऐसी बात नहीं है। यहां एक प्रसंग याद आता है। शायद रामायणके वर्गमें या प्रार्थना-प्रवचनमें पूज्य विनोबाजीने इस आशयका वाक्य कहा – "रामचन्द्रजी बरसों तक अरण्यमें घूमते रहे, हवा, वर्षा, धूप सेवन करते रहे, इसी कारण उनका रंग श्यामल हुआ।" तुरंत कमलनयनने पूछा, "फिर लक्ष्मणजीका रंग गोरा क्यों रहा? वह भी रामचन्द्रजीके साथ थे।" यह प्रश्न पूछते ही पूज्य विनोबाजी और सारा श्रोतृवृन्द एकदम हंस पड़ा। प्रश्नका जवाब मुक्त हास्यमें मिल गया। गुरु-शिष्योंके ऐसे मनोहर वार्ता-प्रसंगोंकी कोई गिनती ही नहीं थी। उफना हुआ दूध थोड़ा-सा ही तो होता है। सारा का सारा दूध बर्तनमें ही रह जाता है।

उपरोक्त बातसे ऐसी कल्पना करना ठीक नहीं होगा कि पूज्य विनोबाजीके ये बजाज-शिष्य तर्क-प्रधान ही थे, उनमें श्रद्धा कम थी। सचमुच वे इतने नम्र थे कि शायद ही इतनी नम्रता कहीं प्रकट हुई हो।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

भगवद्वाक्य हमेशा ही इस कथनकी पुष्टि करता आया है। पूज्य विनोबाजीको मदालसाजीने 'बाबा' नाम दिया था। आज सारा भारत उसी नामसे अपनी भक्ति प्रकट करता है।

जहां जमनालालजी और उनका संपूर्ण परिवार पूज्य विनोबाजीको गुरुतुल्य मानता रहा वहां जानकीदेवी बजाज (पूज्य माताजी) ने हमेशा पूज्य विनोबाजीको छोटे भाईके रूपमें देखा और वैसे उनका साम्य-विनोदका बर्ताव भी हमेशा पूज्य विनोबाजीके साथ रहा।

बजाज-परिवारका अहोभाग्य था कि उसको जमनालालजी जैसा सर्वश्रेष्ठ महाभक्त पारसमणि प्राप्त हुआ। इस पारसमणिका लाभ उठाकर बजाज परिवारने अपने जीवनका सेवाके सोनेमें परिवर्तन किया। आज पूज्य माताजी, राधाकृष्णजी बजाज, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, ये बजाज-परिवारके सेवाकार्यके अध्वर्यु भारतके प्रथम पंक्तिके निष्काम सेवाकार्य करनेवालोंमें हमेशा आगे ही रहेंगे ऐसी योग्यता रखते हैं। कमला नेवटिया, कमलनयन

बंजाज, रामकृष्ण बजाज, मदालसा अग्रवाल, उमा, अनसूया बजाज और अन्य परिवार सेवाकार्योंमें किसीसे पीछे पड़नेवाले नहीं हैं। परिवारके छोटे बच्चोंको भी सेवाकी कुछ न कुछ शिक्षा मिली है।

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यते लोकहेतोः।
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधेव।।

जमनालालजीका यह आदर्श सामने रखकर सारा बजाज-परिवार अपनी अपनी शक्ति और रुचिके अनुसार हमेशा अपने उद्योगके साथ सेवाका चिंतन करता रहता है। जगत्में दो मुख्य परंपराएं हैं—एक पितृ-परंपरा, दूसरी गुरु-परंपरा। दोनों उज्ज्वल परंपराओंका लाभ बजाज-परिवारनें उठाया और सेवाशीलता प्राप्त की। पूज्य विनोबाजी-बापूजीके आत्मज्ञान और जमनालालजी और परिवारकी आत्मीयताका यह संगम-स्थान है।

जमनालालजीकी कार्य-पद्धति इस ढंगकी थी कि स्नेहमें से काम उपजता था और काममें से स्नेह। परिणामस्वरूप उनकी भव्य मूर्ति स्नेहका अवतार ही प्रतीत होती थी।

सकल गुणवरेण्यः पुण्यलावण्यराशिः।

शिवाजी भावे

ईश्वरीय संकेत

'उपजहिं अनत अनत छवि लहहिं'

एक नक्षत्र मरुभूमिके एक कोनेमें उदय हुआ और ठेठ मध्यप्रदेशमें जाकर चमका। जमनालालजी सीकर–राजस्थान–में जन्मे और वर्धामें फले-फूले। कनीरामजी जैसे साधारण वनियाके घर पैदा हुए। साढ़े चार सालकी अवस्थामें ही वच्छराजजीके यहां गोद गये। और फिर युवावस्थामें एक महान युगपुरुष 'वनिया'के जवरदस्ती गोद वैठे, "पांचवें पुत्र" वने! उनकी ये गोद जानेकी उत्तरोत्तर विलक्षण घटनाएं एक ईश्वरीय आयोजन जैसी लगती हैं। यों जमनालालजी गोद देनेकी प्रथाको पसंद नहीं करते थे। उनके सगे पिता श्री कनीरामजीकी मृत्युके वाद एक रोज जमनालालजी ने किसी प्रसंग पर वातचीत चलते हुए मुझसे भी ऐसे ही दुःखके वचन कहे थे। कहीं इसका प्रायश्चित्त ही करनेके लिए तो वे खुद होकर गांधीजीके गोद न गए हों?

अक्सर गोद देनेमें माता-पिताका हेतु कुछ धन-प्राप्ति हुआ करता है, और इस तरह लालचसे अपनी संतानको मां-वाप जो वेच देते हैं, यह उन्हें वहुत खलता था। फिर भी, वे अपने माता-पिताको वहुत आदरकी दृष्टिसे देखते थे, क्योंकि कनीरामजी ऐसे माता-पिताओंमें नहीं थे। उन्होंने व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती विरदीवाईने उन्हें किसी लोभ-लालचसे गोद नहीं दिया था। पैसा भी वदलेमें नहीं लिया। वल्कि जव जमनालालजी वच्छराज जमनालाल पेढ़ीके मालिक वन गए तव भी श्री कनीरामजीने कभी एक पैसेकी इच्छा जमनालालजीसे नहीं रखी।

यों कनीरामजी वड़े स्वाभिमानी व तेजस्वी थे। साहसी इतने कि विना जीन व काठी वाले ऊंट पर खड़े होकर उसे दौड़ाते थे और कभी कभी तो एक पांवसे खड़े हो जाया करते थे।

एक बार कनीरामजीकी एक राजपूतसे किसी बात पर कहासुनी हो गई। उस मामूली कहासुनी पर ही ठाकुरने तलवार निकाल ली। ठाकुर साहब ही तो ठहरे! देखनेवाले सब लोग घबरा रहे थे, परन्तु कनीरामजी निर्भीकतापूर्वक वहीं डटे हुए, शांति तथा धैर्यसे उन्हें समझाते रहे। अंतमें ठाकुर साहबने अपनी गलती मंजूर की, पश्चात्ताप किया, इतना ही नहीं, कनीरामजीसे जाकर माफी मांगी। बादमें तो दोनोंमें इतना प्रेम हो गया कि ठाकुर साहब बिना कनीरामजीसे पूछे कोई काम नहीं करते थे। यह घटना यों दीखनेमें चाहे छोटी हो, परंतु अहिंसक प्रतिकारका एक ऐसा नमूना है जिसका अपना एक महत्त्व है। जमनालालजीके जीवनमें हमें बार-बार इसी साहस और वीरताभरे संस्कारोंके दर्शन होते हैं। ये गुण सीधे उन्हें कनीरामजीसे मिले थे।

गोद देनेकी भी एक दिलचस्प कहानी है। सेठ बच्छराजजी, उनकी पत्नी सदीबाई और उनके गोदके पुत्र रामधनदास व उनकी पत्नी चारों वर्धासे अपने देश सीकर गये, जहां कि रामधनदासजीकी छोटी उम्रमें—निस्संतान एकाएक मृत्यु हो गई। बच्छराजजी और उनकी पत्नी तथा पतोहू शोक-विह्वल हो गये, किन्तु कर क्या सकते थे? कुछ दिन सीकर रहे और बादमें बच्छराजजीने तथा उनकी पत्नीने सोचा कि अब यहांसे कोई लड़का लेकर ही वर्धा चलना चाहिये। अपनी पतोहूके लिए लड़का गोद लेनेकी तलाशमें वे काशीकाबास गये, जो कि सीकर राज्यमें है। रामधनदासजी बच्छराजजीके गोदके पुत्र थे। बच्छराजजीकी पत्नी सदीबाईने काशीकाबासमें कनीरामजी की पत्नी बिरदीबाईसे बातचीतके सिलसिलेमें इस बात पर दुःख प्रकट किया कि उनका वंस डूब रहा है, कोई लड़का नहीं है। कनीरामजीके तीन लड़के थे। बिरदीबाईने स्त्रियोचित सहज सहानुभूतिसे कहा, 'ये बालक आपके ही तो हैं।' बिरदीबाईकी यह बात सुन सदीबाईने अपनी ओढ़नीके पल्ले गांठ बांध ली, मानों बिरदीबाईने वादा कर लिया है।

जमनालालजीकी दादी अर्थात् कनीरामजीकी माताका देहांत हुए अभी दो मास ही हुए थे। जब जमनालालजीने, जो कि साढ़े चार वर्षके बालक थे और वहीं खेल रहे थे, सदीबाईको देखा तो उन्हें अपनी ही दादी समझा और 'दादी आ गई, दादी आ गई!' कहकर उनकी गोदमें जा बैठे। सदीबाई

उन्हें चूमने पुचकारने लगीं। सेठ बच्छराजजीके, जो उस वक्त साथमें थे, बादाम, मेवा आदि देने पर उनकी गोदमें जा बैठे।

जब बच्छराजजी जाने लगे तो उनकी पत्नीने कनीरामजीकी पत्नीसे जमनकी मांग की कि उसे मेरे साथ भेज दो। बिरदीबाई हक्का-बक्का रह गई। सदीबाईने कहा—'यह तो मेरा लड़का हो चुका। आप ही ने तो उस दिन कहा था कि तीनों आपके हैं।' अब तो बिरदीबाई अपनी सहज भूल या असावधानीको समझ गई। इधर बच्छराजजीने भी जमनको ले जानेकी हठ पकड़ ली और धरना दे दिया। गांववालोंकी भी बच्छराजजीके साथ सहानुभूति हो गई थी। उन्होंने भी कहा कि लड़केको ले जाने देना चाहिये। जमन लगता भी सलोना था। बिरदीबाईने कनीरामजीसे किस्सा कहा। कनीरामजीने कहा, 'सहज भावसे ही क्यों न हो, यदि तुम्हारी जबान ऐसी निकल गई तो फिर सोचनेकी बात है।'

अब बच्छराजजीने जमनालालजीको वर्धा ले जानेके लिए कनीरामजीसे कहा। कनीरामजीने अपने बड़े भाई परशरामजीको सारी कथा सुनाई तो उन्होंने स्पष्ट इन्कार कर दिया। इस पर बच्छराजजीने बड़ी अनुनय-विनय की, कई तरहके प्रयत्न किये। गांववालोंसे पुनः जोर डलवाया और जब बच्छराजजीने धरना ही दे दिया कि चाहे जो हो, मैं तो जमनको लेकर ही जाऊंगा, तब कनीरामजी धर्म-संकटमें पड़े। इधर तो भाईकी रुकावट, उधर पत्नीका वचन—चाहे वह बातों ही बातोंमें क्यों न दिया गया हो, फिर इनका और गांववालोंका आग्रह। आखिर उन्होंने जमनालालको वर्धा ले जानेकी स्वीकृति दे दी।

पूर्वोक्त दोनों घटनाओंमें मानों ईश्वरीय संकेत काम कर रहा हो। काशीकावास जैसे छोटेसे गांवमें एक साधारण व्यवसायी माता-पिताके यहां जिस जीवने जन्म लिया था उसे वर्धा पहुंच कर बहुत उज्ज्वल बनकर, अपनी मधुर स्मृतियां व अनमोल परंपरा पीछे छोड़ जानी थी।

गोद दिये जाने पर बच्छराजजीने कनीरामजीको कुछ धन देनेका भी प्रयत्न किया था। किन्तु उस तेजस्वी व स्वाभिमानी पिताने साफ नहीं कह दिया। जब बच्छराजजी बहुत पीछे पड़े तो अपने गांवमें सब ग्रामवासियोंके लिए एक कुआं खुदवा देनेका सुझाव उनके सामने रखा। उन्होंने कहा, "मुझे

अपने लिए किसी चीजकी जरूरत नहीं, जमनके लिए उसकी मां वचन दे चुकी है तो उसे ले जाओ। मैं पैसेका भूखा नहीं हूं। आप कुछ खर्च करना चाहते ही हैं तो गांववालोंका कुछ कष्ट दूर कर दीजिये। गांवमें कोई कुआं नहीं है। पासके गांव, कदमाकावाससे सिर पर दो दो घड़े पानी लाना पड़ता है। उसमें सब गांववालोंको बड़ा कष्ट होता है, सो कुआं भले ही बनवा दीजिये।" जमनालालजीके गोदका स्मारक यह कुआं अब भी काशीकावासमें मौजूद है।

कूप-निर्माणकी यह घटना बताती है कि मानों जमनालालजीके दत्तक-प्रकरणके मूलमें ही सेवा-बीजका वपन हो गया और यहींसे उनमें सेवाभावी होनेका अंकुर फूटा हो। उनके गोद दिये जानेकी स्मृतिमें कुआं ही बनवाया गया—इस घटनामें भी मानों भगवानका हाथ हो। जमनालालजी बचपनमें दातुनोंसे खेल खेलमें खड्डे खोदा करते थे। कोई पूछता तो कहते 'कुआं खोदता हूं।' इस कुएंका पानी भी बहुत मीठा व रोगहारक निकला जो जमनालालजीके उज्ज्वल व सेवामय भविष्यको सूचित करता था।

जमनालालजी कहा करते थे कि मुझमें जो निर्भीकता, तेजस्विता, दबंगता, ऐंठ है वह तो पिताजीके स्वभावका अंश है व जो धार्मिकता, स्नेह-सौजन्य, उदारता, दयालुता है वह माताजीसे मिली है। आज भी हमें उनकी माताके इन गुणोंका दर्शन हो जाता है। अब उन्हें बहुत कम दिखाई देने लगा है, सुनाई भी बहुत ऊंचेसे बोलने पर पड़ता है। स्वास्थ्य काफी डगमगा गया है। फिर भी उनका जीवन आज भी बहुत-कुछ स्वावलंबी-सा है। वे प्रातः ३ बजेके करीब उठ जाती हैं, रातमें ही थोड़ा निवाया पानी चूल्हे पर रखवा लेती हैं। उठते ही निपट निपटाकर नहा-धो लेती हैं और शांत मनसे माला फेरने लग जाती हैं। सैकड़ों कथा-कहानी व हरयश जितने याद हैं वे सब गा बोलकर दुहरा लिया करती हैं। सूर्योदयके समय दर्शन कर लेती हैं। गोशालामें जाकर गोमाताओंके दर्शनमें उन्हें खूब आनंद मिलता है। बाद दिनभर गोपुरीके सादेसे घरके बरामदेमें पीढे पर बैठकर उनका पुराना परम्परागत चरखा चलता ही रहता है। . . . इस तरह इस जगतमें और अपने जीवनमें जनता जनार्दनको देखना, आये गयोंसे गहरे स्नेहभावसे मिलना, बातचीत करना यही उनका सबसे बड़ा सत्संग है। जैसे विविके

लिए विधाता वैसे जनताके लिए मान्धाता शब्द उनके मुखसे सुनना बहुत मीठा लगता है। दिनभर कुछ-न-कुछ करते ही रहनेका उनका उत्साह बना रहता है।

शरीर-श्रमका सिद्धांत उनके रक्तमें सहज ही समाया हुआ है। पहले बहुत आटा पीसा है, खेतमें काम किया है व सैकड़ों गज कपड़ेका सूत कात लिया है। हरेक स्वजन व प्रियजनको अपने हाथ-सूतकी एक एक चद्दर व साड़ी या कुछ न कुछ कपड़ा देनेका सदा प्रयत्न किया है। अब भी वे कातकर इतनी खुश होती हैं कि मानों कोई बड़ा सहारा उन्हें मिल गया हो। परिचित जनोंसे मिलकर वे बहुत ही प्रसन्न हो जाती हैं। हरेकसे स्वागतपूर्वक अत्यंत प्यार व हित-भावनासे कुशल-मंगल पूछना उनका सहज प्रेमल स्वभाव है।

जमनालालजी कई बार सुबह जल्दी उठकर मांकी गोदमें लेटकर कथा, भजन सुननेका अवसर कभी-कभी ढूंढ़ निकालते थे। एक बार बिरदीबाईने कहा भी, 'जमन, मुझे तो शरम लगती है।' वे आज भी जमनालालजीके बचपनकी विलक्षणताओंको सुनाती रहती हैं। विधाताकी यह ऐसी निष्ठुर करनी है कि न केवल कनीरामजी व जमनालालजीके दोनों भाई कालके गालमें चले गये, बल्कि खुद जमनालालजी भी अचानक ही चल बसे व उनकी करीब ९० बरसकी बूढ़ी मां उन सबका बिछोह सहने व उनकी कथाएं सुनानेके लिए पीछे मौजूद रह गईं। अपने पति व बेटोंके कन्धे चढ़ जाना जहां एक पत्नी व मांके लिए सुखकी बात हो सकती है वहां बादमें रहकर उनके वियोगको इतनी शांति व धैर्यसे सहना क्या एक तपश्चर्या नहीं है? आखिर तो मनुष्यकी अंतिम गति इस बात पर अवलंबित नहीं रहती कि कौन कब मरता है, कब तक जीवित रहता है; बल्कि इसी बात पर अवलंबित रहती है कि उसने अपने जीवनकी घटनाओंका मुकाबला किस दृढ़ता, शांति, धैर्य व अविचलतासे किया है।

सद्गुण-सागर

किसी व्यक्तिका जीवन-चरित्र तारीखों और दूरसे चमकनेवाले कामोंमें ही नहीं समा जाता, बल्कि ज्यादातर उन घटनाओंमें छिपा रहता है जिन्होंने

उसके ज़ीवनको बनाने व चमकानेमें कुछ कार्य किया है। मनुष्यका जीवन आख़िर क्या है? संस्कार, भावना, विचार व आचार इन्हींका समुच्चय ही तो है! पिछले कर्मोंका प्रभाव संस्कार कहलाता है, संस्कारसे भावनाका जन्म होता है, भावना जब क्रियाशील होने लगती है तब विचारका उदय होता है और विचार जब परिपक्व होते हैं तब कृतियां होने व चमकने लगती हैं। कृतियां सबसे ज्यादा हमें दीखती हैं। विचार उनसे कम, भावना विचारोंसे भी कम और संस्कार भावनाओंसे भी कम दिखाई देते हैं। परंतु, इनमें जो वस्तु जितनी कम दिखाई देती है, उतनी ही वह मूल-रूपमें अधिक शक्तिशाली होती है, क्योंकि बीज ही में तो सब कुछ समाया रहता है।

वह कौनसी मूल-प्रेरणा थी जिसने काशीकावास जैसे मरुस्थलके एक एकान्त कोनेमें जन्मे बालकको महात्मा गांधीका "पांचवां पुत्र" बना दिया; गांधीजीको जिसके लिए 'संत', 'दिव्य-पुरुष' आदि विशेषणोंका प्रयोग करना पड़ा? मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि वास्तवमें उन्हें अपना जीवन "दिव्य" बनानेकी जबर्दस्त धुन थी। राजनैतिक नेता, समाज-सुधारक, संगठन-कर्ता, व्यापारी, मित्र व सहायक आदि वे सब कुछ थे। पर इन सबसे अधिक, सबसे बढ़कर वे एक परम श्रेयार्थी, सच्चे आत्मार्थी और जबर्दस्त सत्याग्रही थे।

जमनालालजीने गंभीर आत्म-परीक्षण, नितान्त साहस, दृढ़ता व आत्म-दमनसे काम लिया है। अपने गुरुजनों व आत्मीयोंके सामने अपनेको खुला रख देनेका उनका स्वभाव या नियम था; इसमें वे अपनी सुरक्षा ही नहीं, प्रगतिका भी साधन देखते थे। ऐसी क्षमता व ऐसा साहस, भगवानके महान अनुग्रहसे बिरलोंमें ही पाया जाता है। श्रेयार्थी या आत्मार्थीका यह पहला लक्षण होता है। अपने विकार, विचार व भावनाओंके ठीक स्वरूपको देखते रहना व समझना, भले ही उनका रूप अरुचिकर ही क्यों न हो, मामूली साधना नहीं है। फिर उनका चित्र अपने गुरुजनों व आत्मीयोंके सामने खोलकर रख देना और भी कठिन बात है। सत्य, केवल सत्यकी साधना का ही जिसने व्रत लिया हो, उसीमें ऐसा करनेकी हिम्मत रहती है। जमनालालजीमें यह उत्कटता व ऐसा साहस कूट-कूट कर भरा हुआ था और इसमें उनकी महानता कम छिपी हुई नहीं है। जो साधना उनकी पूर्ण

हो चुकी, जिसका फल उन्होंने और दुनियाने देख लिया उसकी अपेक्षा उनकी महानता उन प्रयत्नों, उन हार्दिक योजनाओंमें कहीं अधिक समाई हुई है जिनका साक्षी जगत् नहीं हो पाया; जो केवल उनकी व उनके आत्मीयोंकी जानकारी तक ही सीमित रह गई है। वह बतलाती है कि जमनालालजी कोरे शाब्दिक सत्याग्रही ही नहीं थे; वे अपने विकारों, बुराइयों, कमियोंको खोजनेवाले वास्तविक श्रेयार्थी तथा उनसे दिन-रात युद्ध करनेवाले महान वीर व योद्धा थे। अपने बाहरी शत्रुओंसे लड़नेवाले यदि वीर व योद्धा कहलाते हैं, तो अपने भीतरी शत्रुओंसे अहर्निश लड़नेवाले अवश्य ही महावीर व महायोद्धा कहलानेके अधिकारी हैं। जमनालालजी ऐसे ही एक महावीर थे। उनकी इस महावीरताको खोजकर मैं धन्य हुआ।

जमनालालजीका जीवन एक समुद्रकी तरह है—व्यापक भी और गंभीर भी।

तुम्हींको अर्पण, श्रेष्ठ! तुम्हारा गुण-दर्शन,
गो-दुग्धामृत मधुर, स्वच्छ, प्राणद, पावन!

हरिभाऊ उपाध्याय

स्मरणिका : पांच :

प्रेरणा-पीयूष

अभिधान

सत्यके भीतर शान्तिका समावेश मानकर और किसी भी वस्तुका आग्रह करनेसे उसमें वल उत्पन्न होता है इसलिए आग्रहमें वलका समावेश करके मैंने भारतीयोंके इस आन्दोलनको 'सत्याग्रह' अर्थात् सत्य और शान्ति से उत्पन्न होनेवाले वलका नाम दिया और उसी नामसे इसका परिचय कराया।

बीजारोपण

दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दुस्तानियोंकी सत्याग्रहकी लड़ाई आठ वर्ष तक चली। 'सत्याग्रह' शब्दकी शोध उसी लड़ाईके सिलसिलेमें हुई और उसी लड़ाईके लिए इस शब्दका प्रयोग किया गया था। वहुत समयसे मेरी यह इच्छा थी कि उस लड़ाईका इतिहास मैं अपने हाथसे लिखूं। उसकी कुछ वातें तो केवल मैं ही लिख सकता हूं। कौनसी वात किस हेतुसे की गई थी, यह तो उस लड़ाईका संचालन करनेवाला ही जान सकता है। और राजनीतिक क्षेत्रमें यह प्रयोग वड़े पैमाने पर दक्षिण अफ्रीकामें पहला ही हुआ था। . . .

परन्तु इस समय तो हिन्दुस्तानमें सत्याग्रहका विशाल क्षेत्र है। हिन्दुस्तानमें वीरमगामकी जकातकी छोटीसी लड़ाईसे सत्याग्रहका अनिवार्य क्रम आरम्भ हुआ है।

आरोहण

वीरमगामकी जकातकी लड़ाईका निमित्त था वढ़वाणका एक साधुचरित परोपकारी दरजी मोतीलाल। विलायतसे लौटकर मैं १९१५ में काठियावाड़ (सौराष्ट्र) जा रहा था। रेलके तीसरे दर्जेमें वैठा था। वढ़वाण स्टेशन पर

यह दरजी अपनी छोटीसी टुकड़ीके साथ मेरे पास आया था। वीरमगामकी थोड़ी बात करके उसने मुझसे कहा :

"आप इस दुःखका कोई उपाय करें। काठियावाड़में आपने जन्म लिया है—यहां आप उसे सफल बनायें।" उसकी आंखोंमें दृढ़ता और करुणा दोनों थीं।

मैंने पूछा : "आप लोग जेल जानेको तैयार हैं?"

तुरन्त उत्तर मिला : "हम फांसी पर चढ़नेको भी तैयार हैं!"

मैंने कहा : "मेरे लिए तो आपका सिर्फ जेल जाना ही काफी है। लेकिन देखना, विश्वासघात न हो।"

मोतीलालने कहा : "यह तो अनुभव ही बतायेगा।"

मैं राजकोट पहुंचा। वहां इस सम्बन्धमें अधिक जानकारी हासिल की। सरकारके साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया। बगसरा वगैरा स्थानों पर मैंने जो भाषण दिए, उनमें वीरमगामकी जकातके बारेमें आवश्यक होने पर लोगोंको सत्याग्रह करनेके लिए तैयार रहनेकी सूचना मैंने की। सरकारकी वफादार खुफिया पुलिसने मेरे इन भाषणोंको सरकारी दफ्तर तक पहुंचा दिया। पहुंचानेवाले व्यक्तिने सरकारकी सेवाके साथ अनजाने ही राष्ट्रकी भी सेवा की। अन्तमें लार्ड चेम्सफोर्डके साथ इस सम्बन्धमें मेरी चर्चा हुई और उन्होंने अपना दिया हुआ वचन पाला। मैं जानता हूं कि दूसरोंने भी इस विषयमें प्रयत्न किया। परन्तु मेरा यह दृढ़ मत है कि इसमें से सत्याग्रह शुरू होनेकी सम्भावनाको देखकर ही वीरमगामकी जकात रद की गई।

उल्लेखनीय बात

तीसरी लड़ाई चम्पारनकी थी। उसका विस्तृत इतिहास राजेन्द्रबाबूने लिखा है। उसके लिए सत्याग्रह करना पड़ा, केवल तैयारी काफी साबित नहीं हुई। विरोधी पक्षका स्वार्थ कितना बड़ा था? यह बात उल्लेखनीय है कि उस सत्याग्रहमें चम्पारनके लोगोंने खूब शान्ति रखी। इसका साक्षी मैं हूं कि सारे नेताओंने मनसे, वचनसे और कायासे सम्पूर्ण शान्ति रखी। यही कारण है कि चम्पारनकी यह सदियों पुरानी बुराई छह मासमें दूर हो गई।

लड़ाई की सीख

चौथी लड़ाई थी अहमदावादके मिल-मजदूरोंकी। उसका इतिहास गुजरात न जाने तो दूसरा कौन जानेगा? उस लड़ाईमें मजदूरोंने कितनी शान्ति रखी? नेताओंके वारेमें तो मैं भला क्या कहूं? फिर भी उस विजयको मैंने दोषयुक्त माना है; क्योंकि मजदूरोंकी टेककी रक्षाके लिए मैंने जो उपवास किया वह मिल-मालिकों पर दवाव डालनेवाला था। उनके और मेरे वीच जो स्नेह था उसके कारण मेरे उपवासका असर मिल-मालिकों पर पड़े विना रह ही नहीं सकता था। ऐसा होते हुए भी उस लड़ाईकी सीख तो स्पष्ट है। मजदूर शान्तिसे अपनी टेक पर डटे रहते, तो उनकी विजय अवश्य होती और वे मिल-मालिकोंका मन जीत लेते। लेकिन वे मालिकोंका मन नहीं जीत सके, क्योंकि वे मन, वचन, कायासे निर्दोष—शान्त रहे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पर इस लड़ाईमें वे कायासे शान्त रहे, यह भी वहुत वड़ी वात मानी जायगी।

भारी जागृति

पांचवीं लड़ाई खेड़ाकी थी। उसमें सारे नेताओंने शुद्ध सत्यकी रक्षा की, ऐसा तो मैं नहीं कह सकता। शान्तिकी रक्षा जरूर हुई। किसानोंकी शान्ति कुछ हद तक अहमदावादके मजदूरोंकी तरह केवल कायिक शान्ति ही थी। उससे केवल मान और प्रतिष्ठाकी रक्षा हुई। लोगोंमें भारी जागृति पैदा हुई। परन्तु खेड़ाने पूरी तरह शान्तिका पाठ नहीं सीखा था; और अहमदावादके मजदूर शान्तिके शुद्ध स्वरूपको समझे नहीं थे। इससे रौलट एक्टके सत्याग्रहके समय लोगोंको कष्ट उठाना पड़ा, मुझे अपनी हिमालय जैसी वड़ी भूल स्वीकार करनी पड़ी और उपवास करना तथा दूसरोंसे करवाना पड़ा।

वहुत वड़ा सवक

छठी लड़ाई थी रौलट एक्टकी। उसमें हमारे भीतरके दोष वाहर उभर आए। परन्तु हमारा मूल आधार सच्चा था। सारे ही दोष हमने स्वीकार किए; उनके लिए प्रायश्चित्त भी किया। रौलट एक्टका अमल

भी नहीं हो सका और अन्तमें वह काला कानून रद्द भी कर दिया गया। इस लड़ाईने हमें बहुत बड़ा सबक सिखाया।

दृढ़ विश्वास

सातवीं लड़ाई थी खिलाफतकी, पंजाबके अत्याचारोंकी और स्वराज्य प्राप्त करनेकी। यह लड़ाई आज भी चल रही है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इसमें एक भी सत्याग्रही यदि अन्त तक डटा रहे, तो हमारी विजय निश्चित है।

सत्याग्रह की खूबी

आज जो लड़ाई चल रही है, वह तो महाभारतके जैसी है। इसकी तैयारी अनिच्छासे कैसे हुई, इस बातका क्रम मैं ऊपर बता चुका हूं। वीरमगामकी जकातकी लड़ाईके समय मुझे इस बातका पता नहीं था कि दूसरी लड़ाइयां भी आगे चलकर मुझे लड़नी होंगी। और वीरमगामकी लड़ाईके बारेमें भी दक्षिण अफ्रीकामें मैं कुछ नहीं जानता था। सत्याग्रहकी खूबी यही है। वह स्वयं हमारे पास चला आता है; हमें उसे खोजने नहीं जाना पड़ता। यह गुण सत्याग्रहके सिद्धान्तमें ही निहित है। जिसमें कुछ गुप्त नहीं है, जिसमें कोई चालाकीकी बात नहीं है और जिसमें कुछ असत्य तो हो ही नहीं सकता, ऐसा धर्मयुद्ध अनायास ही आता है; और धर्मी—धर्मपरायण—मनुष्य उसके लिए सदा तैयार ही रहता है। जिस युद्धकी योजना पहलेसे करनी पड़े, वह धर्मयुद्ध नहीं है।

'निर्बल के बल राम'

धर्मयुद्धकी योजना करनेवाला और उसे चलानेवाला ईश्वर है। वह युद्ध ईश्वरके नाम पर ही चल सकता है और जब सत्याग्रहीके सारे आधार ढीले पड़ जाते हैं, वह सर्वथा निर्बल हो जाता है और चारों ओर घोर

अन्धकार फैल जाता है, तभी ईश्वर उसकी सहायता करता है। मनुष्य जब रजकणसे भी अपनेको नीचा मानता है तभी ईश्वर उसकी सहायता करता है। निर्बलको ही राम बल देता है।

दृढ़ता से डटे रहें

वर्तमान लड़ाईमें आज तक हमें जो-जो अनुभव हुए हैं, उनसे मिलते-जुलते अनुभव दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहमें हुए थे। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास हमें यह भी बतायेगा कि अभी तक हमारी इस लड़ाईमें निराशाका एक भी कारण पैदा नहीं हुआ है। विजय प्राप्त करनेके लिए इतना ही आवश्यक है कि हम अपनी योजना पर दृढ़तासे डटे रहें।[1]

प्रेरक दर्शन

हमारी आजकी स्थितिमें ऐसी एक भी बात नहीं है जिसका छोटे पैमाने पर मुझे दक्षिण अफ्रीकामें अनुभव न हुआ हो। सत्याग्रहके आरम्भमें यही उत्साह, यही एकता और यही आग्रह वहां देखनेको मिला था; मध्यमें यही निराशा, यही अरुचि और ये ही आपसी झगड़े और ईर्ष्या-द्वेष; और फिर भी मुट्ठीभर लोगोंमें अविचल श्रद्धा, दृढ़ता, त्याग और सहिष्णुताके दर्शन होते थे।

हिन्दुस्तानकी लड़ाईका अन्तिम काल अभी बाकी है। उस अन्तिम कालमें मैं यहां भी वही स्थिति देखनेकी आशा रखता हूं, जिसका अनुभव मैं दक्षिण अफ्रीकामें कर चुका हूं।

निरपवाद अनुभव

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जैसा दक्षिण अफ्रीकामें हुआ था वैसा ही यहां भी होगा; क्योंकि तपस्या पर, सत्य पर, अहिंसा पर मेरी अटल और अविचल श्रद्धा है। मेरा अक्षरशः यह विश्वास है कि सत्यका पालन करनेवाले मनुष्यके सामने सारे जगतकी सम्पत्ति आकर खड़ी हो जाती है और वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है।

---

१. द. अ. स. इतिहास, प्रस्तावना, जुहू, २ अप्रैल, १९२४।

आत्म-दर्शन की उत्कण्ठा

बम्बई-बन्दर पर समुद्र क्षुब्ध था। जून-जुलाईमें हिन्द महासागरमें यह कोई नई बात नहीं होती। अदनसे ही समुद्रका यह हाल था। सब लोग बीमार पड़ गए थे—अकेला मैं मौजमें रहा था। तूफान देखनेके लिए डेक पर रहता और भीग भी जाता।

माताजीके दर्शन करनेके लिए मैं अधीर हो रहा था। जब हम डेक पर पहुंचे तो मेरे बड़े भाई वहां मौजूद थे। उन्होंने डाक्टर मेहता तथा उनके बड़े भाईसे जान-पहचान कर ली थी। डाक्टर चाहते थे कि मैं उन्हींके घर ठहरूं, सो वह मुझे वहीं लिवा ले गए। इस तरह विलायतमें जो सम्बन्ध बंधा था वह देशमें भी कायम रहा। यही नहीं, बल्कि अधिक दृढ़ होकर दोनों परिवारोंमें फैला। . . . डाक्टर मेहताने अपने घरके जिन लोगोंसे मेरा परिचय कराया उनमें से एकका जिक्र यहां किए बिना नहीं रह सकता। उनके भाई रेवाशंकर जगजीवनके साथ तो जीवन भरके लिए स्नेहगांठ बंध गई। . . .

जिनकी बात मैं कहना चाहता हूं वह तो हैं **कवि रायचन्द** अथवा **राजचन्द्र**। वह डाक्टर साहबके बड़े भाईके दामाद थे और रेवाशंकर जगजीवनकी दूकानके भागीदार तथा कार्यकर्ता थे। उनकी अवस्था उस समय २५ वर्षसे अधिक न थी। फिर भी पहली ही मुलाकातमें मैंने यह देख लिया कि वह चरित्रवान और ज्ञानी थे। वह शतावधानी माने जाते थे। डाक्टर मेहताने कहा कि इनके शतावधानका नमूना देखना। मैंने अपने भाषा-ज्ञानका भण्डार खाली कर दिया और कविजीने मेरे कहे तमाम शब्दोंको उसी नियमसे कह सुनाया, जिस नियमसे मैंने कहा था। इस सामर्थ्य पर मुझे ईर्ष्या तो हुई; किन्तु उस पर मैं मुग्ध न हो पाया। जिस चीज पर मैं मुग्ध हुआ उसका परिचय तो मुझे पीछे जाकर हुआ। वह था उनका विशाल

शास्त्र-ज्ञान, उनका निर्मल चरित्र और आत्म-दर्शन करनेकी उनकी भारी उत्कंठा। मैंने आगे चलकर तो यह भी जाना कि केवल आत्म-दर्शन करनेके लिए वह अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे।

'हसतां रमतां प्रगट हरि देखुं रे, मारुं जीव्युं सफळ तव लेखुं रे;
मुक्तानन्दनो नाथ विहारी रे, ओघा जीवनदोरी अमारी रे।'

भावार्थ यह है कि मैं अपना जीवन तभी सफल समझूंगा जब मैं हंसते-खेलते ईश्वरको अपने सामने देखूंगा।

मुक्तानन्दका यह वचन उनकी जबान पर तो रहता ही था; पर उनके हृदयमें भी अंकित हो रहा था। खुद हजारोंका व्यापार करते, हीरे-मोतीकी परख करते, व्यापारकी गुत्थियां सुलझाते, पर वे बातें उनका विषय न थीं। उनका विषय, उनका पुरुषार्थ तो आत्म-साक्षात्कार, हरि-दर्शन ही था।

धर्म तो असीम है

मेरे जीवन पर श्रीमद् राजचन्द्रभाईका ऐसा स्थायी प्रभाव पड़ा है कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। उनके विषयमें मेरे गहरे विचार हैं। मैं कितने ही वर्षोंसे भारतमें धार्मिक पुरुषोंकी शोधमें हूं; परन्तु मैंने ऐसा धार्मिक पुरुष भारतमें अब तक नहीं देखा, जो श्रीमद् राजचन्द्रभाईके साथ प्रतिस्पर्धा कर सके। उनमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति थी; ढोंग, पक्षपात या राग-द्वेष न थे। उनमें एक ऐसी महान शक्ति थी जिसके द्वारा वह प्राप्त हुए प्रसंगका पूर्ण लाभ उठा सकते थे। उनके लेख अंग्रेज तत्त्वज्ञानियोंकी अपेक्षा भी विचक्षण, भावनामय और आत्मदर्शी हैं।

यूरोपके तत्त्वज्ञानियोंमें मैं टाल्स्टायको पहली श्रेणीका और रस्किनको दूसरी श्रेणीका विद्वान समझता हूं, परन्तु श्रीमद् राजचन्द्रभाईका अनुभव इन दोनोंसे भी बढ़ा-चढ़ा था। इन महापुरुषोंके जीवनके लेखोंको अवकाशके समय पढ़ेंगे, तो आप पर उनका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा। वह प्रायः कहा करते थे कि मैं किसी वाड़ेका नहीं हूं और न किसी वाड़ेमें रहना ही चाहता हूं। यह सब तो मर्यादित उपधर्म हैं और धर्म तो असीम है कि जिसकी व्याख्या हो ही नहीं सकती। वह अपने जवाहरातके धन्धेमें

विरक्त होते कि तुरन्त पुस्तक हाथमें लेते। यदि उनकी इच्छा होती तो उनमें ऐसी शक्ति थी कि वह एक अच्छे प्रतिभाशाली बैरिस्टर, जज या वाइसराय हो सकते थे। यह अतिशयोक्ति नहीं, किन्तु मेरे मन पर उनकी छाप है। उनकी विचक्षणता दूसरे पर अपनी छाप लगा देती थी।

अलौकिक पुरुष

वह दया-धर्मकी मूर्ति थे। उन्होंने दया-धर्म समझा था और उसे अपने जीवनमें उतारा था। . . . उनके हम लोग पुजारी हैं, मैं भी उनका पुजारी हूं।

मैंने यह वहुत वार कहा और लिखा है कि मैंने अपने जीवनमें वहुतों से वहुत-कुछ ग्रहण किया है। पर सवसे अधिक यदि मैंने किसीके जीवनमें से ग्रहण किया हो तो वह कविश्रीके जीवनमें से ग्रहण किया है। दया-धर्म भी मैंने उन्हींके जीवनमें से सीखा है।

शुद्ध जड़ और चैतन्यमें भेद नहींके वरावर है। सारा जगत जड़रूप ही देख पड़ता है। आत्मा तो कभी क्वचित् ही प्रकाशित होता है। ऐसा व्यवहार अलौकिक पुरुषोंका होता है और यह मैंने देखा है कि ऐसा व्यवहार श्रीमद् राजचन्द्रभाईका था।



ईश्वर का राज्य

तीन पुरुषोंने मेरे जीवन पर बहुत ही बड़ा प्रभाव डाला है। उनमें पहला स्थान मैं राजचन्द्र कविको देता हूं, दूसरा टाल्स्टायको और तीसरा रस्किनको। टाल्स्टाय और रस्किनके दरम्यान स्पर्धा खड़ी हो और दोनोंके जीवनके विषयमें मैं अधिक बातें जान लूं, तो नहीं जानता कि उस हालतमें प्रथम स्थान मैं किसे दूंगा। परन्तु अभी तो दूसरा स्थान टाल्स्टायको देता हूं। टाल्स्टायके जीवनके विषयमें बहुतेरोंने जितना पढ़ा होगा उतना मैंने नहीं पढ़ा है। ऐसा भी कह सकते हैं कि उनके लिखे हुए ग्रन्थोंका वाचन भी मेरा बहुत कम है। उनकी पुस्तकोंमें से जिस किताबका प्रभाव मुझ पर बहुत अधिक पड़ा उसका नाम है 'किंग्डम ऑफ हैवन इज़ विदिन यू'। उसका अर्थ यह है कि ईश्वरका राज्य तुम्हारे हृदयमें है; उसे बाहर खोजने जाओगे तो वह कहीं नहीं मिलेगा।

इसे मैंने चालीस वर्ष पहले पढ़ा था। उस वक्त मेरे विचार कई एक बातोंमें शंकाशील थे। कई मर्तबा मुझे नास्तिकताके विचार भी आते थे। विलायत जानेके समय तो मैं हिंसक था, हिंसा पर मेरी श्रद्धा थी और अहिंसा पर अश्रद्धा। यह पुस्तक पढ़नेके बाद मेरी यह अश्रद्धा चली गई। फिर मैंने उनके दूसरे कई ग्रन्थ पढ़े। उनमें से प्रत्येकका क्या प्रभाव पड़ा सो मैं नहीं कह सकता, परन्तु उनके समग्र जीवनका क्या प्रभाव पड़ा वह तो कह सकता हूं।

सत्य की मूर्ति

उनके जीवनमें से मैं अपने लिए दो बातें भारी समझता हूं। वह जैसा कहते थे वैसा ही करनेवाले पुरुष थे। उनकी सादगी अद्भुत थी, बाह्य सादगी तो थी ही। वह अमीर वर्गके मनुष्य थे। इस जगतके छप्पन भोग

उन्होंने भोगे थे। धन-दौलतके विषयमें मनुष्य जितनी इच्छा रख सकता है, उतना उन्हें मिला था। फिर भी उन्होंने भरी जवानीमें अपना ध्येय बदला। दुनियाके विविध रंग देखने पर भी, उनके स्वाद चखने पर भी, जब उन्हें प्रतीत हुआ कि इनमें कुछ नहीं है तो उनसे मुंह मोड़ लिया और अन्त तक अपने विचारों पर पक्के रहे। इसीसे मैंने एक जगह लिखा है कि **टाल्स्टाय युगके सत्यकी मूर्ति** थे। उन्होंने सत्यको जैसा माना वैसा ही पालनेका उग्र प्रयत्न किया। सत्यको छिपाने या कमजोर करनेका प्रयत्न नहीं किया। लोगोंको दुःख होगा या अच्छा लगेगा कि नहीं, इसका विचार किये बिना ही उन्हें जिस माफिक जो वस्तु दिखाई दी उसी माफिक कह सुनाई।

पूंजी में वृद्धि

हिन्दुस्तान कर्मभूमि है। हिन्दुस्तानमें ऋषि-मुनियोंने अहिंसाके क्षेत्रमें बड़ीसे बड़ी खोजें की हैं; परन्तु हम केवल बुजुर्गोंकी ही प्राप्त की हुई पूंजी पर नहीं निभ सकते। उसमें यदि वृद्धि न की जाय तो हम उसे खा जाते हैं। इस विषयमें न्यायमूर्ति रानडेने हमें सावधान कर दिया है। वेदादि साहित्यमें से या जैन साहित्यमें से हम बड़ी-बड़ी बातें चाहे जितनी करते रहें अथवा सिद्धान्तोंके विषयमें चाहे जितने प्रमाण देते रहें और दुनियाको आश्चर्य-मग्न करते रहें, फिर भी दुनिया हमें सच्चा नहीं मान सकती। इसलिए रानडेने हमारा धर्म यह बताया है कि हम इस पूंजीमें वृद्धि करते जायं।

दूसरे धर्म-विचारकोंने जो लिखा हो, उसके साथ मुकाबिला करें। ऐसा करनेमें कुछ नया मिल जाय या नया प्रकाश मिलता हो तो उसका तिरस्कार न करना चाहिए; किन्तु हमने ऐसा नहीं किया। हमारे धर्माध्यक्षोंने एक पक्षका ही विचार किया है। उनके पठन, कथन और बरतनमें समानता भी नहीं है।[१]

अहिंसा की प्रधानता

प्रजाको अच्छा लगे या नहीं, जिस समाजमें वे स्वयं काम करते थे उस समाजको भला लगे या बुरा, फिर भी टाल्स्टायके समान खरी-खरी

१. प्रार्थना-प्रवचन, १०.६.'४७।

सुना देनेवाले हमारे यहां नहीं मिलते। हमारे इस अहिंसा-प्रधान देशकी ऐसी दयाजनक दशा है। खटमल, मच्छर, बिच्छू, पक्षी और पशुओंको हर किसी तरहसे निभानेमें ही मानों हमारी अहिंसा पूर्ण हो जाती है। वे प्राणी कष्टमें तड़पते हों तो उसकी भी हमें चिन्ता नहीं।... यह अहिंसा नहीं है। टाल्स्टायका स्मरण कराते हुए मैं फिर कहता हूं कि अहिंसाका यह अर्थ नहीं है।

अहिंसाके मानी हैं प्रेमका समुद्र, अहिंसाके मानी हैं वैरभावका सर्वथा त्याग। अहिंसामें दीनता, भीरुता न हो, डर-डरके भागना भी न हो। अहिंसामें दृढ़ता, वीरता, निश्चलता होनी चाहिए।

दो डग आगे

यह अहिंसा हिन्दुस्तानमें शिक्षित समाजमें दिखाई नहीं देती। उनके लिए टाल्स्टायका जीवन प्रेरक है। उन्होंने जो वस्तु मान ली, उसका पालन करनेमें भारी प्रयत्न किया और उससे कभी डिगे तक नहीं।

हमारे ऋषियोंने कहा है कि मोक्ष तो शून्यता है। मोक्ष चाहनेवालेको शून्यता प्राप्त करना है। यह ईश्वर-प्रसादके बिना नहीं मिल सकती। यह शून्यता जबतक शरीर है, आदर्शरूप ही रहती है। इस बातको टाल्स्टायने साफ देख लिया, उसे बुद्धिमें अंकित किया, उसकी ओर दो डग आगे बढ़े।

जो सत्य प्रतीत हो

सीधा मार्ग यह है कि जिस वक्त जो सत्य प्रतीत हो उसका आचरण करना चाहिए। यदि हमारी उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती जाती हो, तो हमारे कार्योंमें दूसरोंको विरोध दीखे तो भी उससे हमें क्या? सच तो यह है कि वह हमारा विरोध नहीं, हमारी उन्नति है। उसीके अनुसार टाल्स्टायके जीवनमें जो विरोध दीखता है वह विरोध नहीं है, बल्कि हमारे मनका विरोधाभास है। मनुष्य अपने हृदयमें कितने प्रयत्न करता होगा, राम-रावणके युद्धमें कितनी विजयें प्राप्त करता होगा, उनका ज्ञान उसे स्वयं नहीं होता, देखनेवालोंको तो हो ही नहीं सकता। यदि वह कुछ फिसला तो जगतको

निगाहमें वह कुछ भी नहीं है, ऐसा प्रतीत होना अच्छा ही है। सन्तोंने कहा है कि जगत जब हमारी निन्दा करे तब हमें आनन्द मनाना चाहिए और स्तुति करे तब कांप उठना चाहिए। जगत दूसरी (बात) नहीं करता, उसे तो जहां मैल दीखा कि वह उसकी निन्दा ही करेगा; परन्तु महापुरुषके जीवनको देखने बैठें तो मेरी कही हुई बात याद रखनी चाहिए। उसने हृदयमें कितने युद्ध किए होंगे और कितनी जीतें प्राप्त की होंगी, इसका गवाह तो प्रभु ही है। निष्फलता और सफलताके यही चिह्न हैं।

जीवन का कानून

दूसरी एक अद्‌भुत वस्तुका खयाल टाल्स्टायने लिखकर और उसे अपने जीवनमें ओतप्रोत करके कराया है। वह वस्तु है 'ब्रेड लेबर।' यह उनकी स्वयं की हुई खोज न थी। किसी दूसरे लेखकने यह वस्तु रूसके सर्व-संग्रहमें लिखी थी। इस लेखकको टाल्स्टायने जगतके सामने ला रखा और उसकी बातको भी वे प्रकाशमें ले आए। जगतमें जो असमानता दिखाई पड़ती है, दौलत व कंगालियत नजर आती है, उसका कारण यह है कि हम अपने जीवनका कानून भूल गए हैं। यह कानून 'ब्रेड लेबर' है। गीताके तीसरे अध्यायके आधार पर मैं उसे यज्ञ कहता हूं। गीताने कहा है कि बिना यज्ञ किए जो खाता है वह चोर है, पापी है। वही चीज टाल्स्टायने बतलाई है। 'ब्रेड लेबर'का उलटा-सुलटा भावार्थ करके हमें उसे उड़ा नहीं देना चाहिए। उसका सीधा अर्थ यह है कि जो शरीर खपाकर मजदूरी नहीं करता उसे खानेका अधिकार नहीं है। हम भोजनके मूल्यके बराबर मेहनत कर डालें तो जो गरीबी जगतमें दिखाई देती है वह दूर हो जाय। एक आलसी दो भूखोंको मारता है, क्योंकि उसका काम दूसरेको करना पड़ता है।

टाल्स्टायने कहा कि लोग परोपकार करनेके लिए प्रयत्न करते हैं, उसके लिए पैसे खरचते हैं और इलकाब लेते हैं; परन्तु ऐसा न करके थोड़ा-सा ही काम करें अर्थात् दूसरोंके कन्धों परसे नीचे उतर जायं तो बस यही काफी है। और यही सच्ची बात है। यह नम्रताका वचन है। करें तो परोपकार; किन्तु अपने ऐशोआराममें से लेशमात्र भी न छोड़ें तो

वह वैसा ही हुआ जैसा कि अखा भगतने कहा है, 'निहायकी चोरी और सुईका दान।' ऐसे क्या विमान आ सकता है?

कहा सो किया

वात ऐसी नहीं है कि टाल्स्टायने जो कहा वह दूसरोंने नहीं कहा हो; परन्तु उनकी भाषामें चमत्कार था, क्योंकि जो कहा उसका उन्होंने पालन किया। गद्दी-तकियों पर वैठनेवाले मजदूरीमें जुट गए, आठ घण्टे खेतीका या दूसरा मजदूरीका काम उन्होंने किया। इससे यह न समझें कि उन्होंने साहित्यका कुछ काम ही नहीं किया था। जवसे उन्होंने शरीरकी मेहनतका काम शुरू किया तवसे उनका साहित्य अधिक शोभित हुआ। उन्होंने अपनी पुस्तकोंमें जिसे सर्वोत्तम कहा है, वह है 'कला क्या है?' यह उन्होंने इस यज्ञकालकी मजदूरीमें से वचते वक्तमें लिखा था। मजदूरीसे उनका शरीर न घिसा और उन्होंने ऐसा स्वयं मान लिया था कि उनकी वुद्धि अधिक तेजस्वी हुई; और उनके ग्रन्थोंके अभ्यासी कह सकते हैं कि यह वात सच्ची है।

सच्चा मार्ग

युवक-संघके सभ्योंसे यह कहते हुए मैं उन्हें याद दिलाना चाहता हूं कि तुम्हारे सामने दो मार्ग हैं: एक स्वेच्छाचारका और दूसरा संयमका। यदि तुम्हें यह प्रतीत होता हो कि टाल्स्टायने जीना और मरना जाना था, तो तुम देख सकते हो कि दुनियामें सवके लिए और विशेषत: युवकोंके लिए संयमका मार्ग ही सच्चा मार्ग है। हिन्दुस्तानमें तो खास तौर पर है ही। देशमें पश्चिमसे तरह-तरहकी हवाएं, मेरी दृष्टिमें जहरी हवाएं, आती हैं। टाल्स्टायके जीवनके समान सुन्दर हवा भी आती है सही; परन्तु वह प्रत्येक स्टीमरमें थोड़े ही आती है? प्रत्येक स्टीमरमें कहो या प्रतिदिन कहो। कारण कि प्रतिदिन कोई न कोई स्टीमर वम्बई या कलकत्तेके वन्दरगाहमें आता ही है। दूसरे परदेशी सामानके समान उसमें परदेशी साहित्य भी आता है। उसके विचार मनुष्यको चकनाचूर करनेवाले होते हैं, स्वेच्छाचारकी तरफ ले जानेवाले होते हैं।

प्रेम का सागर

. . . हमारे ऋषि-मुनियोंने कहा है कि अन्तर्नाद सुननेके लिए अन्तर्कर्ण भी चाहिए, अन्तर्चक्षु भी चाहिए और उसे प्राप्त करनेके लिए संयमकी आवश्यकता है। इसलिए पातंजल योगदर्शनमें योगाभ्यास करनेवालोंके लिए, आत्म-दर्शनकी इच्छा रखनेवालोंके लिए, पहला पाठ यम-नियम पालन करनेका बताया है। सिवाय संयमके मेरे, तुम्हारे या अन्य किसीके पास कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है। यही टाल्स्टायने अपने लम्बे जीवनमें संयमी रहकर बताया। मैं चाहता हूं, प्रभुसे प्रार्थना करता हूं कि यह चीज हम उसी तरह साफ देखें जैसे कि आंखोंके आगेका दीया स्पष्ट देखते हैं; और आज एकत्र हुए हैं तो ऐसा . . . निश्चय कर लें कि हम सत्यकी आराधना छोड़नेवाले नहीं हैं। सत्यके लिए दुनियामें सच्ची अहिंसा ही धर्म है। अहिंसा प्रेमका सागर है। उसका नाम जगतमें कोई ले सका ही नहीं। उस प्रेम-सागरसे हम सराबोर हो जायं तो हममें ऐसी उदारता आ सकती है कि उसमें सारी दुनियाको हम विलीन कर सकते हैं। यह बात कठिन अवश्य है; किन्तु है साध्य ही। इसीसे हमने प्रारम्भमें प्रार्थनामें सुना कि शंकर हों या विष्णु, ब्रह्मा हों या इन्द्र, बुद्ध हों या सिद्ध; मेरा सिर तो उसीके आगे झुकेगा जो रागद्वेष-रहित हो, जिसने कामको जीता हो, जो अहिंसा, प्रेमकी प्रतिमा हो।

जीवन-यज्ञ

शरीरको कष्ट देकर, मेहनत करके ही खानेका हमें अधिकार है। पारमार्थिक दृष्टिसे किया हुआ काम यज्ञ है। मजदूरी करके भी सेवाके हेतु जीना है। लम्पट होनेको या दुनियाके भोगोंका उपभोग करनेको जीवित रहना नहीं कहते हैं। कोई कसरतबाज नौजवान आठ घण्टे कसरत करे तो यह 'ब्रेड लेबर' नहीं है। तुम कसरत करो, शरीरको मजबूत बनाओ तो इसकी मैं अवगणना नहीं करता; परन्तु जो यज्ञ टाल्स्टायने कहा है, गीताके तीसरे अध्यायमें जो बताया गया है, वह यह नहीं है।

जीवन यज्ञकी खातिर है, सेवाके लिए है; जो ऐसा समझेगा वह भोगोंको कम करता जायगा। इस आदर्श साधनमें ही पुरुषार्थ है। भले

ही इस वस्तुको किसीने सर्वांशमें प्राप्त न किया हो, भले ही वह दूर ही दूर रहे, किन्तु फरहादने जिस तरह शीरींके लिए पत्थर फोड़े, उसी तरह हम भी पत्थर तोड़ें। हमारी यह शीरीं अहिंसा है। उसमें हमारा छोटा-सा स्वराज्य तो शामिल है ही, बल्कि उसमें तो सभी कुछ समाया है।[1]

सब से बड़ी शक्ति

टाल्स्टाय अपने युगके लिए अहिंसाके बड़े भारी प्रवर्तक थे। अहिंसाके विषयमें परिश्रमके लिए जितना साहित्य टाल्स्टायने लिखा है, जहां तक मैं जानता हूं, उतना हृदयस्पर्शी साहित्य दूसरे किसीने नहीं लिखा है। उससे भी आगे जाकर कहता हूं कि अहिंसाका सूक्ष्म दर्शन जितना टाल्स्टाय ने किया था, और उसका पालन करनेका जितना प्रयत्न टाल्स्टायने किया था, उतना प्रयत्न करनेवाला आज हिन्दुस्तानमें कोई नहीं। ऐसे किसी आदमीको मैं नहीं जानता।

टाल्स्टाय एक बड़ा योद्धा था, पर जब उसने देखा कि लड़ाई अच्छी चीज नहीं है तब लड़ाईको मिटा देनेकी कोशिश करते-करते वह मर गया। उसने कहा है कि दुनियामें सबसे बड़ी शक्ति लोकमत है और वह सत्य और अहिंसासे पैदा हो सकती है।[2]



१. हिन्दी नवजीवन, २०.९.'२८। २. प्रार्थना-प्रवचन, १०.६.'४७।

‘सर्वोदय’ में सब की भलाई

मैं १९०३ में दक्षिण अफ्रीकामें रहता था। १९०४ में जब मैं ३५ सालका था और रेलगाड़ीसे डरवन जा रहा था तव मैंने यह किताव पढ़ी थी। उसे पढ़कर उससे मेरे सारे वाहरी जीवनको वदलनेका मैंने निश्चय किया। उसके लिए दूसरे कोई शब्द नहीं। रस्किनके शब्दोंने मुझे मोह लिया।

सामान्यतः मनुष्य–अन्तरात्मासे रस्किनकी कितावने मुझे प्रभावित किया, क्योंकि मेरा हृदय ऐसे आध्यात्मिक भावोंसे भरा था।

‘जान रस्किनका जन्म ८ फरवरी १८१९ को हुआ था। सात वर्षकी आयुमें वालक रस्किनने भावी रस्किन वननेकी पूर्व तैयारी की। तव उन्होंने कवितामें चूहेकी कहानी लिखी थी। . . . कला और अर्थशास्त्र पर लिखनेके अलावा रस्किनने ‘सेंट जार्ज गील्ड’ नामक संस्थाकी स्थापना की और मई १८७१ में यह योजना प्रथम वार जाहिर की। उन्होंने उनके साथ सहमत होनेवालोंको तथा अपनी मिल्कियत एवं अपनी आयके १० प्रतिशत देनेको जो तैयार थे उनको एकत्र किया . . .। स्वयं ७००० पौंड देकर सुन्दर उदाहरण स्थापित किया। . . . सामान्य जनके कल्याण व सुखके लिए उचित हेतु जो उनके हृदयमें थे और जिनके लिए उन्होंने कार्य किया, तथा व्यक्तिके प्रति उनकी गहरी उदारताके कारण, जन्मसे धनवान होने पर भी तुलनात्मक रूपसे उनकी गरीवीमें मृत्यु हुई। उनमें दम्भका अंशमात्र भी नहीं था। उनका जीवन शब्दोंमें और कार्यरूपमें उतना ही सुन्दर था, जितने कि उनके कार्य व उपदेश।’[1]

---

१. श्री छगनलालजी गांधीके सौजन्यसे।

जिस तरह वेस्ट[1] से मेरी जान-पहचान निरामिषाहारी भोजन-गृहमें हुई, उसी तरह पोलक[2] के विषयमें हुआ। एक दिन जिस मेज पर मैं वैठा था उससे दूरकी दूसरी मेज पर एक नौजवान भोजन कर रहे थे। उन्होंने मिलनेकी इच्छासे मुझे अपने नामका कार्ड भेजा। मैंने उन्हें अपनी मेज पर आनेके लिए निमन्त्रित किया। वे आए:

"मैं 'क्रिटिक' का उप-सम्पादक हूं। महामारी-विपयक आपका पत्र पढ़नेके वाद मुझे आपसे मिलनेकी वड़ी इच्छा हुई। आज मुझे यह अवसर मिल रहा है।"

मि० पोलककी शुद्ध भावनासे मैं उनकी ओर आकर्पित हुआ। पहली ही रातमें हम एक-दूसरेको पहचानने लग गए और जीवन-विपयक अपने विचारोंमें हमें वहुत साम्य दिखाई पड़ा। उन्हें सादा जीवन पसन्द था। एक वार जिस वस्तुको उनकी वुद्धि कवूल कर लेती उस पर अमल करनेकी उनकी शक्ति मुझे आश्चर्यजनक मालूम हुई। उन्होंने अपने जीवनमें कई परिवर्तन तो एकदम कर लिये।

'इण्डियन ओपीनियन' का खर्च वढ़ता जाता था। वेस्टकी पहली ही रिपोर्ट मुझे चौंकानेवाली थी। उन्होंने लिखा: "आपने जैसा कहा था वैसा मुनाफा मैं इस काममें नहीं देखता। मुझे तो नुकसान ही नजर आता है। वहीखातोंकी अव्यवस्था है। उगाही वहुत है। पर वह विना सिर-पैरकी है। वहुतसे फेरफार करने होंगे। पर इस रिपोर्टसे आप घवराइए मत। मैं सारी वातोंको व्यवस्थित वनानेकी भरसक कोशिश करूंगा। मुनाफा नहीं है, इसके लिए मैं इस कामको छोड़ूंगा नहीं।"

यदि वेस्ट चाहते तो मुनाफा न होता देखकर काम छोड़ सकते थे और मैं उन्हें किसी तरहका दोप न दे सकता था। यही नहीं, वल्कि विना जांच-पड़ताल किए इसे मुनाफेवाला काम वतानेका दोप मुझ पर लगानेका उन्हें अधिकार था। इतना सव होने पर भी उन्होंने मुझे कभी कड़वी वात तक नहीं सुनाई। पर मैं मानता हूं कि इस नई जानकारीके कारण वेस्टकी

---

१. अल्वर्ट वेस्ट। २. हेनरी पोलक, वापूके दक्षिण अफ्रीकाके मित्र।

दृष्टिमें मेरी गिनती उन लोगोंमें हुई होगी जो जल्दीमें दूसरोंका विश्वास कर लेते हैं। मदनजीतकी धारणाके बारेमें पूछताछ किए बिना उनकी बात पर भरोसा करके मैंने वेस्टसे मुनाफेकी बात कही थी। मेरा ख्याल है कि सार्वजनिक काम करनेवालेको ऐसा विश्वास न रखकर वही बात कहनी चाहिए जिसकी उसने स्वयं जांच कर ली हो। सत्यके पुजारीको तो बहुत सावधानी रखनी चाहिए। पूरे विश्वासके बिना किसीके मन पर आवश्यकतासे अधिक प्रभाव डालना भी सत्यको लांछित करना है। मुझे यह कहते दुःख होता है कि इस वस्तुको जानते हुए भी जल्दीमें विश्वास करके काम हाथमें लेनेकी अपनी प्रकृतिको मैं पूरी तरह सुधार नहीं सका। इसमें मैं अपनी शक्तिसे अधिक काम करनेके लोभका दोष देखता हूं। इस लोभके कारण मुझे जितना बेचैन होना पड़ा है, उसकी अपेक्षा मेरे साथियोंको कहीं अधिक बेचैन होना पड़ा है।

वेस्टका पत्र आनेसे मैं नेटालके लिए रवाना हुआ। पोलक तो मेरी सब बातें जानने लगे ही थे। वे मुझे छोड़ने स्टेशन तक आए और यह कहकर कि "यह पुस्तक रास्तेमें पढ़ने योग्य है; इसे पढ़ जाइए, आपको पसन्द आएगी।" उन्होंने रस्किनकी **'अण्टु दिस लास्ट'** पुस्तक मेरे हाथमें रख दी।

सवेरा हुआ

इस पुस्तकको हाथमें लेनेके बाद मैं छोड़ ही न सका। इसने मुझे पकड़ लिया। जोहानिस्बर्गसे नेटालका रास्ता लगभग चौबीस घण्टोंका था। ट्रेन शामको डरबन पहुंचती थी। पहुंचनेके बाद मुझे सारी रात नींद न आई। मैंने पुस्तकमें सूचित विचारोंको अमलमें लानेका इरादा किया।

इससे पहले मैंने रस्किनकी एक भी पुस्तक नहीं पढ़ी थी। विद्याध्ययनके समयमें पाठ्यपुस्तकोंके बाहरकी मेरी पढ़ाई लगभग नहींके बराबर मानी जायगी। कर्मभूमिमें प्रवेश करनेके बाद समय बहुत कम बचता था। आज भी यही कहा जा सकता है। मेरा पुस्तकीय ज्ञान बहुत ही कम है। मैं मानता हूं कि इस अनायास अथवा बरबस पाले गए संयमसे मुझे कोई हानि नहीं हुई। बल्कि जो थोड़ी पुस्तकें मैं पढ़ गया हूं, कहा जा सकता

है कि उन्हें मैं ठीकसे हजम कर सका हूं। इन पुस्तकोंमें से जिसने मेरे जीवनमें तत्काल महत्त्वके रचनात्मक परिवर्तन कराए, वह 'अण्टु दिस लास्ट' ही कही जा सकती है। बादमें मैंने उसका गुजराती अनुवाद किया और वह 'सर्वोदय' के नामसे छपा।

मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मेरे अन्दर गहराईमें छिपी पड़ी थी, रस्किनके ग्रन्थरत्नमें मैंने उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब देखा। और इस कारण उसने मुझ पर अपना साम्राज्य जमाया और मुझसे उसमें दिये गये विचारों पर अमल करवाया। जो मनुष्य हृदयमें सोई हुई उत्तम भावनाओंको जाग्रत करनेकी शक्ति रखता है, वह कवि है। सब कवियोंका सब लोगों पर समान प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि सबके अन्दर सारी सद्भावनाएं समान मात्रामें नहीं होतीं।

मैं 'सर्वोदय' के सिद्धान्तोंको इस प्रकार समझा हूं:

१. सबकी भलाईमें हमारी भलाई निहित है।

२. वकील और नाई दोनोंके कामकी कीमत एकसी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविकाका अधिकार सबको एक समान है।

३. सादा मेहनत-मजदूरीका, किसानका जीवन ही सच्चा जीवन है।

पहली चीज मैं जानता था। दूसरीको मैं धुंधले रूपमें देखता था। तीसरीका मैंने कभी विचार ही नहीं किया था। 'सर्वोदय' ने मुझे दीयेकी तरह दिखा दिया कि पहली चीजमें दूसरी दोनों चीजें समाई हुई हैं। सवेरा हुआ और मैं इन सिद्धान्तोंका अमल करनेके प्रयत्नमें लगा।[१]



---

१. आत्मकथा, १९२७।

शान्तिपूर्ण सन्देश

'आनन्द लोके मंगला लोके
विराजो सत्य सुन्दर!'

—गुरुदेव

टैगोरकी क्या बात! उन्होंने क्या नहीं साधा? साहित्यका एक भी क्षेत्र उन्होंने छोड़ा है? और सबमें कमाल . . .। ऐसी अलौकिक शक्ति-वाला आदमी हमारे यहां तो है ही नहीं, लेकिन दुनियामें भी होगा या नहीं, इसमें मुझे शक है।

भारतवर्षमें ब्रह्मविद्याका उद्देश्य मुक्ति या मोक्ष है। और ब्रह्मविद्याने इस बात पर जोर दिया कि संसार आनन्दमय है और उस आनन्दको प्राप्त करना हमारा परम कर्तव्य है।

रवीन्द्रबाबूके हृदयमें भारतवर्षकी प्रतिष्ठाके लिए जो चिन्ता है उसके लिए हर हिन्दुस्तानीको अभिमान होना चाहिए। रवीन्द्रबाबूको अधिकतर चिन्ता विद्यार्थियोंके बारेमें है। जो विद्यार्थी सच्चे और अपने विश्वासके पक्के थे वे बिना कोई राष्ट्रीय स्कूल खुले हुए भी सरकारी स्कूलोंसे बाहर निकल आए। मेरा पक्का निश्चय है कि जिन विद्यार्थियोंने पहले-पहल स्कूल-कालेज छोड़ा है उन्होंने देशकी बहुत बड़ी सेवा की है।

लार्ड हार्डिजने डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरको एशियाके महाकविकी पदवी दी थी; पर अब रवीन्द्रबाबू न सिर्फ एशियाके बल्कि संसारभरके महाकवि गिने जा रहे हैं। उनके हाथसे भारतवर्षकी सबसे बड़ी सेवा यह हुई कि उन्होंने अपनी कविता द्वारा भारतवर्षका सन्देश संसारको सुनाया है। इसीसे रवीन्द्रबाबूको सच्चे हृदयसे इस बातकी चिन्ता है कि भारतवासी भारतमाताके नामसे कोई झूठा या सारहीन सन्देश संसारको न सुनावें।

अगर हिन्दुस्तान कभी उस स्वराज्यको प्राप्त करेगा जिसका स्वप्न रवीन्द्रबाबू देख रहे हैं, तो वह सिर्फ शान्तिपूर्ण असहयोग-आन्दोलनके द्वारा प्राप्त करेगा। वे चाहें तो संसारको अपना शान्तिपूर्ण सन्देश सुनावें और इस बातका भरोसा रखें कि हिन्दुस्तान अगर अपनी बातका धनी बना रहेगा तो अपने असहयोग द्वारा उनके सन्देशको अवश्य सच्चा साबित करेगा। रवीन्द्रबाबू जिस देशभक्तिके लिए उत्सुक हो रहे हैं, उसे अमली तौर पर पैदा करनेके लिए ही यह आन्दोलन किया गया है। हिन्दुस्तान जो यूरोपके पैरोंके नीचे पड़ा हुआ है, संसारको कोई आशा नहीं दिला सकता।

स्वतन्त्र और जाग्रत भारत ही दुःखी संसारको शान्ति और सुखका सन्देश सुना सकता है। असहयोग-आन्दोलन इसीलिए चलाया गया है कि जिससे भारतवर्ष एक ऊंचे स्थानसे अपना सन्देश संसारको सुना सके।'[1]

डा० रवीन्द्रनाथ अपने युगके न केवल सबसे बड़े कवि थे, बल्कि एक उत्कट राष्ट्रवादी और मानवताके पुजारी भी थे। शायद ही कोई ऐसी सार्वजनिक प्रवृत्ति होगी, जिस पर उनके शक्तिशाली व्यक्तित्वकी छाप न पड़ी हो। शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतनके रूपमें उन्होंने समस्त राष्ट्रके लिए ही नहीं, अपितु समस्त संसारके लिए विरासत छोड़ी है।[2]



१. यंग इंडिया, १.६.'२१; २. –७.८.'४१।

मेरे हृदय में निवास

'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्, यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।' जो करे, जो खाय, जो हवनमें होमे, जो तू दानमें दे, जो तप करे, हे कौन्तेय! वह सब मुझे अर्पण करके करना।

श्रीकृष्णने अर्जुनको (यह) जो उपदेश दिया था, वही उपदेश भारत-माताने महात्मा गोखलेको दिया था और उनके आचरणोंसे सूचित होता है कि उन्होंने उसका पालन भी किया था। यह सर्वमान्य वात है कि उन्होंने जो-जो किया, जिस-जिसका उपभोग किया, जो स्वार्थत्याग किया, जिस तपका आचरण किया, वह सभी कुछ उन्होंने भारतमाताके चरणोंमें अर्पण कर दिया।

केवल देश ही के लिए जन्म लेनेवाले इस महात्माका अपने देशवन्धुओं के प्रति क्या सन्देश है? 'भारत-सेवक-समिति' के जो सेवक महात्मा गोखलेके अन्तिम समयमें उनके पास उपस्थित थे, उन्हें उन्होंने निम्नलिखित वाक्य कहे थे: "तुम लोग मेरा जीवन-चरित्र लिखने न वैठना, मेरी मूर्ति वनवानेमें भी अपना समय मत लगाना। तुम लोग भारतके सच्चे सेवक होगे तो अपने सिद्धान्तके अनुसार आचरण करने अर्थात् भारतकी ही सेवा करनेमें अपनी आयु व्यतीत करोगे।"

१८९६ ई० के अवसरसे ही गोखलेका राजनैतिक जीवन मेरे लिए आदर्श-स्वरूप हुआ। उसी समयसे उन्होंने राजनैतिक गुरुके नाते मेरे हृदयमें निवास किया। उन्होंने सार्वजनिक सभा, पूनाकी त्रैमासिक पुस्तकका सम्पादन किया। उन्होंने फर्ग्यूसन-कालेजमें अध्यापन-कार्य करके उसे उन्नत दशाको पहुंचाया। उन्होंने वेल्वी-कमीशनके सामने गवाही देकर अपनी वास्तविक योग्यताका प्रमाण दिया। उनकी वुद्धिमत्ताकी छाप लार्ड कर्जन पर—उन

लार्ड कर्जन पर, जो अपने सामने किसीको कुछ न गिनते थे—बैठी; और वे उनसे शंकित रहने लगे। उन्होंने बड़े-बड़े काम करके मातृभूमिकी कीर्तिको उज्ज्वल किया।

राजनीति का धार्मिक स्वरूप

जब-जब धर्म-बन्धन ढीला पड़ता है तब-तब कोई एक विशेष प्रवृत्ति धर्म-जागृतिमें विशेष उपयोगी होती है। यह विशेष प्रवृत्ति उस समयकी परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। आजकल हम अपनेको राजनैतिक विषयोंमें अवनत देखते हैं। एकांगी दृष्टिसे विचार करनेसे जान पड़ेगा कि राजनैतिक सुधारसे ही अन्य बातोंमें हम उन्नति कर सकेंगे। यह बात एक प्रकारसे सच भी है। राजनैतिक स्थितिमें परिवर्तन होने ही से उन्नति न होगी। परिवर्तनके साधन यदि दूषित तथा घृणित हुए, तो उन्नतिके बदले और अवनति ही होनेकी अधिक सम्भावना है। जो परिवर्तन शुद्ध और पवित्र साधनोंसे किया जाता है वही हमें उच्च मार्ग पर ले जा सकता है। सार्वजनिक कामोंमें पड़ते ही गोखलेको इस तत्त्वका ज्ञान हो गया था और इसको उन्होंने कार्यमें भी परिणत किया।

यह बात सभी लोग जानते थे कि यह भव्य विचार उन्होंने अपनी भारत-सेवक-समिति तथा सम्पूर्ण जनसमुदायके सम्मुख रखा कि यदि राजनीतिको धार्मिक स्वरूप दिया जायगा, तो यही मोक्ष-मार्ग पर ले जानेवाली हो जायगी। उन्होंने साफ कह दिया कि जब तक हमारे राजनैतिक कार्योंको धर्म-भावकी सहायता न मिलेगी तब तक वे सूखे, रसहीन ही बने रहेंगे।

वर्तमान कालमें राजनैतिक संन्यासी ही संन्यासाश्रमकी गौरव-वृद्धि कर सकते हैं। अन्य गेरुवा वस्त्रधारी संन्यासी उनकी अपकीर्तिके ही कारण हैं। शुद्ध धर्म-मार्गमें चलनेवाले किसी भारतवासीका राजनैतिक कामोंसे परे रहना कठिन है। उसी बातको मैं दूसरी तरह अंगीकार किए बिना रह ही नहीं सकता। और आजकलकी राज्य-व्यवस्थाके जालमें हम इस तरह फंस गए हैं कि राजनीतिसे अलग रहते हुए लोकसेवा करना सर्वथा असम्भव ही है।

उनका जीवन-मंत्र

पूर्व समयमें जो किसान इस बातको जाने बिना भी कि जिस देशमें हम बसते हैं उसका अधिकारी कौन है, अपनी जीवनयात्रा भलीभांति निर्वाह कर लेता था, वह आज ऐसा नहीं कर सकता। ऐसी दशामें उसका धर्माचरण राजनैतिक परिस्थितिके अनुसार ही होना चाहिए। यदि हमारे साधु, ऋषि, मुनि, मौलवी और पादरी इस उच्च तत्त्वको स्वीकार कर लें, तो जहां देखिए वहां भारत-सेवक-समितियां ही दिखाई देने लगें और भारतमें धर्म-भाव इतना व्यापक हो जाय कि जो राजनैतिक चर्चा आज लोगोंको अरुचिकर मालूम होती है वही उन्हें पवित्र और प्रिय मालूम होने लगे। फिर पहले ही की तरह भारतवासी धार्मिक साम्राज्यका उपभोग करने लगें। भारतका बन्धन एक क्षणमें दूर हो जाय और वह स्थिति प्रत्यक्ष आंखोंके सामने आ जाय जिसका दर्शन एक प्राचीन कविने अपनी अमर वाणीमें इस प्रकार किया है: 'फौलादसे तलवार बनानेका नहीं बल्कि (हल की) फाल बनानेका काम लिया जायगा और सिंह और बकरे साथ-साथ विचरण करेंगे।'

ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्ति ही गुरुवर गोखलेका जीवन-मंत्र थी। यही उनका सन्देश है और मुझे विश्वास है कि शुद्ध और सरल मनसे विचार करने पर उनके भाषणोंके प्रत्येक शब्दमें यह मंत्र लक्षित होगा।

उनका धर्मभाव

हिन्दू और मुसलमानके प्रश्नको भी वे धार्मिक दृष्टिसे ही देखते थे। एक बार अपनेको हिन्दू कहनेवाला एक साधु उनके पास आया और कहने लगा कि मुसलमान नीच हैं और हिन्दू उच्च। महात्मा गोखलेको अपने जालमें फंसते न देख उसने उन्हें दोष देते हुए कहा कि तुममें हिन्दुत्वका तनिक भी अभिमान नहीं। महात्मा गोखलेने भौंहें चढ़ाकर हृदयभेदी स्वरमें उत्तर दिया—"यदि तुम जैसा कहते हो वैसा करने ही में हिन्दुत्व है तो मैं हिन्दू नहीं। तुम अपना रास्ता पकड़ो।" महात्मा गोखलेमें निर्भयताका गुण बहुत अधिक था। धर्मनिष्ठामें इस गुणका स्थान प्रायः सर्वोच्च है।

इस महान देशभक्तके चरित्रका कोई अंश यदि हमारे ग्रहण करने योग्य है तो वह उनका धर्म-भाव ही है। उसीका अनुकरण करना हमें उचित है।

गोखलेने एक महान अवसर पर लिखा था कि 'जो सेवा किसी व्यक्तिके कहनेसे हाथमें नहीं ली जाती, वह किसी दूसरेकी आज्ञासे त्यागी भी नहीं जा सकती।' इसलिए सबसे निरापद नियम तो यह है कि मनुष्यको हम उसके वर्तमान रूपमें ही ग्रहण करें, फिर चाहे जिस कुलमें वह पैदा हुआ हो और उसकी जाति या उसका रंग चाहे जो हो। अस्पृश्यता-निवारण के इस आन्दोलनमें हमें किसीकी सेवाकी, चाहे वह कितनी ही छोटी हो, अवगणना नहीं करनी चाहिए, जहां तक कि उसमें सेवाकी भावना है, न कि उद्धार या कृपाकी।

जनता के आराध्यदेव

हम लोगोंके समयमें ऐसा दूसरा कोई नहीं जिसका जनता पर लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जैसा प्रभाव हो। हजारों देशवासियोंकी उन पर जो भक्ति और श्रद्धा थी वह अपूर्व थी। यह अक्षरशः सत्य है कि वह जनताके आराध्यदेव थे, प्रतिमा थे। उनके वचन हजारों आदमियोंके लिए नियम और कानून-से थे। देशवासियों पर उनका इतना प्रभाव होनेका कारण क्या था? मैं समझता हूं, इस प्रश्नका उत्तर बड़ा ही सहज है। उनकी स्वदेश-भक्ति ही उनकी इन्द्रिय-वृत्ति थी। वह स्वदेश-प्रेमके सिवा दूसरा धर्म नहीं जानते थे।

जन्मसे ही वह प्रजासत्तावादी थे। बहुमतकी आज्ञा पर इतना अधिक विश्वास करते थे कि मुझे उससे भयभीत होना पड़ता था। पर यही वह बात है जिससे जनता पर उनका इतना अधिक प्रभाव था। स्वदेशके लिए वह जिस इच्छा-शक्तिसे काम लेते थे वह बड़ी ही प्रबल थी। उनका जीवन वह ग्रन्थ है जिसे खोलनेकी भी जरूरत नहीं, वह खुला हुआ ग्रन्थ है। उनका खान-पान और पहनावा बिलकुल साधारण था। उनका व्यक्तिगत

जीवन बड़ा ही निर्मल और बेदाग था। उन्होंने अपनी आश्चर्यजनक बुद्धिशक्तिको स्वदेशके लिए अर्पण कर दिया था। जितनी स्थिरता और दृढ़ताके साथ लोकमान्यने स्वराज्यकी शुभ वार्ताका उपदेश किया उतना और किसीने नहीं किया। इसी कारण स्वदेशवासी उन पर अटूट विश्वास रखते थे। साहसने कभी उनका साथ नहीं छोड़ा। उनकी आशावादिता अदम्य थी। उनको आशा थी कि जीवन-कालमें ही मैं सम्पूर्ण रूपसे स्वराज्य स्थापित हुआ देख सकूंगा।

भारतकी भावी सन्ततिके हृदयमें भी यही भाव बना रहेगा कि लोकमान्य नवीन भारतके बनानेवाले थे। वह तिलक महाराजका स्मरण यह कहकर करेंगे कि एक पुरुष था जो हमारे लिए जन्मा और हमारे लिए ही मरा। आओ, हम भारतके एकमात्र लोकमान्यका अविनाशी स्मारक अपने जीवनमें उनके साहस, उनकी सरलता, उनके आश्चर्यजनक उद्योग और उनकी स्वदेश-भक्तिको सीखकर बनावें।[१]

'हमारा जन्मसिद्ध अधिकार'

यह लोकमान्यकी जन्मभूमि है,[२] इसलिए यह तो मेरे लिए, भारतवर्षके सभी लोगोंके लिए, तीर्थभूमि है।

लोकमान्यके मंत्रको सिद्ध करनेके लिए लोकमान्यका अपनेसे अधिक अनुयायी मैं नहीं जानता। मेरे जैसे और अनुयायी होंगे, परन्तु स्वराज्य-मंत्रकी सिद्धिके लिए मुझसे अधिक कोई प्रयत्न करता है, यह मैं नहीं मानता। कारण, मैं समझ गया हूं कि **स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार ही नहीं, कर्तव्य भी है**; क्योंकि स्वराज्यसे हम जितने दूर हैं उतने ही मनुष्यत्वसे दूर हैं, हमारी सर्वशक्तिका आविर्भाव स्वराज्यके बिना असम्भव है।

मंत्र की साधना

मैं तो लोकमान्यके मंत्रका वारिस हूं और उनके दिए हुए वारसेमें वृद्धि न करूं तो मैं पुत्र कैसा? अपने पिताकी तरह मैं राजकोटकी दीवानगीरी

---

१. यंग इंडिया, ४.८.'२०।

२. रत्नागिरी, १. ३. '२७। महादेवभाईकी डायरी, भाग–८, पृ० १३४।

लेकर बैठ जाता तो उससे मैं क्या साध लेता? मैंने तो लोकमान्यके मंत्रका ध्यान धरा, साधना की, तपश्चर्या की और इस मंत्रकी शक्तिका विचार करने पर मैंने निश्चय किया कि उनके स्वदेशीका अर्थ खादी है। . . . मैं तो खादीके द्वारा धर्मकी रक्षा करना चाहता हूं। व्यासने वर्णन किया है कि विश्वामित्र जैसे ऋषिने भूखके कारण अभक्ष्य खाया और चोरी की थी। यह क्या है? भूखा मनुष्य क्या नहीं करेगा? . . . अन्तमें मनुष्य की शक्तिकी मर्यादा तो है ही। मुझसे होता है, उतना काम मैं करता हूं। मैं कोई शतावधानी नहीं, अष्टावधानी भी नहीं। मैं तो एक चीज सीधे ढंगसे कर सकूं तो ईश्वरकी दया है। मैं तो 'श्रेयान् स्वधर्मो विगुण:' (गीता, ३–३५) वाले गीताके उपदेशकी जड़ पकड़कर बैठा हुआ हूं। आपको यदि ऐसा लगे कि मेरे चरखेमें ग्राम-संगठन है, इसमें देशको जगानेकी शक्ति है, तो आपसे जितनी मदद दी जा सके उतनी दीजिए।

तिलक महाराजमें जो त्याग-वृत्ति थी, उसका सौवां-हजारवां भाग भी हम अपनेमें नहीं बता सकते। और उनकी सादगी? उनके कमरेमें न तो किसी तरहका फर्नीचर होता था, न कोई खास सजावट। अपरिचित आदमी तो खयाल भी नहीं कर सकता था कि वह किसी महान पुरुषका निवास-स्थान है। रग-रगमें भिदी हुई उनकी इस सादगीका हम अनुकरण करें तो कैसा हो? उनका धैर्य तो अद्भुत था ही। अपने कर्तव्यमें वह सदा अटल रहते और उसे कभी भूलते ही न थे। धर्मपत्नीकी मृत्युका संवाद पाने पर भी उनकी कलम चलती ही रही।[1]

卐

१. प्रार्थना-प्रवचन, १. ६. '४७।

गंगास्नान का सन्तोष

मैं सर फीरोजशाहसे मिला। मैं उनसे चकाचौंध होनेके लिए तैयार ही था। उनके नामके साथ लगे बड़े-बड़े विशेषण मैंने सुन रखे थे। 'बम्बईके शेर', 'बम्बईके बेताजके बादशाह' से मिलना था। परन्तु बादशाहने मुझे भयभीत नहीं किया। जिस प्रकार पिता अपने जवान पुत्रसे प्रेमके साथ मिलता है उसी प्रकार वह मुझसे मिले। उनके चेम्बरमें उनसे मिलना था। अनुयायियोंसे तो वह सदा घिरे हुए रहते ही थे। वाच्छा थे; कामा थे। उनसे मेरा परिचय कराया। वाच्छाका नाम मैंने सुना था। वह फीरोजशाहके दाहिने हाथ माने जाते थे। अंकशास्त्रीके नामसे वीरचन्द गांधीने मुझे उनका परिचय कराया था। उन्होंने कहा—"गांधी, हम फिर भी मिलेंगे।"

कुल दो ही मिनटमें यह सब हो गया। सर फीरोजशाहने मेरी बात सुन ली। न्यायमूर्ति रानडे और तैयबजीसे मिलनेकी भी बात मैंने कही। उन्होंने कहा—"गांधी, तुम्हारे कामके लिए मुझे एक सभा करनी होगी। तुम्हारे काममें जरूर मदद देना चाहिए।" मुंशीकी ओर देखकर सभाका दिन निश्चय करनेके लिए कहा। दिन तय हुआ और मुझे छुट्टी मिली। कहा—"सभाके एक दिन पहले मुझसे मिल लेना।" मैं निश्चिन्त होकर मनमें फूलता हुआ अपने घर गया। ऐसी सभाका मुझे यह पहला अनुभव था। . . .

सर फीरोजशाहको मेरा भाषण पसन्द आया। मुझे गंगा नहानेके बराबर सन्तोष हुआ।[१]

---

१. आत्मकथा, १९२७।

राष्ट्रप्रेम में विश्वप्रेम

. . . **देशबन्धु चित्तरंजन** दासका भाषण संक्षिप्त और दिलचस्प था। प्रत्येक वाक्यमें अहिंसाकी ध्वनि थी। उन्होंने उस भाषणमें साफ तौर पर बताया कि हिन्दुस्तानका उद्धार अहिंसामय संग्रामसे ही हो सकता है। इस भाषणके नीचे यदि कोई मुझसे सही करनेके लिए कहे तो मुझे शायद ही कोई वाक्य या शब्द बदलनेकी जरूरत हो। उनके भाषणके अनुसार ही प्रस्तावोंका होना स्वाभाविक था। इससे विषय-समितिमें खासा झगड़ा भी हुआ। अन्तमें देशबन्धुको त्यागपत्र देनेकी बात कहने तककी नौबत आ गई थी। आखिर उनके प्रभावकी जय हुई।[1]

उनके मनमें भारतकी भलाईके सिवा और कोई विचार न था। वह भारतकी स्वाधीनताका ही सपना देखते थे, उसीका विचार करते थे और उसीकी बातचीत करते थे, और कुछ नहीं। उन्होंने मुझसे अनेक बार कहा कि भारतकी स्वाधीनता अहिंसा और सत्य पर निर्भर है।

भारतके हिन्दुओं और मुसलमानोंको जानना चाहिए कि उनका हृदय हिन्दू और मुसलमानका भेद नहीं जानता था। उनकी अपनी मातृभूमिके प्रति यही प्रतिज्ञा थी—"मैं जीऊंगा तो स्वराज्यके लिए और मरूंगा तो स्वराज्यके लिए।"

चरखा भी उतना ही जरूरी

देशबन्धुने पटना और दार्जिलिंगमें चरखा कातनेकी कोशिश की थी। मैंने उनको चरखेका पाठ पढ़ाया था और उन्होंने मुझसे वादा किया था कि मैं कातना सीखनेकी कोशिश करूंगा और जब तक शरीर रहेगा तब तक

१. हिन्दी नवजीवन, १८.६.'२५।

कातूंगा। उन्होंने अपने दार्जिलिंगके निवास-स्थानको 'चरखा क्लब' बना दिया था। उनकी नेक पत्नीने वादा किया कि बीमारीकी हालत छोड़कर मैं रोज आध घण्टे तक स्वयं चरखा चलाऊंगी और उनकी लड़की, बहन और बहनकी लड़की तो बराबर ही चरखा कातती थी।

देशबन्धु मुझसे अक्सर कहा करते:

"मैं समझता हूं कि धारासभामें जाना जरूरी है, मगर चरखा कातना भी उतना ही जरूरी है। न सिर्फ जरूरी है, बल्कि बिना चरखेके धारासभा के कामको कारगर बनाना असम्भव है।"

उन्होंने जबसे खादीकी पोशाक पहनना शुरू किया तबसे मरनेके दिन तक पहनते आए।

प्रेम का धवलगिरि

राष्ट्र-धर्मका अर्थ है व्यापक प्रेम। वह विश्व-प्रेम नहीं है, पर उसका बड़ा अंश है। वह प्रेमका धवलगिरि नहीं, परन्तु प्रेमका दार्जिलिंग है। वहांसे धवलगिरिकी सुवर्ण-कान्ति दिखाई देती है और देखनेवाला मनमें सोचता है, यदि प्रेमका दार्जिलिंग इतना सुहावना है तो वह प्रेमका धवल-गिरि जो यहांसे मेरे सामने जगमगा रहा है कितना सुहावना होगा? राष्ट्र-प्रेम अन्तमें मनुष्यको विश्व-प्रेमके शिखर पर ले जाता है। इसीलिए लोग राष्ट्र-प्रेमीकी बलैयां लेते हैं।[१]

पदरज से पावन

मुझे इसमें कोई शक नहीं कि अगर हमारी विचित्र गुलामीकी स्थितिके कारण देशबन्धुकी सारी शक्ति राजनीतिमें ही नहीं लग जाती, तो वह धार्मिक सुधार और दरिद्र-नारायणकी सेवामें ही जी जानसे लग जाते। मगर देशबन्धुने तो गीताका यह पाठ पढ़ा था: 'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्'— यानी पर या परेके सु-आचरित धर्मसे अपना (स्व) धर्म ही गुणरहित होने पर भी अच्छा है।

१. हिन्दी नवजीवन, २.७.'२५।

कुछ लोग कहते हैं कि बंगालियोंमें बहुत अधिक प्रान्तीय संकीर्णता है। . . . मगर मैं तो कहता हूं कि अगर बंगाली लोग सारे हिन्दुस्तान पर कब्जा कर लेवें, तो संयुक्त प्रान्तके बूढ़े पंडितजीको और गुजरातके मुझ बूढ़े बनियेको कुछ आराम मिले। उस बंगालने जिसने रवीन्द्रनाथ, राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्दको पैदा किया है, जिसकी धूलि चैतन्यके पद-रजसे पावन है, गंगा और ब्रह्मपुत्रसे जिसकी भूमि पवित्र बनी है, उस बंगालमें अगर सारा हिन्दुस्तान भी मिल जाय तो क्या हानि?[१]

देशभक्ति में लीन

दादाभाई नौरोजीने भारतकी सेवाको एक धर्म बना डाला था। स्वराज्य शब्द उन्हींसे हमें मिला है। वह भारतके गरीबोंके मित्र थे। भारतकी दरिद्रताका दर्शन पहले-पहल दादाभाईने ही हमें कराया था। उनके तैयार किए अंकोंको आज तक कोई गलत साबित न कर पाया। दादाभाई हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई किसीमें भेदभाव न रखते थे। उनकी दृष्टिमें सब भारतकी सन्तान थे और इसलिए सब समान रूपसे उनकी सेवाके पात्र थे।

दादाभाईने भारतकी दरिद्रता देखी। उन्होंने सिखाया कि 'स्वराज्य' उसकी औषधि है। परन्तु स्वराज्य प्राप्त करनेकी कुंजी तलाश करनेका काम वह हमारे जिम्मे छोड़ गए। दादाभाईकी पूजाका मुख्य कारण दादाभाईकी देशभक्ति थी और उस भक्तिमें वह बड़े लीन हो गए थे। . . .

दादाभाईकी विद्यार्थियोंके प्रति चिन्ता और दादाभाईके प्रति विद्यार्थियोंके आदर-भावको देखकर मुझे बड़ा आनन्द होता।[२]

---

१. हिन्दी नवजीवन, १३.१.'२७। २. आत्मकथा, १९२७।

स्वराज्य-प्राप्ति का साधन – चरखा

हम जानते हैं कि स्वराज्य प्राप्त करनेका सबसे वड़ा साधन चरखा है। भारतकी दरिद्रताका कारण है भारतके किसानोंका सालमें छः या चार मास तक वेकार रहना। और यदि यह अनिवार्य वेकारी ऐच्छिक हो जाय अर्थात् काहिली हमारा स्वभाव वन वैठे, तो फिर इस देशकी मुक्तिका कोई ठिकाना नहीं। यही नहीं, वल्कि सर्वनाश इसका निश्चित भविष्य है। उस काहिलीको भगानेका एक ही उपाय है – चरखा। अतएव चरखा-कार्यको प्रोत्साहित करनेवाला हरेक कार्य दादाभाईके गुणोंका अनुकरण है। चरखेका अर्थ है खादी; चरखेका अर्थ है विदेशी कपड़ेका वहिष्कार; चरखेका अर्थ है गरीवोंके झोंपड़ोंमें ६० करोड़ रुपयोंका प्रवेश।"[१]

प्राणप्रिय कार्य

देशके सार्वजनिक जीवनको उनकी वहुत वड़ी देन है। उनका सवसे वड़ा कार्य वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय है। इस विश्वविद्यालयके प्रेमसे हमें हार्दिक प्रेम है। **महामना मालवीयजीने** उसके लिए जव कभी मेरी सेवाएं चाही हैं, मैंने दी हैं। मालवीयजी सफल व महान भिखारियोंमें से एक हैं। विश्वविद्यालयके लिए वे कितना चन्दा कर सकते हैं इसका अनुमान उस अपीलसे किया जा सकता है जो उन्होंने केवल पांच करोड़ रुपयेके लिए निकाली थी।

यह विश्वविद्यालय मालवीयजी महाराजका सवसे वड़ा और प्राणप्रिय कार्य है। उन्होंने हिन्दुस्तानकी वहुत-वहुत सेवाएं की हैं, इससे आज कोई इनकार नहीं कर सकता। लेकिन मेरा अपना खयाल है कि उनके महान कार्योंमें इस कार्यका महत्त्व सवसे ज्यादा रहेगा। पच्चीस साल पहले, जव इस विश्वविद्यालयकी नींव डाली गई थी, तव भी मालवीयजी महाराजके

१. हिन्दी नवजीवन, ६.८.'२५।

आग्रह और खिंचावसे मैं यहां आ पहुंचा था। उस समय तो मैं यह सोच भी न सकता था कि जहां बड़े-बड़े राजा-महाराजा और खुद वाइसराय आनेवाले हैं वहां मुझ जैसे फकीरकी क्या जरूरत हो सकती है। तब तो मैं 'महात्मा' भी नहीं बना था। उस समय भी मालवीयजी महाराजकी कृपादृष्टि मुझ पर थी। कहीं भी कोई सेवक हो वह उसे ढूंढ़ निकालते हैं और किसी न किसी तरह अपने पास खींच ही लाते हैं। यह उनका सदाका धन्धा है।

प्रतिज्ञा

लोग मालवीयजी महाराजकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। आज भी आपने उनकी कुछ प्रशंसा सुनी है। वह सब तरह उसके लायक हैं। मैं जानता हूं कि हिन्दू विश्वविद्यालयका कितना बड़ा विस्तार है। संसारमें मालवीयजीसे बढ़कर कोई भिक्षुक नहीं। जो काम उनके सामने आ जाता है उसके लिए —अपने लिए नहीं—उनकी भिक्षाकी झोलीका मुंह हमेशा खुला रहता है। वह हमेशा मांगा ही करते हैं और परमात्माकी भी उन पर बड़ी दया है कि जहां जाते हैं उन्हें पैसे मिल ही जाते हैं, तिस पर भी उनकी भूख कभी नहीं बुझती। उनका भिक्षा-पात्र सदा खाली रहता है। उन्होंने विश्व-विद्यालयके लिए एक करोड़ इकट्ठा करनेकी प्रतिज्ञा की थी। एक करोड़की जगह डेढ़ करोड़ दस लाख रुपया इकट्ठा हो गया, मगर उनका पेट नहीं भरा। अभी-अभी उन्होंने मुझसे कानमें कहा है कि आजके हमारे सभापति महाराजा साहब दरभंगाने उनको एक खासी बड़ी रकम दानमें और दी है।

सूरज का तेज

मैं जानता हूं कि मालवीयजी महाराज स्वयं किस तरह रहते हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि उनके जीवनका कोई पहलू मुझसे छिपा नहीं। उनकी सादगी, उनकी सरलता, उनकी पवित्रता और उनके प्रेमसे मैं भली-भांति परिचित हूं। उनके इन गुणोंमें से आप जितना कुछ ले सकें, जरूर लें। विद्यार्थियोंके लिए तो उनके जीवनकी बहुतेरी बातें सीखने लायक हैं। मगर मुझे डर है कि उन्होंने, जितना सीखना चाहिए, सीखा नहीं है। यह

आपका और हमारा दुर्भाग्य है। इसमें उनका कोई कसूर नहीं। धूपमें रह कर भी कोई सूरजका तेज न पा सके, तो उसमें सूरज बेचारेका क्या दोष? वह तो अपनी तरफसे सबको गर्मी पहुंचाता रहता है; पर अगर कोई उसे लेना ही न चाहे और ठण्डमें रहकर ठिठुरता फिरे तो सूरज भी उसके लिए क्या करे? मालवीयजी महाराजके इतने निकट रहकर भी अगर आप उनके जीवनसे सादगी, त्याग, देशभक्ति, उदारता और विश्वव्यापी प्रेम आदि सद्‌गुणोंका अपने जीवनमें अनुकरण न कर सकें तो कहिए, आपसे बढ़कर अभागा और कौन होगा?[१]

राजा हमेशा जियो!

अंग्रेजीमें एक कहावत है–"राजा गया, राजा हमेशा जियो!" ठीक यही भारत-भूषण मालवीयजी महाराजके लिए कहा जा सकता है–"मालवीयजी गये, मालवीयजी अमर हों!" मालवीयजी हिन्दुस्तानके लिए पैदा हुए और हिन्दुस्तानके लिए किए गए अपने कामोंमें जीते हैं। उनके काम बहुत हैं, बहुत बड़े हैं। उनमें सबसे बड़ा हिन्दू विश्वविद्यालय है।

यह तो हुई उनकी बाह्य प्रवृत्ति। उनका आन्तरिक जीवन विशुद्ध था। वह दयाके भण्डार थे। उनका शास्त्रीय ज्ञान बड़ा था। भागवत उनकी प्रिय पुस्तक थी। वह सजग कथाकार थे। उनकी स्मरण-शक्ति तेजस्विनी थी। जीवन शुद्ध था, सादा था।[२]



१. हरिजनसेवक, २१.१.'४२; २. – ८.१२.'४६।

चित्त बहुत प्रसन्न है

आखिरकार लाजपतराय, पंडित सन्तानम्, मलिक लालखान और डाक्टर गोपीचन्दके मुकदमेका फैसला हो गया। लालाजी तथा पंडित सन्तानम्को अठारह-अठारह महीनेकी कैदकी सजा दी गई। अभियुक्तोंके बहुतेरा विरोध करने पर भी सरकारने जबर्दस्ती उनके बचावके लिए एक वकील नियुक्त किया था। इस तमाशेके होते हुए भी उनको सजा दी जाना तो निश्चित ही था। सजाका हुक्म सुनाए जानेके जरा पहले ही लालाजीने मुझे एक पत्र लिखा। उसमें उनके चित्तकी प्रसन्नता टपकी पड़ती है। वह इस प्रकार है:

"आपने जो स्नेहपूर्ण टिप्पणी लिखी है तथा रामप्रसादजी और पुरुषोत्तमलालके द्वारा जो सन्देश भेजा उनके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। मैं बहुत मजेमें हूं। मैंने अन्न-त्याग नहीं किया था। मैं अपने आरामके लिए शोरोगुल मचानेके खिलाफ हूं। हम यहां इसलिए नहीं आए हैं कि किसी तरहकी सुविधायें या रियायतें चाहें। सच्चा हाल अखबारोंमें जाहिर हुआ है और आशा है कि वह अब आप तक पहुंच गया होगा। हम सब लोगोंका चित्त बहुत प्रसन्न है और मैं राष्ट्रीय पाठशालाओं तथा धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययनमें अपने समयका खूब सदुपयोग कर रहा हूं। अहमदाबादमें जो कुछ हुआ है उसके तथा सर्वपक्षीय परिषद् (राउंड टेबल कान्फ्रेन्स) के हालात मुझे मालूम हो गए हैं। हमारी तकलीफोंकी वजहसे हमारे सिद्धान्तोंके निर्णयमें बाधा न होने दीजियेगा। आप यकीन मानिये, हम अपने मनोरथको पूरा करनेके लिए जबतक चाहिए तबतक और जितनी चाहिए उतनी तकलीफें बरदाश्त करनेको हर तरहसे तैयार हैं। और अब जबकि उसीके लिए हम यहां आये हुए हैं तो हमें उसे आखिर तक निबाहना चाहिए।"[1]

---

१. हिन्दी नवजीवन, २५.१.'२२।

छह वर्ष वाद

"आपके तारके लिए आभार मानता हूं। लोगोंकी ओरसे पुलिसको हमला करनेके लिए कोई कारण नहीं मिला है। यह मामला इरादापूर्वक किया गया था। दो सख्त चोटें लगी हैं, मगर गम्भीर नहीं। एक वाईं छाती पर और एक कन्धे पर लगी है। दूसरी चोटें सत्यपाल, गोपीचन्द, हंसराज, मुहम्मद आलम आदि मित्रोंने संभाल लीं। दूसरों पर भी मार पड़ी है और चोटें लगी हैं; किन्तु चिन्ताका कोई कारण नहीं है।[1]

लाजपतराय"

संसार से प्रेम

जवतक हिन्दुस्तानके आकाशमें सूर्य चमकता है तवतक लालाजी मर नहीं सकते। लालाजी तो एक संस्था थे। अपनी जवानीके ही समयसे उन्होंने देशभक्तिको अपना धर्म वना लिया था और उनके देशप्रेममें संकीर्णता न थी। वह अपने देशसे इसलिए प्रेम करते थे कि वह संसारसे प्रेम करते थे। उनकी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयतासे भरपूर थी। इसलिए यूरोपियन लोगों पर भी उनका इतना अधिक प्रभाव था। यूरोप और अमरीकामें उनके अनेक मित्र थे। वे मित्र लालाजीको जानते थे और इसलिए उनसे प्रेम करते थे।

उनकी सेवाएं विविध थीं। वह वड़े ही उत्साही समाज और धर्म सुधारक थे। हममें से वहुतसे लोगोंके समान वह भी इसीलिए राजनीतिज्ञ वने थे कि समाज और धर्म-सुधारकी उनकी लगन राजनीतिमें शामिल हुए विना पूरी होती ही नहीं थी। सार्वजनिक जीवन शुरू करनेके कुछ ही समय वाद उन्होंने देख लिया था कि विदेशी गुलामीसे देशके स्वतन्त्र हुए विना हमारे इच्छित सुधारोंमें से वहुतसे नहीं हो सकेंगे।

उनके अनेक गुणोंमें से जो हमारे लिए आज अधिकसे अधिक मूल्यवान हो सकता है वह था उनका हरिजन-प्रेम, अस्पृश्यताके विरुद्ध उनका अखण्ड

---

१. साइमन कमीशनके लाहौर आने पर जो जुलूस उसके प्रति विरोध प्रगट करनेके लिए निकाला गया था, लालाजीने उसका नेतृत्व किया था। पुलिसने उस जुलूस पर लाठियां चलाई थीं, १९२७।

युद्ध। जिस समय हिन्दू भारतके हृदयमें हरिजनोंके प्रति अपने कर्तव्य-पालन करनेकी भावना उदय नहीं हुई थी उस समय उन्होंने यह युद्ध किया था। वह अपनी जोरदार भाषामें वरावर कहते थे कि अछूतपन हिन्दूधर्मका कलंक है। यदि लालाजीने इस युद्धके सिवाय और कुछ काम न भी किया होता, तो भी हिन्दुओंके दिलोंमें लालाजीकी पवित्र स्मृति सदा वनी रहती। परन्तु लालाजीके देशव्यापी गुणोंको, उनकी अखिल भारतीय सेवाओंको कौन नहीं जानता? उन्हें 'पंजाव केसरी'की उपाधि यूं ही तो नहीं मिली थी।[1]

उनका मानव-प्रेम

जव राजनीतिको लोग भूल जायेंगे, जव जनताका ध्यान खींच लेनेवाली अनेक क्षणभंगुर वस्तुएं भी विस्मृत हो जायंगी तव भी लालाजीके गम्भीर और विशाल हरिजन-प्रेमको और उनकी तज्जनित महान सेवाओंको करोड़ों हिन्दू ही नहीं वल्कि कोटिशः सवर्ण हिन्दू भी—और हिन्दू ही क्यों, समस्त भारतवर्ष वड़ी श्रद्धा-भक्तिसे याद किया करेगा। लालाजी एक महान मानव-प्रेमी थे और उनका वह मानव-प्रेम विश्वव्यापी था।

मैं आपको क्या बताऊं?

लाला लाजपतरायजी तो पंजावके शेर माने जाते थे। वह तो चले गए। मैं तो उनका मित्र था और उनके साथ मजाक भी करता था कि हिन्दीमें वोलना कव सीखोगे? वह कहते थे, यह नहीं होनेका। याद रखो, वह समाजी थे और यह भी याद रखो कि वह हवन इत्यादि भी करवाते थे। चूंकि मैं उन्हींके घरमें ठहरता था, इसलिए मैं यह सव देखता था। हवनमें तो संस्कृत ही काममें आती है और अजीव वात थी कि यह सव होते हुए भी वह थोड़ा-थोड़ा पढ़ तो लेते थे देवनागरीमें, लेकिन उनकी मादरी जवान उर्दू ही थी। वह कहते थे कि उर्दूमें तो मुझसे कहो तो घण्टों वोल लेता हूं और वोलते थे, और उर्दूके तो मैं आपको क्या वताऊं, वह वड़े भारी विद्वान थे और शीघ्रतासे लिख सकते थे। अंग्रेजीमें भी वह

---

१. ता० २७.१२.'२३ को एलोरमें लालाजीके चित्रके उद्घाटन-समयका भाषण।

घण्टों बोल सकते थे, लेकिन संस्कृतमय हिन्दी तो उनकी समझमें भी नहीं आती थी। जब मैं चुन-चुनकर अरबी-फारसीके शब्द लाता तब वह मेरी बात समझ सकते थे।[1]

स्वराज्य स्वप्न नहीं प्राण

मैंने देखा कि **मोतीलाल नेहरू** प्रतिक्षण स्वदेश-हितका ही चिन्तन करते थे। उनके लिए स्वराज्य स्वप्न नहीं, बल्कि प्राण था। स्वराज्यकी उन्हें सदा तृष्णा-पिपासा रही और वह दिन-दिन बढ़ती ही गई। . . . इतनी आशा मुझे अवश्य है कि स्वर्गीय पंडितजीके गुणोंका तुम लोग अनुकरण करोगे। . . . पंडित मोतीलालजीके सद्‌गुणोंमें एक गुण यह भी था कि वह अस्पृश्यताको नहीं मानते थे। वह मानों एक राजपुरुष थे। उन्होंने जो बेहद रुपया कमाया, उसे सत्कार्योंमें, स्वराज्यके कार्योंमें लुटाया। मुझे उनके ऐसे दृष्टान्त मालूम हैं कि उनके हृदयमें ऊंच-नीचका भाव था ही नहीं।[2]

उस जमानेमें हमने विदेशी कपड़ेके पहाड़ चिन-चिनकर जला दिए थे और कोई यह नहीं कहता था कि इससे राष्ट्रकी निधि बरबाद हो रही है। श्रीमती नायडूने अपनी पेरिसकी साड़ी जला दी थी और मोतीलालजीने भी अपने विलायती कपड़ोंमें दियासलाई लगा दी थी। उनके पास तो आलमारीकी आलमारियां विदेशी कपड़े थे। इसके बाद जब वह जेल गए तब उन्होंने मेरे पास एक खत भेजा था। आज वह खत मैं खोज नहीं सकता, पर उसमें लिखा था कि मैं सच्चा जीवन अब ही जी रहा हूं। आनन्द-भवनमें मेरे पास जो समृद्धि थी उससे मुझे यह सुख नहीं मिलता था।[3]

---

१. प्रार्थना-प्रवचन, १८.११.'४७।

२. हरिजनसेवक, २९.१२.'३३। ३. प्रार्थना-प्रवचन, २०.६.'४७।

और हम खूब हंसे !

सन् १९१७ की गोधराकी राजनैतिक परिषद्के अवसर पर विट्ठलभाई को मैंने हरिजन-वस्तीमें जो देखा था वह दृश्य कभी भूलनेका नहीं। राजनैतिक परिषद्के साथ-साथ गोधरामें दूसरे सम्मेलन भी किए जाते थे। उनमें एक सुधार-सम्मेलन भी वहां हुआ था। उसमें एक प्रस्ताव हरिजनोंके संबंध का था। मैंने परिषद्में कहा कि जहां उंगलियों पर गिनने लायक भी हरिजन मौजूद न हों वहां उस प्रस्तावको रखना व्यर्थ है। इससे यह अच्छा होगा कि रातको हरिजन-वस्तीमें जाकर वह प्रस्ताव पास किया जाय। सभाको यह बात पसन्द आ गई। हरिजन-वस्ती सवर्ण हिन्दुओंसे खूब भर गई। गोधराके इतिहासमें यह बात अपूर्व थी। तिल रखनेकी जगह न थी। अब्बाससाहब, उनकी बेगम साहिबा वगैरा तो थे ही, पर वहां मैंने एक दाढ़ीवाले भाईको कफनी, धोती और साधुओंका-सा कनटोप लगाये देखा। इस अजीब भेषमें विट्ठलभाईको इससे पहले कभी नहीं देखा था। इसलिए मैं उन्हें झटसे पहचान न सका। पर जब पहचाना तब तो हम एक-दूसरेसे लिपट गए और खूब हंसे। इस भेषमें विट्ठलभाईका एक नाटकीय स्वांग तो था ही; किन्तु इसके अन्दर उनकी सादगी और जन-साधारणमें घुलमिल जानेकी एक कला भी थी।

विट्ठलभाईकी वहांकी उपस्थितिसे मैंने उनके हरिजन-प्रेमका परिचय पाया। और फिर ज्यों-ज्यों उनका अधिक अनुभव मुझे होता गया, यह सिद्ध हुआ कि उनका उस दिन हरिजन-वस्तीमें जाना शुद्ध हार्दिक था। उनके अन्दर छुआछूतके लिए जरा भी जगह न थी। ऊंच-नीच-भाव उनमें नहीं था। उनका दृढ़ विश्वास था कि जो अधिकार या पद सवर्ण हिन्दुओं को प्राप्त हो सकें, वही सब हरिजनोंको भी मिलने चाहिए। उनका यह विश्वास ही नहीं, वर्ताव भी इसी प्रकारका था।[१]

---

१. हरिजनसेवक, १०.११.'३३।

हरिजनों के स्वजन

सबसे पहले सन् १९१५ में मैं **अब्बास तैयबजीसे** मिला था। जहां कहीं मैं गया, तैयबजी-परिवारका कोई न कोई स्त्री-पुरुष मुझसे आकर जरूर मिला। मैंने उन्हें हरिजनोंका मित्र ही नहीं, बल्कि उन्हींमें का एक पाया। अब्बास मियांने हरिजनोंके काममें उसी उत्साहसे भाग लिया जैसे कोई कट्टर हिन्दू ले सकता है। उनके इस्लाममें भूमण्डलके तमाम महान धर्मोंके लिए गुंजाइश थी। इसीलिए अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलनमें वह हिन्दुओंकी ही तरह उत्साहपूर्वक भाग लेते थे, और मैं जानता हूं कि जब तक वह जिन्दा रहे तब तक उनका यह उत्साह बराबर वैसा ही बना रहा।

वह मनुष्य-जातिके विरले सेवकोंमें से थे। भारत-सेवक भी वह इसीलिए थे कि वह मनुष्य-जातिके सेवक थे। ईश्वरको वह दरिद्रनारायणके रूपमें मानते थे। उनका विश्वास था कि परमेश्वर दीन-दुखियोंके बीच ही रहता है।

असल बात यह है कि उन्होंने आधे मनसे कभी कोई काम नहीं किया। अब्बास तैयबजी अपने मनमें कोई बात छिपाकर नहीं रखते थे। पंजाबकी पुकारका उन्होंने तत्क्षण जवाब दिया। उनकी आयुके और ऐसे व्यक्तिके लिए, जिसने जीवनमें कभी कोई मुसीबत नहीं झेली, जेलोंकी सख्तियां बर्दाश्त करना कोई मजाक नहीं था। लेकिन उनकी श्रद्धाने हरेक कठिनाईको विजय कर लिया। हंसते-हंसाते खेड़ाके किसानोंकी तरह ही सादा जीवन व्यतीत करते, उन्हींका-सा खाना खाते और सब मौसमोंमें उन्हींकी रद्दी-सद्दी गाड़ियोंमें सफर करनेकी क्षमतासे अनेक नौजवानोंको उनके सामने शर्मिन्दा होना पड़ता।[1]

---

१. हरिजनसेवक, २०.८.'३६।

वीरता के अवतार

कोई एक महीना हुआ कि स्वामी श्रद्धानन्दजी वहुत वीमार पड़े। डाक्टर अन्सारी उनकी चिकित्सा करते थे। जितने अनुरागसे उनसे सम्भव था, डाक्टर अन्सारी उनकी सेवा करते थे। इस महीनेके शुरूमें मेरे पूछने पर उनके पुत्र प्रो० इन्द्रने तार दिया था कि स्वामीजी अव अच्छे हैं और मेरा प्रेम और दुआ मांगते हैं। मैं उनके विना मांगे ही उन पर प्रेम और उनके लिए भगवानसे प्रार्थना करता ही रहता था।

स्वामीजी सुधारक थे। वे कर्मवीर थे, वचनवीर नहीं। जिसमें उनका विश्वास था, उसका वह पालन करते थे। उन विश्वासोंके लिए उन्हें कष्ट झेलने पड़े। वह वीरताके अवतार थे। भयके सामने उन्होंने कभी सिर नहीं झुकाया। वह योद्धा थे और योद्धा रोग-शय्या पर मरना नहीं चाहता। वह तो युद्धभूमिका मरण चाहता है।

भगवानको उन्हें शहीदकी मौत देनी थी। इसलिए जव वह वीमार ही थे तभी उस हत्यारेके हाथ मारे गए, जो इस्लाम पर धार्मिक चर्चाके नाम पर उनसे मिलना चाहता था, जो स्वामीजीकी प्रेरणासे आने दिया गया, जिसने प्यास मिटानेको पानी मांगनेके वहाने स्वामीजीके ईमानदार नौकर धर्मसिंहको पानी लेनेको वाहर हटा दिया और जिसने नौकरकी गैर-हाजिरीमें विस्तर पर पड़े हुए रोगीकी छातीमें दो प्राणघातक चोटें कीं। स्वामीजीके अन्तिम शब्दोंकी हमें खवर नहीं। लेकिन अगर मैं उन्हें कुछ भी पहचानता था तो मुझे विलकुल सन्देह नहीं है कि उन्होंने अपने परमात्मासे उसके लिए क्षमा-याचना की होगी, जो यह नहीं जानता था कि वह पाप कर रहा है। इसलिए गीताकी भाषामें वह योद्धा धन्य है जिसे ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है।

मृत्यु तो हमेशा ही धन्य होती है, मगर उस योद्धाके लिए तो और भी अधिक जो अपने धर्मके लिए यानी सत्यके लिए मरता है। मृत्यु कोई शैतान नहीं है। वह तो सबसे बड़ी मित्र है। वह हमें कष्टोंसे मुक्ति देती है। हमारी इच्छाके विरुद्ध भी हमें छुटकारा देती है। हमें बराबर ही नई आशाएं, नए रूप देती है। वह नींदके समान मीठी है; किन्तु तो भी किसी मित्रके मरने पर शोक करनेकी चाल है। अगर कोई शहीद मरता है तो यह रिवाज नहीं रहता। अतएव इस मृत्यु पर मैं शोक नहीं कर सकता। स्वामीजी और उनके सम्बन्धी ईर्ष्याके पात्र हैं; क्योंकि श्रद्धानन्दजी मर जाने पर भी अभी जीते हैं। उससे भी अधिक सच्चे रूपमें वह जीते हैं, जब वह हमारे बीच अपने विशाल शरीरको लेकर घूमा करते थे। ऐसी महिमामय मृत्यु पर जिस कुलमें उनका जन्म हुआ था, जिस जातिके वह थे, वे सभी धन्यताके पात्र हैं। वह वीर पुरुष थे। उन्होंने वीरगति पाई।[१]

श्रद्धानन्दजी और मेरे बीच कैसा सम्बन्ध था, वह तो आज मैं यहां नहीं कहूंगा। मेरे सामने वह अपने दिलकी बातें कहा करते थे। कोई छः महीने हुए जब वह आश्रममें आए थे। तब कहते थे, "मेरे पास धमकीके कितने पत्र आते हैं। लोग धमकी देते हैं कि तुम्हारी जान ले ली जायगी; पर मुझे उनकी कुछ परवा नहीं।" वह तो बहादुर आदमी थे। उनसे बढ़कर बहादुर आदमी मैंने संसारमें नहीं देखा। मरनेका उन्हें डर नहीं था; क्योंकि वह सच्चे आस्तिक, ईश्वरवादी आदमी थे।

मगर यह परम आस्तिक पुरुष उनका जवाब दिया करता था, "ईश्वर की रक्षाके सिवाय और किसकी रक्षाका मैं भरोसा करूं? उसकी आज्ञाके बिना एक तिनका भी नहीं हिलता। मैं जानता हूं कि जबतक वह मुझसे इस देहके द्वारा सेवा लेना चाहता है, मेरा बाल बांका नहीं हो सकता।"[२]

---

१. हिन्दी नवजीवन, २३.१२.'२६; २.–२.६.'२७।

अद्वितीय सखा

जिन्हें यह पता है कि जवाहरलालका और मेरा क्या सम्बन्ध है, वे यह भी जानते हैं कि वह सभापति हुए तो क्या और मैं हुआ तो क्या। विचार या बुद्धिके लिहाजसे हममें मतभेद भले ही हो, हमारे दिल तो एक हैं। दूसरे, यौवन-सुलभ उग्रताके रहते हुए भी, अपने कड़े अनुशासन और एकनिष्ठादि गुणोंके कारण वह एक ऐसे अद्वितीय सखा हैं जिनमें पूरा पूरा विश्वास किया जा सकता है।

वह अपने ढंगके बेजोड़ वीर हैं। देश-प्रेमके क्षेत्रमें उनसे बढ़कर और कौन है? कुछ लोग कहते हैं—"जवाहरलाल जल्दवाज और साहसी या गर्म-मिजाज हैं।" लेकिन इस समयके लिए तो ये बातें भी विशेष गुणरूप हैं। और जहां उनमें एक योद्धाके समान साहस और चपलता है, वहां एक राजनीतिज्ञकी-सी बुद्धिमत्ता, दूरन्देशी भी है। अनुशासनके वह पूरे भक्त हैं और ऐसे समय भी जब कि अनुशासनमें रहना अपमान-सा प्रतीत होता था उन्होंने उसका कट्टरताके साथ पालन करके बताया है। इसमें शक नहीं कि अपने आसपासवालोंके मुकाबले वह बहुत ज्यादा अतिवादी और गर्म दलके हैं। लेकिन साथ ही वह नम्र और व्यवहार-कुशल इतने हैं कि किसी बात पर इतना अधिक जोर नहीं देते कि वह अमान्य हो जाय। जवाहरलाल स्फटिकके समान शुद्ध हैं। उनकी सच्चाईके सम्बन्धमें तो शंका की गुंजाइश ही नहीं। वह एक निडर और निष्कलंक—निर्दोष सरदार हैं। राष्ट्र उनके हाथोंमें सुरक्षित है।[1]

तरुणों में तरुण

भावी संग्राममें जूझनेका काम नवयुवकों और नवयुवतियोंका है। और यह उचित ही है कि उनके नेतृत्वके लिए उन्हींमें से कोई खड़ा किया

१. हिन्दी नवजीवन, ३.१०.'२९।

प्रतिभाशाली साहस

सरोजिनी देवी आगामी वर्षके लिए महासभाकी सभानेत्री निर्वाचित हो गईं। आजकलके दिनोंमें जबकि स्त्री-जातिके अन्दर भारी जागृति हो रही है, स्वागतकारिणी समितिका भारतवर्षकी एक सर्वोत्तम प्रतिभाशालिनी पुत्रीको सभापति चुनना, भारतवर्षकी स्त्री-जातिका समुचित सम्मान करना है।[1]

सरोजिनी देवीका नाम उनके काव्योंसे पश्चिममें प्रसिद्ध है। जहां कहीं वे जाती हैं उनकी बात सुने बिना लोगोंका काम चलता ही नहीं है। दक्षिण अफ्रीकामें अपनी शक्तिका सम्पूर्ण उपयोग करके उन्होंने वहांके अंग्रेजोंका मन हरण किया था और सुन्दर विजय प्राप्त करके . . . हिन्दुस्तानका नाम चमकाया था। . . . उनका साहस भी उनकी दूसरी शक्तियोंके समान है। परदेश जानेमें न तो उन्हें किसीकी सहायताकी आवश्यकता रहती है और न किसी मंत्रीकी। जहां कहीं जाना हो वे अकेले निर्भयतासे विचर सकती हैं। उनकी ऐसी निर्भयता स्त्रियोंके लिए तो अनुकरणीय है ही, पुरुषोंको भी लजानेवाली है।[2]

अमेरिकासे भी कई-एक मित्र लिखते हैं कि सरोजिनी देवी अमेरिकामें बड़े महत्त्वका काम कर रही हैं और अपनी सारी ईश्वरदत्त प्रतिभाका इस देशके लिए पूरा-पूरा उपयोग कर रही हैं।

सरोजिनी देवीमें वस्तुस्थितिको पल भरमें समझ लेनेकी अपूर्व शक्ति है। वह अपनी मर्यादाको समझती हैं। अर्थशास्त्रियों और राजनैतिक नेताओंकी बारीकीमें वह कभी नहीं उतरतीं। वह अपना काम इतनी चतुराईसे कर लेती हैं कि सामनेवाला आदमी उन्हें कभी उलझनमें डाल ही नहीं सकता। उलटे जो कुछ उनसे ग्रहण करता है उसीमें इतना सन्तोष अनुभव करता है, मानो उसे सब कुछ मिल गया हो।[3]

---

१. हिन्दी नवजीवन, ८.१०.’२५; २.–२०.९.’२८; ३.–२१.२.’२९।

कुरबानी

श्री गणेशशंकर विद्यार्थीने कानपुरके दंगेमें अपनी जान कुरबान की थी। दोस्तोंने उनको रोका और कहा था, "दंगेकी जगह न जाइए। वहां लोग पागल हो गए हैं। वे आपको मार डालेंगे।" लेकिन गणेशशंकर विद्यार्थी इस तरह डरनेवाले नहीं थे। उन्हें यकीन था कि उनके जानेसे दंगा जरूर मिटेगा। वह वहां पहुंचे और दंगेके जोशमें पागल बने लोगोंके हाथों मारे गए। उनकी मौतके समाचार सुनकर मुझे खुशी ही हुई थी। यह सब मैं आपको भड़कानेके लिए नहीं कहता। मैं तो आपको यह समझाना चाहता हूं कि आप मरनेका पाठ सीख लें तो सब खैर ही खैर है। अगर गणेशशंकर विद्यार्थी, बसन्तराव और रज्जबअली जैसे कई नौजवान निकल पड़ें तो दंगे हमेशाके लिए मिट जायं।[१]

गणेशशंकर विद्यार्थीकी मृत्यु हम सबकी स्पर्धाके योग्य थी। उनका रक्त वह सीमेंट है जो अन्ततोगत्वा दोनों जातियोंको जोड़ेगा। कोई पैक्ट या समझौता हमारे दिलोंको नहीं जोड़ेगा; पर जैसी वीरता गणेशशंकर विद्यार्थीने बताई है, आखिरकार वह अवश्य ही पाषाणसे पाषाण हृदयोंको पिघलावेगी और पिघलाकर एक करेगी। पर यह जहर किसी तरह क्यों न हो, इतना गहरा फैल गया है कि गणेशशंकर विद्यार्थीके समान महान, आत्मत्यागी और नितान्त वीरपुरुषका रक्त भी, आज तो इसे धोकर बहाने के लिए शायद काफी न हो। अगर भविष्यमें ऐसा मौका फिर आवे तो इस भव्य बलिदानसे हम वैसा ही प्रयत्न करनेकी प्रेरणा प्राप्त करें।[२]

---

१. हरिजनसेवक, १४.७.'४६। २. हिन्दी नवजीवन, ९.४.'३१।

'सदाग्रह'

. . . मगनलाल गांधी तो अपना काम छोड़कर जो मेरे साथ आए, सो अब तक रह रहे हैं और अपने बुद्धि-बलसे, त्यागसे, शक्तिसे एवं अनन्य भक्ति-भावसे मेरे आन्तरिक प्रयोगोंमें मेरा साथ देते हैं एवं मेरे मूल साथियों में आज उनका स्थान सबमें प्रधान है। फिर एक स्वयं-शिक्षित कारीगरके रूपमें तो उनका स्थान मेरी दृष्टिमें अद्वितीय है।

जब सत्याग्रहका जन्म हुआ तब वे सबसे आगे थे। दक्षिण अफ्रीकाके युद्धका पूरा-पूरा मतलब समझानेवाला एक शब्द मैं ढूंढ़ रहा था। . . . उन्होंने बतलाया था कि इस युद्धको 'सदाग्रह' क्यों कहना चाहिए। इसी सदाग्रहको बदलकर मैंने 'सत्याग्रह' शब्द बनाया।

हिन्दुस्तान लौटने पर भी उन्हींकी बदौलत आश्रम, जिस संयम-नियमकी बुनियाद पर बना है, खुल सका था। . . .

वे मेरे हाथ थे, मेरे पैर थे और थे मेरी आंखें। . . . जिसे मैंने अपने सर्वस्वका वारिस चुना था वह अब नहीं रहा।[१] . . .

. . . अपने प्यारे पतिके लिए विलाप करती हुई उनकी विधवाकी सिसक मैं सुन रहा हूं। मगर वह क्या समझेगी कि उससे अधिक विधवा, अनाथ मैं ही हो गया हूं। . . .

. . . उसका जीवन मेरे लिए उत्साहदायक है, नैतिक नियमकी अमोघता और उच्चताका प्रत्यक्ष प्रदर्शन है।[२] . . .

---

१. आत्मकथा, पृ० १३४ से १३८, १९२७। २. हिन्दी नवजीवन, ६.४.'२८।



'पांचवें पुत्र'

तन्मयता

जमनालालजीने अपने लिए बड़ा क्षेत्र चुना है। वे किसी खास समाज में ही अपनेको डुबो नहीं दे सकते। उनके लिए सारा संसार परिवार है और सारे मनुष्य-समाजकी सेवाके द्वारा ही वे अपने समाजकी सेवा कर सकते हैं। . . .

विरोधको हम प्रेमके द्वारा ही जीत सकते हैं। असत्य पर, सत्यको छोड़कर नहीं, बल्कि सत्यके ही द्वारा विजय प्राप्त कर सकते हैं। एक दिन वह भी जरूर आवेगा जब कट्टर लोग भी इसे स्वीकार करेंगे कि जमनालालजीने अपने कामोंसे हिन्दू धर्मकी बड़ीसे बड़ी सेवा की है और इसके लिए आगे आनेवाली पीढ़ियां उन्हें असीसेंगी, धन्यवाद देंगी।[१]

भारत-भूषण पंडित मदनमोहन मालवीयजी सनातन धर्मके स्तम्भ हैं। उन्होंने वर्धामें श्री लक्ष्मीनारायण देवस्थानके बारेमें श्री जमनालालजीको निम्नलिखित पत्र लिखा :

"आपने अपने भगवद्भक्त पूर्वजोंके स्थापित किए भगवान लक्ष्मीनारायण मन्दिरमें ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल पर्यन्त सब श्रद्धालु भाइयोंको जगत्पिताकी पावन मूर्तिका दर्शन करनेकी स्वतन्त्रता दी और कूंवे बनवाये, उन पर सब जातिके भाइयोंको स्वच्छ बरतनसे पानी भरनेका अधिकार दिया, यह सुनकर मुझको बहुत सन्तोष हुआ। आपके ये दोनों काम शास्त्रके सर्वथा अनुकूल हैं और घटघटवासी विश्वात्मा इससे प्रसन्न होगा।"[२]

जमनालालजी एक बेजोड़ आदमी थे। वे सेवाके लिए ही पैदा हुए थे और उनकी सेवाका जन्म भी संकुचित क्षेत्रमें रहनेके लिए नहीं हुआ

१. हिन्दी नवजीवन, ६.१२.'२८; २.–२३.८.'२८।

था। कोई काम वे आधे दिलसे न करते थे। उनकी लगन आश्चर्यजनक थी। जिस गायका दूध वे पीते थे, उसकी सारी सार-संभाल वे खुद करने लगे थे। उनकी तन्मयता कुछ ऐसी ही थी। वे चाहते थे कि काम करते करते मरें। ईश्वरने उन्हें वैसी ही मृत्यु दी।[1]

असलमें वारिस तो उन्हें मेरा बनना चाहिए था; पर वह तो चले गए और जी गए। अब परीक्षा मेरी है। मैं एक नए रूपमें उनका वारिस बन गया हूं। यानी उनके सारेके सारे कामोंको मैंने अपने जिम्मे ले लिया है।[2]

सिद्धियों का धन

जमनालाल, मगनलाल और **महादेव** – इनमें से हरेक अपने-अपने क्षेत्रमें अनूठे थे। मेरा ख्याल है कि उनकी जगह दूसरे नहीं ले सकते। मगर मैं कहूंगा कि इन तीनोंमें से महादेव मुझमें पूरी तरह खो गये थे। मैं यह कह सकता हूं कि मुझसे अलग उनकी कोई हस्ती ही नहीं रह गई थी।

महादेवकी एक बड़ी खूबी यह थी कि जो काम उन्हें सौंपा जाता था, उसे करनेके लिए वह सदा तैयार रहते और बड़े उत्साहसे करते थे। इसी तरह वह एक अच्छे लेखक, अच्छे रसोइया और अच्छे कुली बन सके थे। अक्सर जो लोग मेरे साथ काम करनेके लिए आते हैं वह ऐसे ही बन जाते हैं।

वह मेरे बासवेल (जीवनी लिखनेवाले) बनना चाहते थे, फिर भी मुझसे पहले मरना चाहते थे। इससे बेहतर वह क्या कर सकते थे? सो वह तो चले गए और मुझे उनकी जीवनी लिखनेके लिए छोड़ गए। . . . बच्चे अपने मां-बापके पहले मरना चाहें तो इससे बढ़कर बेरहमी और क्या हो सकती है? यह उनका निरा स्वार्थ है। भले ही मैं दूसरोंको इस बातका

१. हरिजनसेवक, ८.२.'४८। २. मेरे समकालीन, भाग–७, पृष्ठ ३९४, १९६०।

यकीन न दिला सकूं, लेकिन यह मैं जरूर महसूस करता हूं कि मौत कभी वक्तसे पहले नहीं आती। दुनियामें अपना काम खत्म करनेसे पहले कोई मर्द या औरत कभी नहीं मरता। महादेवने पचास सालमें सौ बरसका काम कर डाला था। सो वह आराम करने चले गए, जिस पर उनका पूरा हक था।[1]

'एकला चलो रे!'

महादेवके मित्र और प्रशंसक उनकी पुण्यतिथि मनाते आ रहे हैं। इस दिन वह कुछ ऐसा करते हैं जो उन्हें प्रिय था। महादेव एक गुणी और प्रतिभावान व्यक्ति थे। उनको अनेक काम प्रिय थे। उनमें चरखेका स्थान सर्वोपरि था। वह कलाकार तो थे ही और एक कलाकारकी भांति नियमित रूपसे और बड़ी सुघड़ताके साथ चरखा चलाते थे। भले ही वह कितने भी थके होते अथवा उन्होंने कितना ही अधिक श्रम किया होता, किन्तु वह चरखा चलानेके लिए हमेशा समय निकाल लिया करते थे। चरखेसे उनको ताजगी मिलती थी।

वह अनेक सिद्धियोंके धनी थे। विशेषकर उनकी हस्तलिपि बहुत ही सुन्दर थी। इस कलाके वह उस्ताद थे। रामदास स्वामीने अपने एक काव्यमें सुन्दर हस्तलिपिकी चमकदार मोतियोंसे तुलना की है। महादेवभाई अपनी कलमसे जो अक्षर लिखते थे वह निर्दोष मोती ही होते थे।

उनका तीसरा गुण यह था कि वह भारतीय भाषाओंको बड़ा प्यार करते थे और इस गुणका हम सबको अनुकरण करना चाहिए। वह बहुभाषा-विद् थे। उन्होंने बंगला, मराठी और हिन्दीमें प्रवीणता हासिल की थी और उन्होंने उर्दू भी सीखी थी। जेलमें उन्होंने अपने साथी कैदी ख्वाजासाहब एम० ए० मजीदसे फारसी और अरबी भी सीखनेकी कोशिश की थी। आज जो रविबाबूका गीत गाया गया है, वह महादेवका एक प्रिय गीत था। उसका उन्होंने गुजरातीमें अनुवाद भी किया था : 'एकलो जाने रे!'[2]

---

१. हरिजनसेवक, १८.८.'४६; २.–८.९.'४६।

स्वराज्य की कुंजी

किशोरलाल मशरूवाला हमारे विरले कार्यकर्ताओंमें से एक हैं। काम करते हुए वे कभी थकते नहीं। वे अत्यन्त जागरूक रहते हैं। उनकी जाग्रत दृष्टिसे ब्योरेकी कोई भी बात नहीं छूट पाती है। वे जातीय, साम्प्रदायिक या प्रान्तीय अहंकार या दुराग्रहसे बिलकुल मुक्त हैं। वे एक स्वतन्त्र चिन्तक हैं। वे राजनीतिज्ञ नहीं, एक पैदाइशी समाज-सुधारक हैं। समस्त धर्मोंके विद्यार्थी हैं। उनमें धार्मिक कट्टरताका कोई चिह्न नहीं। वे जिम्मेदारी ओढ़ने और विज्ञापनबाजीसे भागते हैं। इतने पर भी कोई ऐसा आदमी न मिलेगा जो जिम्मेदारी ले लेने पर उसे उनकी अपेक्षा अधिक पूर्णताके साथ पूरा कर सके।[१]

भारतमें चुपचाप काम करनेवाले कार्यकर्ताओंमें से वे एक अत्यन्त विचारशील पुरुष हैं। हरएक शब्दको वे तौल-तौलकर लिखते और बोलते भी हैं।[२]

किशोरलालभाईको तो मैं खो चुका। उन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूं। वे बीमारीके कारण पैरोल पर छूटनेको राजी होनेके बजाय जेलमें मरना पसन्द करेंगे। नागपुर जेलमें ही महादेवकी तरह उनके चले जानेकी खबर सुनूं तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। कौन जाने ऐसे लोगोंके बलिदान ही शायद स्वराज्यकी कुंजी साबित हों।[३]

---

१. हरिजनसेवक, २.३.'४०। २. हिन्दी नवजीवन, २६.५.'२७।

३. बा और बापूकी शीतल छायामें, पृ० १४२; आगाखां महल, पूनासे ८.१२.'४३ को लिखे बापूजीके पत्रसे।

धन्यता

अगर मैं अपनी पत्नीके वारेमें अपने प्रेम और अपनी भावनाका वर्णन कर सकूं, तो हिन्दू धर्मके वारेमें अपने प्रेम और अपनी भावनाओंको मैं प्रकट कर सकता हूं। दुनियाकी दूसरी किसी भी स्त्रीके मुकावलेमें मेरी पत्नी मुझ पर ज्यादा असर डालती है।

हम असाधारण दम्पती थे। १९०६ में एक-दूसरेकी स्वीकृतिसे और अनजानी आजमाइशके वाद हमने आत्म-संयमके नियमको निश्चित रूपसे स्वीकार किया था। इसके परिणामस्वरूप हमारी गांठ पहलेसे कहीं ज्यादा मजवूत बनी और मुझे उससे वहुत आनन्द हुआ। हम दो भिन्न व्यक्ति नहीं रह गए। मेरी वैसी कोई इच्छा नहीं थी, तो भी उन्होंने मुझमें लीन होना पसन्द किया। फलतः वह सचमुच ही मेरी अर्धांगिनी वनीं। वह हमेशासे वहुत दृढ़ इच्छाशक्तिवाली स्त्री थीं, जिनको अपनी नवविवाहित दशामें मैं भूलसे हठीली माना करता था; लेकिन अपनी दृढ़ इच्छाशक्तिके कारण वह अनजाने ही अहिंसक असहयोगकी कलाके आचरणमें मेरी गुरु वन गईं।[१]

मैं जानता था कि वहनोंको जेल भेजनेका काम वहुत खतरनाक था। फिनिक्समें रहनेवाली अधिकतर वहनें मेरी रिश्तेदार थीं। वे सिर्फ मेरे लिहाजके कारण ही जेल जानेका विचार करें और फिर ऐन मौके पर घवराकर या जेलमें जानेके वाद उकताकर माफी वगैरा मांग लें तो मुझे सदमा पहुंचे। साथ ही, इसकी वजहसे लड़ाईके एकदम कमजोर पड़ जानेका डर भी था। मैंने तय किया था कि मैं अपनी पत्नीको तो हरगिज नहीं ललचाऊंगा। वे इनकार भी नहीं कर सकती थीं और 'हां' कह दें तो उस 'हां'की भी कितनी कीमत की जाय, सो मैं कह नहीं सकता था।

---

१. हमारी वा, पृ० ९ और २३।

ऐसे जोखिमके काममें स्त्री खुद होकर जो निश्चय करे, पुरुषको वही मान लेना चाहिए और कुछ भी न करे तो पतिको उसके बारेमें तनिक भी दुःखी नहीं होना चाहिए, इतना मैं समझता था। इसलिए मैंने उनके साथ कुछ भी बात न करनेका इरादा रखा था। दूसरी बहनोंसे मैंने चर्चा की। वे जेलयात्राके लिए तैयार हुईं। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि वे हर तरहका दुःख सहकर भी अपनी जेलयात्रा पूरी करेंगी। मेरी पत्नीने भी इन सब बातोंका सार जान लिया और मुझसे कहा:

"मुझसे इस बातकी चर्चा आप नहीं करते, इसका मुझे दुःख है। मुझमें ऐसी क्या खामी है कि मैं जेल नहीं जा सकती? मुझे भी उसी रास्ते जाना है, जिस रास्ते जानेकी सलाह आप इन बहनोंको दे रहे हैं।"

मैंने कहा: "मैं तुम्हें दुःख पहुंचा ही नहीं सकता। इसमें अविश्वास की भी कोई बात नहीं। मुझे तो तुम्हारे जानेसे खुशी ही होगी। लेकिन तुम मेरे कहने पर गई हो, इसका तो आभास तक मुझे अच्छा नहीं लगेगा। ऐसे काम सबको अपनी-अपनी हिम्मतसे ही करने चाहिए। मैं कहूं और मेरी बात रखनेके लिए तुम सहज ही चली जाओ, और बादमें अदालतके सामने खड़ी होते ही कांप उठो और हार जाओ या जेलके दुःखसे ऊब उठो, तो इसे मैं अपना दोष तो नहीं मानूंगा, लेकिन सोचो कि मेरे क्या हाल होंगे? मैं तुमको किस तरह रख सकूंगा और दुनियाके सामने किस तरह खड़ा रह सकूंगा? बस, इस भयके कारण ही मैंने तुम्हें ललचाया नहीं।"

मुझे जवाब मिला: "मैं हारकर छूट आऊं तो मुझे मत रखना। मेरे बच्चे तक सह सकें, आप सब सहन कर सकें और अकेली मैं ही न सह सकूं, ऐसा आप सोचते कैसे हैं? मुझे इस लड़ाईमें शामिल होना ही होगा।"

मैंने जवाब दिया: "तो मुझे तुमको शामिल करना ही होगा। मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो। मेरे स्वभावसे भी तुम परिचित हो। अब भी विचार करना हो तो जरूर कर लेना और भलीभांति सोचनेके बाद यदि तुम्हें यह लगे कि शामिल नहीं होना है, तो समझना कि तुम इसके लिए आजाद हो। साथ ही, यह भी समझ लो कि निश्चय बदलनेमें अभी शरमकी कोई बात नहीं है।"

मुझे जवाब मिला: "मुझे विचार-विचार कुछ नहीं करना है। मेरा निश्चय ही है।"[१]

सत्याग्रहियों में एक

१९०६ में जब मैंने उसे राजनीतिके क्षेत्रमें दाखिल किया तब उस (आन्दोलन) का अधिक विशाल और विशेष रूपसे योजित 'सत्याग्रह' नाम पड़ा। दक्षिण अफ्रीकामें जब हिन्दुस्तानियोंकी जेलयात्रा शुरू हुई तब श्रीमती कस्तूरबा भी सत्याग्रहियोंमें एक थीं। मेरे मुकाबिले शारीरिक पीड़ा उनको ज्यादा हुई।

वह कई बार जेल जा चुकी थीं, फिर भी इस बारके इस कैदखानेमें, जिसमें सभी तरहकी सहूलियतें मौजूद थीं, उनको अच्छा नहीं लगा। दूसरे बहुतोंके साथ मेरी और फिर तुरन्त ही उनकी जो गिरफ्तारी हुई, उससे उन्हें जोरका आघात पहुंचा और उनका मन खट्टा हो गया। वह मेरी गिरफ्तारीके लिए बिलकुल तैयार नहीं थीं। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया था कि सरकारको मेरी अहिंसा पर भरोसा है और जब तक मैं खुद गिरफ्तार होना न चाहूं वह मुझे पकड़ेगी नहीं। . . .

बा अनपढ़ थीं, फिर भी कई सालोंसे उन्हें इस बातकी पूरी-पूरी आजादी थी कि वह जो करना चाहें, करें। क्या दक्षिण अफ्रीकामें और क्या हिन्दुस्तानमें, जब-जब भी वह किसी लड़ाईमें शरीक हुई हैं, अपने-आप, अपनी आन्तरिक भावनासे ही। . . . उनमें एक गुण बहुत बड़ा था। हरेक हिन्दू पत्नीमें वह कमोवेश होता ही है। इच्छासे या अनिच्छासे अथवा जाने-अनजाने भी वह मेरे पदचिह्नों पर चलनेमें धन्यता अनुभव करती थीं।[२] . . .

मुझे बाका सबसे बड़ा गुण उसकी हिम्मत और बहादुरी मालूम होती है।[३] . . .

---

१. दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास, १९२५।

२. हमारी बा, १८.३.'४५। ३. महादेवभाईकी डायरी, भाग–१, १.३.'३२।

अपूर्व आश्वासन

"तेरी बीमारीका तार वेस्टने दिया। मेरा हृदय व्यथित है। मैं रोता हूं। परन्तु तेरी सेवाके लिए वहां आ नहीं सकता। सत्याग्रहकी लड़ाईमें मैंने अपना सब कुछ अर्पण कर दिया है। कुछ भी बचा नहीं रखा है। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूं कि अगर तुझे इस दुनियासे कहीं चल बसना पड़े तो मैं तेरे पीछे दूसरी पत्नी नहीं करूंगा। ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखकर तू प्राण विसर्जन करना।"[१]

जगदम्बा स्वरूप

कस्तूरबाने हंसकर कहा : "अच्छा, यह तो आपने मुझे मरनेका ही रास्ता बताया है। मुझे लगता है कि जेल जाऊंगी तो मैं जरूर मर जाऊंगी।"

गांधीजी सिर हिलाते हुए खिलखिला उठे और बोले : "हां, हां, मैं भी यही चाहता हूं। तुम जेलमें अगर मर जाओगी, तो मैं तुम्हें जगदम्बाके समान पूजूंगा।"[२] . . .

महाप्रयाण

मैं बाके बिना जीवनकी कल्पना नहीं कर सकता। मेरी हमेशासे यही इच्छा थी कि बाकी जीवन-लीला मेरी गोदमें समाप्त हो, ताकि मुझे इस बातकी चिन्ता न रहे कि मेरे जानेके बाद उसका क्या होगा। वह मेरा अविभाज्य अंग थी। उसकी मृत्युने ऐसा रिक्त स्थान छोड़ दिया है, जो कभी नहीं भर सकता। . . . देखो, भगवान्‌ने कैसे मेरे विश्वासकी परीक्षा ली? . . . बा महाप्रयाण कर गई। उसने मेरी गोदमें ही प्राण विसर्जन किए। इससे अच्छा और क्या होता?[३] . . .

---

१. 'सन् १९०८के दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहकी लड़ाईमें बापूजी जेल गए थे। उस समय ४० वर्षकी उम्रमें बापूने बाके नाम यह पत्र लिखा था।' जमनालालजी बजाजकी दैनन्दिनी, मोरांसागर, (कर्णावतोंका बाग), जयपुर जेल, १८.२.'३९।

२. द. अ. स. इतिहास, परिशिष्ट-२। ३. कस्तूरबा, पृ० १३९, १९४४।

भारतका आत्मबल

मैं भारतकी भक्ति करता हूं, क्योंकि मेरे पास जो कुछ भी है वह सब उसीका दिया हुआ है। मेरा पूरा विश्वास है कि उसके पास सारी दुनियाके लिए एक सन्देश है। मेरा जीवन अहिंसा-धर्मके पालन द्वारा भारतकी सेवाके लिए समर्पित है। . . . मैं भारतको स्वतन्त्र और बलवान बना हुआ देखना चाहता हूं, क्योंकि मैं चाहता हूं कि वह दुनियाके भलेके लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी पवित्र आहुति दे सके। भारतकी स्वतन्त्रतासे शान्ति और युद्धके बारेमें दुनियाकी दृष्टिमें जड़मूलसे क्रान्ति हो जायगी। . . . मैं दृढ़तापूर्वक विश्वास करता हूं कि यदि भारतने दुःख और तपस्याकी आगमें से गुजरने जितना धीरज दिखाया और अपनी सभ्यता पर—जो अपूर्ण होते हुए भी अभी तक कालके प्रभावको झेल सकी है—किसी भी दिशासे कोई अनुचित आक्रमण न होने दिया, तो वह दुनियाकी शान्ति और ठोस प्रगतिमें स्थायी योगदान कर सकती है।

मेरा विश्वास है कि भारतका ध्येय दूसरे देशोंके ध्येयसे कुछ अलग है। भारतमें ऐसी योग्यता है कि वह धर्मक्षेत्रमें दुनियामें सबसे बड़ा हो सकता है। भारतने आत्मशुद्धिके लिए स्वेच्छापूर्वक जैसा प्रयत्न किया है, उसका दुनियामें कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। भारतको फौलादके हथियारोंकी उतनी आवश्यकता नहीं है; वह दैवी हथियारोंसे लड़ा है और आज भी वह उन्हींसे लड़ सकता है। दूसरे देश पशुबलके पुजारी रहे हैं। यूरोपमें अभी जो भयंकर युद्ध चल रहा है वह इस सत्यका एक प्रभावशाली उदाहरण है। भारत अपने आत्मबलसे सबको जीत सकता है। इतिहास इस सचाईके चाहे जितने प्रमाण दे सकता है कि पशुबल आत्मबलकी तुलनामें कुछ नहीं है।

कवियोंने इस बलकी विजयके गीत गाए हैं और ऋषियोंने इस विषयमें अपने अनुभवोंका वर्णन करके उसकी पुष्टि की है।[1]

१. मेरे सपनोंका भारत, १९६०।

सत्येन लभ्यस् तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।।
सत्यमेव जयते नाऽनृतम् सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्।।

(मुंडकोपनिषद्, ३.१.५, ६)

'वन्दे मातरम्'

यह चाहे जहांसे लिया गया हो और चाहे जैसे और जब लिखा गया हो, बंग-भंग (आन्दोलन) के दिनोंमें बंगालके हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिए यह संघर्षका एक बहुत प्रभावपूर्ण नारा बन गया था। यह एक साम्राज्य-विरोधी सिंहनाद था। किशोरावस्थामें ही, जबकि मैं 'आनन्द मठ' से या उसके अमर रचयिता बंकिम तकसे परिचित न था, मैं 'वन्दे मातरम्' पर न्यौछावर हो चुका था। जब मैंने पहली बार इसका गायन सुना, तो मैं उस पर मुग्ध हो गया। मैं इसे पवित्र राष्ट्रीय भावनाका प्रतीक मानता हूं।[1]

. . . यह कोटि-कोटि जनोंके हृदयमें बसा है। इसे सुनकर बंगाल और उसके बाहर लाखों-करोड़ों जनोंके हृदयमें देशप्रेमका सागर हिलोरें लेने लगता है। बंगालने हमें अनेक स्पृहणीय वस्तुएं दी हैं; उनमें से एक है उसके उत्कृष्ट पद, जो समूचे राष्ट्रके लिए एक देन हैं।[2]

---

१. रचना : बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, सन् १८८२। राजनीतिक मंच से यह गीत सबसे पहले सन् १८९६ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके कलकत्ता-अधिवेशनमें गाया गया।

२. हरिजन, १.७.'३९।

वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्
शस्यश्यामलां मातरम्, वन्दे मातरम्!
शुभ्र ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम्,
फुल्लकुसुमित-द्रुमदलशोभिनीम्,
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्, वन्दे मातरम्!

त्रिशंकोटिकण्ठ कलकल-निनाद कराले
द्वित्रिशकोटिर्भुजधृतखरकरवाले,
के वोले मा तुमि अवले
बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीम्
रिपुदल-वारिणीं मातरम्, वन्दे मातरम्!

तुमि विद्या तुमि धर्म्म, तुमि हृदि तुमि मर्म्म,
त्वं हि प्राणाः शरीरे।
बाहुते तुमि मा शक्ति, हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारि प्रतिमा गड़ि मन्दिरे मन्दिरे। मातरम्, वन्दे मातरम्!

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी
कमला कमल-दल-विहारिणी
वाणी विद्यादायिनी नमामि त्वाम्
नमामि कलां अमलां अतुलाम्
सुजलां सुफलां मातरम्, वन्दे मातरम्!

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्
धरणीं भरणीं मातरम्, वन्दे मातरम्!!



जिस तरह देशप्रेमका धर्म हमें आज यह सिखाता है कि व्यक्तिको परिवारके लिए, परिवारको ग्रामके लिए, ग्रामको जनपदके लिए और जनपदको प्रदेशके लिए मरना सीखना चाहिये, उसी तरह किसी देशको स्वतन्त्र इसलिए होना चाहिये कि वह आवश्यकता होने पर संसारके कल्याणके लिए अपना बलिदान दे सके। इसलिए राष्ट्रवादकी मेरी कल्पना यह है कि मेरा देश इसलिए स्वाधीन हो कि प्रयोजन उपस्थित होने पर सारा ही देश मानव-जातिकी प्राणरक्षाके लिए स्वेच्छापूर्वक मृत्युका आलिंगन करे। उसमें जातिद्वेषके लिए कोई स्थान नहीं है। मेरी कामना है कि हमारा राष्ट्रप्रेम ऐसा ही हो।

महात्मा गांधी

जय जन्मभूमि

जय जन्मभूमि

अनंत सौंदर्य और शक्ति

यजुर्वेदमें राष्ट्र-वंदनाके रूपमें निम्न प्रेरक भाव व्यक्त हुए हैं, जो राष्ट्र के सर्वतोमुखी उत्थानकी मंगल कामनासे परिपूर्ण हैं। मंत्रका भावार्थ है:

"हे अतुलित शक्तिमान ब्रह्म! हमारे राष्ट्रमें ओजस्वी, चरम सत्य के ज्ञाता उत्पन्न हों। हमारे राष्ट्रमें गायें खूब दूध देनेवाली, बैल पराक्रमी और दुर्वह बोझ वहन करनेवाले तथा स्त्रियां स्नेहमयी कुललक्ष्मी हों। राज्यमें सभीको जीवन-वृत्ति मिले। हमारे तरुण नवयुवक गण आकर्षक और तेजस्वी हों। हमारे राष्ट्रमें हमेशा समय पर बादल बरसें। हमारी औषधियां और फसलें खूब फूलती-फलती हों। हमारे राष्ट्रमें जो कुछ पहले न था वह सभी वैभव सुलभ हो और जो वैभव है वह सदा सुरक्षित रहे।"[१]

यही हमारी आंतरिक मनोकामना है और यही हमारे जीवनका ध्येय, धारणा एवं स्वराज्यकी साधनाका सच्चा स्वरूप है। आगेके मंत्रमें हमारी राष्ट्रीय जनताकी महिमाका अद्भुत वर्णन इस प्रकार किया गया है:

"ओ ऽ ऽ ऽ हरेभरे खेतोंमें, गोपद-चिह्नित कुटीरोंमें, सुन्दर लोकगीतों से गूंजते हुए गांवोंमें वास करनेवाली, सूर्यकी किरणोंके समान निर्मल और उज्ज्वल आनन्द बिखेरनेवाली महान जनता! राष्ट्रकी सच्ची शक्ति तुम्हीं हो। यह लहलहाती फसलें तुम्हारे ही श्रमका वरदान हैं। दुनियाको जीवन की देन देनेवाली तुम्हीं हो। जिस प्रकार मधुर जलवाली नदियां एक-दूसरेसे मिल कर अनन्त विस्तारवाली हो जाती हैं, उसी प्रकार तुम्हारे सभी वर्ग आपसमें घुलमिल कर अनन्त सौंदर्य और शक्तिको प्राप्त हों।"

---

१. यजुर्वेद, २२, २२।

भारतीय जनताका यह कैसा अपूर्व उद्‌बोधन है! निसर्ग देवताके अनंत सौंदर्य और शक्तिकी प्राप्तिके लिए ये कैसी अप्रतिम वैदिक मंगल कामनाएं हैं! ऐसे अनन्तकी सीमाओंसे घिरे हुए क्षितिजोंके गोलाकारमें हम आवद्ध हैं। उसी वंधनसे मुक्त होनेके लिए युग-युगोंसे युगद्रष्टाओंने हमें अनेक दिव्य दर्शन प्रदान किये हैं। वैदिक परम्परा और धर्मशास्त्रको माननेवाले ऐसे देशका इतिहास अनन्त कालसे प्रवाहित हो रहा है। उसमें नवयुग-निर्माता युग-पुरुष हमेशा अवतरित हुए हैं, जिन्होंने देश, काल और परिस्थितिके अनुरूप राष्ट्रोन्नतिकी दिशामें अग्रसर होनेके लिए हमारा सही दिग्दर्शन और तदनुकूल पथदर्शन सदा किया है। हम बड़े भाग्यशाली हैं कि ऐसी दिव्य प्रेरणाएं हमें अखण्ड रूपमें मिलती रही हैं।

‘जीवनका ध्येय और आधार’

‘दुर्लभं भारते जन्म मानुषं तत्र दुर्लभम्’। ऐसे अपने देशमें उन्नीसवीं सदीके आरम्भमें राजा राममोहन राय हुए, जिनके लिए गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरने लिखा है: “इन्होंने अपनी प्रवल प्रतिभा और अटल आत्मवलसे हमें भारतकी विकास-यात्राके नवयुगमें मानव-सहयोगकी दीक्षा दी।” उनके वाद लोकमान्य तिलक महाराजने ‘स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है’ यह मंत्र हमें दिया और श्री गोपाल कृष्ण गोखलेने राष्ट्रसेवकोंके सामने ‘धर्मभावना पर आधारित स्वदेश-सेवाका श्रेष्ठ आदर्श’ उपस्थित किया।

भारतीय राष्ट्र सदियोंसे विदेशियोंका गुलाम वना हुआ था। उसका आरम्भ भारतवर्षमें एक व्यापारी कम्पनीके पदार्पणसे हुआ था। उस पराधीनतासे देशको वंधन-मुक्त करनेके लिए अखिल भारतीय महासभा (कांग्रेस) ने, १८८५ में जवसे उसकी स्थापना हुई, सतत प्रयत्न किया है। उसी सिलसिलेमें वीसवीं सदीका आरम्भ भारतके उत्थानके लिए वड़ा शुभ सिद्ध हुआ ऐसा कहा जा सकता है।

ई० स० १९०१ में कांग्रेसका १७ वां अधिवेशन कलकत्तामें हुआ। उसमें गांधीजीने दक्षिण अफ्रीकाके लाखों प्रवासी भारतीयोंकी ओरसे प्रार्थीके रूपमें दक्षिण अफ्रीकाके संवंधमें एक प्रस्ताव पेश किया था।

१९०२ में भारत-मंत्रीसे एक शिष्ट-मंडल मिला, लेकिन कोई नतीजा न निकला। इसी वर्ष कांग्रेस अधिवेशनमें सैनिक व्ययको भारत और इंग्लैंडके बीच विभक्त करनेकी मांग रखी गई।

१९०३ में कांग्रेसने अपने प्रस्तावोंको दुहराया और वह अधिक आगे बढ़ी।

१९०४ में कांग्रेसका २० वां अधिवेशन बम्बईमें हुआ। उसमें यह मांग की गई थी कि भारतीय प्रवासियोंके साथ भी न्याय और समान व्यवहार किया जाय।

१९०५ में कांग्रेसका २१ वां अधिवेशन पुण्यनगरी काशीमें हुआ। उसमें वंग-भंग पर विधिवत् विरोध प्रदर्शित किया गया। वोअर-युद्ध शासनमें से १५ सदस्योंकी स्थाई समिति बनाई गई। शर्तबन्दी, कुलीप्रथा तथा अन्य प्रतिबंधक कानूनोंको हटानेकी मांग भी कांग्रेसने की।

१९०६ में नवीन जागृति और नया तेज देश भरमें इस छोरसे उस छोर तक फैल गया। ऐसे उत्साहपूर्ण वातावरणमें कांग्रेसका २२ वां अधिवेशन कलकत्तामें श्री दादाभाई नौरोजीकी अध्यक्षतामें हुआ। उन्होंने कांग्रेसका उद्देश्य एक शब्दमें रख दिया:

"हमारा सारा आशय केवल एक शब्दमें स्व-शासन या स्वराज्यमें आ जाता है। इंग्लैंड या उपनिवेशोंमें जो शासन-प्रणाली है, वही भारतमें जारी की जाय।" और इसके लिए अनेक सुधारोंकी मांग की गई।

करीब उसी समय दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रहका श्रीगणेश करनेवाले गांधीजी 'कर्मवीर' कहलाये। जोहानिस्वर्गमें ५ मई, १९०६ को अपनी जन्मदात्री स्वर्गीया माता पुतलीबाईकी गहरी व्यथाभरी स्मृतिमें गांधीजीको मानो हिन्दमाताका साक्षात्कार ही हुआ। उनके प्रेरक हृदयोद्गार स्वयंसिद्ध काव्य-स्वरूप हैं। उनमें से ये हैं मौलिक सप्त सूक्तिकाएं:

"हिन्द एक ही है।

हिन्द करोड़ों हिन्दियोंकी प्यारी माता है।

हिन्द खुदाई बगीचा है और उसमें सुन्दर रम्य झरने और पवित्र नदियां एवं महान तपस्वी पुरुषोंके द्वारा पवित्र किए हुए वन-उपवन हैं।

हिन्दकी रज मेरे लिए पवित्र कण है।

हिन्दके हरेक पुत्रके लिए एक ही देश, एक ही प्रेम, एक ही हेतु एवं एक ही कार्य है।

हिन्द जैसा दूसरा कुछ भी इस दुनियामें मुझे प्यारा नहीं है।

हिन्दी भाइयोंकी सेवा यही मेरी जिन्दगीका ध्येय है और यही मेरा आधार है।

इसलिए हे माता! मुझे (तू) तेरी सेवामें सहायक हो।"[१]

सत्य-सनेही मोहनदास गांधीके हृदयमें भारतमाताके प्रति ऐसा दिव्य अनन्य प्रेम सुदूर देश अफ्रीकामें रहते हुए ही प्रगट हो गया था।

भविष्यमें भारत आनेके वाद स्वेच्छासे गांधीजीके पांचवें पुत्र वननेवाले जमनालालजी भी स्वतन्त्र रूपसे करीव उसी समय भारतकी सेवामें आर्कषित हुए, यह भी दैवी संयोग ही प्रतीत होता है।

प्रेमाकर्षण

भारतीय स्वातंत्र्य-साधनाकी दृष्टिसे सन् १९०६ की कलकत्ता कांग्रेस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हुई थी। उसीमें स्वराज्यकी चतुःसूत्री प्रकट हुई, जो आगे चलकर स्वराज्य-साधनाकी सुदृढ़ वुनियाद वन गई। आज भी स्वतंत्र भारतमें जनतन्त्रकी प्रतिष्ठाका यही मूलाधार है। इस वातको अपनी कुशल व्यापारी वुद्धि और दूरदृष्टिसे जमनालालजीने वहुत पहले ही अच्छी तरह समझ लिया था। उनके ऐसे विचार और संस्कार, जीवनमें प्रत्यक्ष आचार-रूपमें क्रमशः कैसे प्रवाहित हुए और आगे महात्मा गांधीजीकी जीवन-धारामें उनका संगम किस तरहसे होता गया, इस सम्वन्धमें श्रद्धेय हरिभाऊजी उपाध्यायने लिखा है:

"सन् १९०६ में जमनालालजी कलकत्ता कांग्रेसमें शरीक हुए तभी से उनके राजनैतिक जीवनका श्रीगणेश समझना चाहिए। कांग्रेसका यह अधिवेशन भारतके पितामह दादाभाई नौरोजीकी अध्यक्षतामें हुआ। उन्होंने

---

१. पूज्य श्री छगनलालभाई गांधीके सौजन्यसे प्राप्त प्रतिलिपिके आधार पर।

कांग्रेसका उद्देश्य इस तरहसे रखा कि हमारा सारा आशय केवल एक शब्द में 'स्वशासन या स्वराज्य' में आ जाता है।

"इसी अधिवेशनमें विदेशी मालके वहिष्कारका प्रश्न उठाया गया, जिस पर लोकमान्य तिलकने कहा था–'हमारे अन्दर स्वावलम्बन, दृढ़ निश्चय और त्यागकी भावना होनी चाहिए।' उससे स्वदेशीका विचार, विदेशी वस्त्रका वहिष्कार और स्वराज्यकी आवाज वुलन्द हुई। इसमें राष्ट्रीय शिक्षा और जोड़ दी गई। स्वराज्यकी यह चतुःसूत्री उन दिनों वहुत प्रसिद्ध हो गई थी।

"इन नेताओंके राजनैतिक विचारों और आन्दोलनोंका जमनालालजी पर असर पड़ता जा रहा था। महापुरुषोंके सम्पर्कमें आने, उनके जीवनका वारीकीसे अध्ययन और निरीक्षण करने और उसमें से अपने कामकी वातें ढूंढ़ लेनेका उन्हें वड़ा शौक था। इस धुनमें औरोंकी तरह सर जगदीशचन्द्र वसु जैसे प्रख्यात नेता और महान पुरुषोंसे उनकी प्रगाढ़ता हो गई थी। सर वसु तो जमनालालजीको उनकी इच्छानुसार पुत्रकी तरह मानते थे। १४ सितम्वर १९१९ के अपने एक पत्रमें श्री वसु जमनालालजीको लिखते हैं: 'तुम मेरे लिए पुत्र-समान हो और मुझे यह सोचते हुए वड़ी प्रसन्नता होती है कि मेरे पास कम-से-कम एक व्यक्ति तो ऐसा है, जो अपने देशकी अधिक-से-अधिक सेवा करनेमें समर्थ होगा।'

"उस समयके राजनैतिक वातावरणके सम्वन्धमें खुद जमनालालजीने कहा है: 'सन् १९१५ के अन्तमें कांग्रेसका अधिवेशन वम्वईमें हुआ था। लार्ड सिनहा अध्यक्ष थे। महात्माजी भी पधारे थे। मारवाड़ी विद्यालयमें उनके ठहरनेकी व्यवस्था थी। उनके प्रवन्धकर्ताओंमें मैं भी एक था। श्री वाच्छा, सुरेन्द्रनाथ वनर्जी, लार्ड सिनहा, भूपेन्द्रनाथ वसु आदि नेताओंके यहां महात्माजीके साथ जानेका मुझे पूरा स्मरण है। वातचीत तथा वाद-विवाद अंग्रेजीमें होता था। मुझे पूरी तरह अंग्रेजी नहीं आती थी, पर भावार्थ समझ लेता था। महात्माजीकी अपनी वातको शांतिके साथ समझाना, विरोधका जवाव कुशलताके साथ देना, किसी भी परिस्थितिमें निराश न होना आदि वातें मैं उस मिलापके सिलसिलेमें देख सका। अन्तमें देखा कि कांग्रेसकी विषय-निर्वाचिनी समितिमें, जिसका मैं भी सभासद था, महात्माजीने

अपना प्रस्ताव वहुत थोड़े परिवर्तनके पश्चात् स्वीकार करवा लिया। महात्माजीके व्यक्तिगत जीवनका मुझ पर असर हो रहा था। उनकी कार्य-कुशलताने भी मुझे पकड़ा और उसी समयसे मैं महात्माजीको भारतके भावी नेता और कांग्रेसके सर्वेसर्वा होनेवालेके रूपमें देखने लगा।'

"सन् १९१६ का कांग्रेस अधिवेशन लखनऊमें हुआ। लोकमान्य तिलक उसमें सम्मिलित हुए थे। बाद सन् १९१७ में कांग्रेसका अधिवेशन कलकत्तामें हुआ। श्रीमती बिसेन्ट उसकी अध्यक्षा थीं। महात्माजी चम्पारनसे कलकत्ता पहुंचे थे। उनके तमाम साथियों सहित उनके ठहरनेका प्रवन्ध जमनालालजीने ही किया था। महात्माजीका इस तरह सदल-वल जमनालालजीका मेहमान वनना क्या था, जमनालालजीका उनके प्रेमाकर्षणसे खिंच कर राजनीतिक मैदानमें कूद पड़ना था। तवसे वापूका पथ-प्रदर्शन उन्हें मिलने लगा।"[1]

स्वयंसेवक

लोकमान्य तिलकका परिचय जमनालालजीको वर्षों पहले ही प्राप्त हो चुका था। अव होमरूलके रूपमें स्वराज्य-प्राप्तिके विचारोंका प्रचार करते हुए लोकमान्य तिलकके वर्धा आनेकी सम्भावना पैदा हुई। इससे जमनालालजीके आनन्द और उत्साहकी सीमा नहीं रही। सन् १९१८ में नागपुर और विदर्भ की यात्रा करते हुए तिलक महाराज वर्धा होते हुए चांदा और वणीकी ओर गए थे। लौटकर १८ फरवरीको उनका वर्धामें कार्यक्रम था। तव श्री लक्ष्मीनारायण मंदिरके समीप जमनालालजीके निवासस्थान वच्छराज-भवनके सामनेके विशाल प्रांगणमें वड़ी भारी सभा हुई थी। गांधी-चौक जनसमूहसे ठसाठस भर गया था। ऊपरकी छत नगरकी अधिकांश महा-राष्ट्रीय सुसंस्कृत महिलाओंसे सुशोभित हो रही थी। उन्हींके वीच माता जानकीदेवी भी जाकर खड़ी हो गईं और अपने घूंघटको जरा ऊंचा उठाकर दूरवीनकी तरह अंगुलियोंका छल्ला-सा वनाकर देर तक तिलक महाराजका दर्शन करतीं रहीं। उनकी लाल डौलदार पैठणी पगड़ीका मां को अव भी स्पष्ट स्मरण है। उस सभाका आंखों देखा वर्णन वे आज भी वड़े मान-आदर और कौतूहलभरी भावनासे सुनाया करती हैं।

---

१. श्रेयार्थी जमनालालजी – लेखक: हरिभाऊ उपाध्याय।

उस दिन गांधी-चौकमें तिलक महाराजका जोरदार भाषण हुआ। बाद वर्धाके श्री अत्रे वकीलने उन्हें ५१ हजार रुपयोंकी थैली अर्पण की। लोकमान्य तिलक महाराजके प्रति जमनालालजीको शुरूसे ही गहरी श्रद्धा और भक्तिभाव रहा था। 'केसरी' फंडमें उन्होंने अपने हाथखर्चके लिए प्राप्त पैसोंसे संकलित पूरे १०० रुपयोंका जो सर्वस्व दान बचपनमें दिया था, वह बादके हजारों-लाखोंसे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण और मौलिक था।

लोकमान्य तिलक महाराजके विदर्भ और नागपुरके इस प्रवासमें 'ब्यूरोक्रेसी' के लिए एक बहुत ही समर्पक शब्द मिला 'नौकरशाही'। इसी प्रवासमें 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, मैं उसे अवश्य प्राप्त करूंगा।' यह मंत्र भी अधिक स्पष्ट रूपसे प्रकाशमें आया। फिर २४ मार्चको बम्बईमें श्री सयाजीराव गायकवाड़की अध्यक्षतामें अस्पृश्यता-निवारण परिषद्‌में वे शामिल हुए। अस्पृश्योंके प्रति जो अनन्य आत्म-भावना उन्होंने प्रकट की वह अद्वितीय थी।

उसी दिन दोपहरको तीन बजे मारवाड़ी विद्यालयमें राजा गोविन्दलालजी पित्तीकी अध्यक्षतामें केवल मारवाड़ी समाजकी ही एक सभा हुई और स्वराज्य-कोशमें १५ हजारकी थैली अर्पित की गई। उस सभाका पूरा प्रबंध जमनालालजी बजाजने स्वयंसेवक होकर किया था।[1] यह उनके जीवनका एक विशेष प्रेरक पहलू है।

शिक्षा-मंडल

सामाजिक संस्कार-साधनाकी दृष्टिसे शिक्षाके प्रति मारवाड़ी समाजकी उदासीनता दूर करने और विद्योपार्जनमें रुचि उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे श्री जमनालालजी और श्री कृष्णदास जाजूने वर्धामें १ फरवरी, १९१० को 'मारवाड़ी विद्यार्थी-गृह कमेटी' नामकी संस्था स्थापित की थी। त्याग और सेवाके आदर्शोंसे युक्त 'मारवाड़ी शिक्षा-मंडल' की स्थापना १८ नवम्बर, १९१४ को वर्धामें हुई। वह छोटा-सा पौधा अब एक विशाल वटवृक्षके रूपमें परिणत हो रहा है।

---

१. श्री न० चि० केलकर लिखित 'लोकमान्य तिलक चरित्र' के आधार पर।

'मारवाड़ी शिक्षा-मंडल' के छात्रावासकी जमीन सरकारसे मिली थी। जव जमनालालजी रायवहादुर थे तव जनकार्यके लिए वह मांगी गई थी। पर वादमें जव उसमें सरकारी परीक्षायें नहीं चलाई गईं तो सरकारकी तरफसे कहा गया कि जमीन छोड़ दो और अपने मकानात उठा लो। तव सव ट्रस्टी और श्री जाजूजी भी चिन्तामें पड़ गये। लेकिन जमनालालजी अड़ गये। उन्होंने कहा : "जो कुछ करें, करने दो। उनको अखरता हो तो मकानात भी उन्हींको उठाकर ले जाने दो। देखें, मनुष्य कहां तक नुकसान पहुंचा सकता है? एक-एक ईंट उखाड़ कर फेंक दें, तो भी मुझे इस वातका दुःख नहीं होगा। वैसे भी देखें कि सरकार कहां तक जुल्म करती है।" इस तरह डटे रहनेसे आखिर तक परीक्षाएं वैसे ही चालू रहीं और मकानोंका भी कुछ नहीं बिगड़ा।

राष्ट्रप्रेमी, सदाचारी और सेवा-परायण आदर्श शिक्षकोंके द्वारा दी गई संस्कारयुक्त शिक्षा ही राष्ट्रोत्थानका सवल साधन है, यह भावना जमनालालजीके मनमें शुरूसे ही जम गई थी। समाज-सुधारके लिए वचपनसे ही हर वालक या हर व्यक्तिके जीवनका उत्तम विकास होना अत्यन्त आवश्यक है। व्यक्तियोंसे ही समाज वनता है और समाजके सुधरनेसे ही राष्ट्र वलवान और सुदृढ़ हो सकता है। इस निष्ठासे स्वराज्य-साधनाके साथ साथ देश भरमें राष्ट्रीय शिक्षा और संस्कारका विचार-प्रचार भी जमनालालजी सतत करते रहे तथा राष्ट्रपिताके खादी, ग्रामोद्योग आदि रचनात्मक कार्योंका राष्ट्रव्यापी प्रचार करनेके लिए निरन्तर भारत भ्रमण भी करते रहे।

उसी सिलसिलेमें २६ दिसम्वर, १९२० में नागपुर-कांग्रेसके अवसर पर स्वागताध्यक्षके पदसे दिया गया जमनालालजीका भाषण अभूतपूर्व था। उसमें उन्होंने अपने देशका राजनैतिक दर्शन उपस्थित करते हुए जो वातें कही थीं, वे आज भी हम सभी देशवासियोंके लिए विशेष रूपसे चिन्तनीय और प्रेरक हैं। उनका सार यह है:

राष्ट्र-जीवन-यज्ञ

"इस समय जनतामें असाधारण जागृति है। मुझे सन्देह है कि आप में से अनेकको शायद इस जागृतिका पूरा अनुमान नहीं हुआ है, किन्तु मैं

भारतीय शिक्षित समाजके नेताओंको अत्यन्त नम्रताके साथ सावधान कर देना चाहता हूं कि यदि उन्होंने इस सार्वजनिक जागृतिसे पूरा-पूरा फायदा न उठाया और देशके निस्तारके लिए वर्तमान आन्दोलनमें अग्रसर हो अपनी निःस्वार्थता तथा सत्यताका परिचय न दिया, तो आन्दोलनका परिणाम चाहे कुछ हो या न हो, किन्तु जनताका विश्वास सदाके लिए उनके ऊपर से उठ जायगा। मैं यह बता देना चाहता हूं कि कलकत्ता कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कार्यक्रममें किसी प्रकारकी ढिलाई करने या पीछे हटनेकी चेष्टा मात्रका परिणाम भी उनके नेतृत्व और उनके राजनैतिक जीवनके लिए अत्यन्त अहितकर होगा। इसलिए फिर एक बार मैं आप सज्जनोंसे अपील करता हूं कि आप इस मंडपमें गम्भीरता तथा साहसके साथ अपने कर्तव्य और अपनी जिम्मेदारीका निर्णय करके अपनी शक्तिभर उसके पालनमें अग्रसर हों।

"मैं अपने उन व्यापारी भाइयोंसे, जो अभी तक राष्ट्रकी आवश्यकताओं और देशके राजनैतिक जीवनकी ओरसे अधिकतर उदासीन रहे हैं, निवेदन करना चाहता हूं कि उनकी भी इस भूमिकी ओर, जिसमें वे उत्पन्न हुए हैं, कुछ विशेष जिम्मेदारी है। वे भी इस राष्ट्रीय संकटके समय अपनी जिम्मेदारीको सोचें और शांतिपूर्वक विचार करें।

हमारा मार्गदर्शक

"सच यह है कि विना स्वार्थत्याग और कुर्बानीके कोई राष्ट्रीय चेष्टा सफल नहीं हो सकती। और इतनी बड़ी चेष्टाको सफल करनेके लिए, इस प्राचीन देशको दासता और अपमानके बंधनोंसे मुक्त करानेके लिए, हममें से किसी व्यक्तिको किसी भी कुर्बानीसे पीछे नहीं हटना चाहिए। आवश्यकता केवल हमारे हृदयोंमें सत्यता, श्रद्धा और प्रेमके बलकी है। इस समस्त स्थिति को ध्यानसे देखते हुए मेरा अपना हृदय आशासे भरा हुआ है। मुझे इस आन्दोलनकी अंतिम विजयमें कुछ भी सन्देह दिखाई नहीं देता, विशेपकर जब कि मैं इस बातको देखता हूं कि इस आन्दोलनमें हमारा मार्गदर्शक एक इस प्रकारका व्यक्ति है, जिसने अपने बढ़े हुए आत्मबल, अपनी दीर्घ तपस्या, अपनी अनन्य सत्यनिष्ठा, अपने स्पष्ट तथा सरल जीवन, अपनी आश्चर्यजनक निर्भीकता और अपनी अनुपम निस्स्वार्थता द्वारा देशके बच्चे-बच्चेके हृदयमें

स्थान पा लिया है, जिसे अनेक क्रियात्मक राजनैतिक संग्रामोंका अनुभव है और जिसके हाथोंमें दुःखित भारतीय जनताने अपने राष्ट्रीय जीवनकी वागडोर सौंप दी है। हमें इस समय अपने छोटे-छोटे अथवा संकीर्ण विचारों को छोड़कर केवल आन्दोलनकी सफलताकी ओर दृष्टि रखनी चाहिए।

देशी राजा और प्रजा

"दो शब्द मैं कांग्रेसके विधान अर्थात् 'कांस्टिटयूशन' के विषयमें और कहना चाहता हूं। आप इस व्यवस्थामें परिवर्तन करनेवाले हैं। मेरा जन्म राजपूतानेकी एक रियासतमें हुआ है। मेरी और मेरे समान विचार रखनेवाले और भी अनेक लोगोंकी यह इच्छा है कि आप देशी राजाओं और उनकी प्रजाको अब अपनी नई व्यवस्थासे वाहर न रखिये। देशी रियासतोंके रहनेवाले भी भारतीय राष्ट्रका एक प्रधान अंग हैं और आपको विश्वास दिलाता हूं कि अनेक देशी राजाओंकी हार्दिक सहानुभूति आपके साथ है। और यदि किसीकी सहानुभूति आपके साथ न भी हो, तो वहांकी प्रजाकी सहानुभूतिमें तो आपको कोई शंका न होनी चाहिए। ऐसी अवस्थामें राजाओंका हित भी इसीमें होगा कि वे आपके साथ रहें। इसलिए मेरी और अनेक लोगोंकी यह उत्कंठा है कि आप देशी राजाओं और उनकी प्रजा दोनोंको अपनी नई व्यवस्थामें स्थान दें।

"दूसरी बात व्यवस्थाके इस विषयमें मुझे आपसे यह कहनी है कि यथासम्भव आप अधिकांश भारतवासियोंकी मातृभाषा और समस्त भारतकी भावी अन्तरप्रान्तीय भाषा हिन्दुस्तानीको भी अपनी व्यवस्थामें उचित स्थान दें, ताकि शीघ्र ही इस राष्ट्रीय महासभाकी कार्यवाहीमें हम एक विदेशी भाषाके प्रयोगको कम कर सकें और अधिकाधिक भारतवासियोंको कांग्रेसके काममें भाग लेने या उससे लाभ उठानेका अवसर दे सकें।"[१]

आचार, विचार और संस्कार

अपने इन राष्ट्रीय विचारोंको निजी गृह-जीवनके आचार-संस्कारोंमें शामिल करनेकी जमनालालजीकी सतर्कता और उत्कंठाका प्रभाव परिवार पर सदा आच्छादित रहा है।

---

१. ३५वीं कांग्रेसके नागपुर-अधिवेशनके स्वागताध्यक्ष-पदसे २६ दिसम्बर, १९२० को दिया गया जमनालालजी बजाजका भाषण।

सन् १९२१ में ही महात्मा गांधीजीके शुभागमनकी पूर्व तैयारीके रूपमें माता जानकीदेवी द्वारा वर्धामें विदेशी वस्तुओंकी जो होली की गई वह तो अप्रतिम ही थी। स्वतंत्रता-संग्रामकी वेदी पर किया हुआ यह महान स्वराज्य-सूय यज्ञ ही था, जिसमें विवाहके मंगल-वस्त्र भी स्वाहा कर दिये गए थे। जानकीजीकी इस गहरी निष्ठाके कारण ही जमनालालजीकी पगड़ी व लाल कसूमल रंगका वागा तथा मखमल पर जरीकी कढ़ाईसे भरा वड़ा छत्र, मंदिरके भगवानकी हजारोंकी पोशाकें तथा फर्नीचर पर चढ़ा कपड़ा तक उखेड़ कर स्वाहा कर दिया गया था। पहले विविध सुन्दर वस्त्रोंको खूव ऊपर तक सजा कर गांव भरमें रथयात्रा निकाली गई। वाद गांधी-चौकके ऊंचे चवूतरे पर ही विदेशी वस्त्रोंकी वड़ी भारी होली की गई। हमें याद है कि जरीके अपने भारी-भारी नये वस्त्र और टोपियां हमने भी नाचते-उछलते हुए उस पवित्र होलीमें कैसे स्वाहा कर दी थीं।

पूज्य मां ने अपने आप दृढ़ संकल्पपूर्वक इतना वड़ा राष्ट्रशुद्धिका महान क्रांतिकारी कार्य कैसे सम्पन्न कर लिया, यह समझाते हुए मां आज स्वयं आश्चर्यचकित हो जाती हैं। वे कहती हैं—"अगर स्वयं जमनालालजी और वापूजीने अपनी आंखोंसे यह दृश्य देखा होता, तो शायद वे भी स्तव्ध ही रह जाते।"

स्वराज्यकी पोशाक

खादीकार्यके संवंधमें जमनालालजीकी निष्ठा अत्यन्त गहरी थी। उनके पत्रों पर प्रायः यह छपा रहता था—"खादी भूखेकी रोटी, अंधेकी लकड़ी और विधवाका सहारा है।" खादीकार्यके संवंधमें व्यावहारिक दृष्टिसे विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है:

"भारत वर्ष तो गरीव किसानों और मजदूरोंका देश है। जव तक इन लोगोंकी आर्थिक हालत न सुधरे और इनका संगठन न हो, तव तक हमें सफलता मिली नहीं कही जा सकती। इनकी स्थिति सुधारनेका और संगठनका सवसे अच्छा साधन खादी है। खादीका काम तीन दृष्टियोंसे हो सकता है—

१. यज्ञ-भावना – देशकी गरीब जनताका खयाल रखकर उसके प्रति हमदर्दी तथा समान भावकी दृष्टिसे सूत कातना। यह हुई दरिद्र-नारायणकी उपासना।

२. स्वावलम्बन – फुरसतका समय कातने-बुननेमें लगाकर अपनी वस्त्र-सम्बन्धी आवश्यकताएं पूरी करना और करवाना।

३. व्यापार – देहातोंमें मजूरी देकर, सूत कतवाकर तथा बुनवाकर खादी-उत्पादन करना और बेचना।

खादीका जो कार्य हो रहा है, वह खास करके तीसरे प्रकारका हो रहा है। लेकिन खादीके पीछे जो स्थायी भावना है उसकी सिद्धि स्वावलम्बनके मार्गसे ही हो सकती है। यदि हम हिन्दुस्तानके सात लाख गांवोंमें रहनेवालोंकी मदद करना चाहते हैं, तो खादी पहनना आवश्यक है।"

श्री विट्ठलदास जेराजाणीजी तो खादीका प्रचार-कार्य करते हुए अब उसीमें लीन हो गए हैं। भारतके सभी प्रदेशोंमें खादी-ग्रामोद्योग-भवनोंकी स्थापना उन्हींके द्वारा हुई है।

खादीके संबंधमें उन्होंने अपनी पुस्तक 'खादीकी बातें' में लिखा है: "सन् १९२१ में अहमदाबादमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ, उसके साथ सर्वप्रथम खादी-प्रदर्शनी भी आयोजित की गई थी, जो बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई। देशके विभिन्न हिस्सोंमें चरखेको पुनर्जीवन मिल रहा था। भूली हुई रीत फिरसे शुरू होने लगी थी। परिणामस्वरूप खादीमें विविधता आने लगी और उसकी मांग भी बढ़ने लगी। 'खादीका कपड़ा मोटा है, खादी खुरदरी है, मिलके कपड़ेसे उसके दाम ऊंचे हैं, फिर भी खादी स्वराज्यकी पोशाक है।' इस भावनासे लोग अधिक दाम देकर भी खादी खरीदने लगे। देश भरका खादीकाम कांग्रेस कार्यसमितिके द्वारा चलता था। सन् १९२२ के मई महीनेमें खादी-विभागका संचालन श्री जमनालालजी बजाजको सौंपा गया था।"

'चरखा-जयन्ती' के उद्गमका समय बताते हुए जेराजाणीजीने अपनी पुस्तकमें लिखा है: "बापू जेलमें बन्द हो गये थे। उनका जन्मदिन आ रहा था। उसको मनानेका सोच-विचार चल रहा था कि बापूका आदेश मिला – 'मेरा नहीं चरखेका जन्मदिन मनाओ।' तभी सन् १९२३ से गांधी-

जयन्ती 'चरखा-जयन्ती' या 'रेंटिया-बारस' के नामसे पहचानी गई। फिर तो गांधीजीके जन्मदिनकी तिथिसे २ अक्तूबरकी तारीखके बीचके दिन चरखा-सप्ताहके नामसे मनाए जाने लगे।"

मानवका सर्वोपरि धर्म

सन् १९२२ में २४ और २५ फरवरीको दिल्लीमें कांग्रेस महासमितिकी बैठक हुई। उसमें कार्यसमितिके बारडोली-सम्बन्धी लगभग सारे प्रस्तावोंका समर्थन हुआ। हां, व्यक्तिगत रूपसे किसी खास कानूनके खिलाफ सत्याग्रहकी यह परिभाषा की गई कि व्यक्तिगत सत्याग्रह[1] वह है जिसके अनुसार एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूहके द्वारा किसी सरकारी आज्ञा या कानूनका उल्लंघन किया जाय। इस प्रस्तावसे मध्यस्थ लोगोंमें हलचल मच गई। देश भरमें असहयोग-आन्दोलनका सिलसिला शुरू हो गया।

१८ मार्च, १९२२ को मुकदमे पर पेश होनेसे पहले गुरुवार १७ मार्चकी रातको ही बापूजीने चि० जमनालालके नाम वह 'सुन्दर पत्र' लिखा था, जो अनेक राष्ट्रजनोंकी प्रेरणाका स्रोत बन गया। उसके दूसरे दिन शुक्रवारको न्यायाधीश मि० ब्रूमफील्डके सम्मुख गांधीजीको प्रस्तुत किया गया। उनके सामने गांधीजीने अपना जो लिखित इकरार पढ़कर सुनाया उसमें 'मानवके सर्वोपरि धर्म' की स्पष्ट झलक मिलती है। उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है:

"एक चुस्त राजनिष्ठ और सहकारी नगर-जन मिटकर आज मैं पक्का राजद्रोही और असहकारी किसलिए बना हूं, इसकी स्पष्टता करनेके लिए मैं बंधा हुआ हूं।

"जिस सरकारने पहलेके अन्य किसी भी राज्यतन्त्रसे फलतः हिन्दुस्तानका अहित ही किया है उसके सामने अप्रीति होना, उसे तो मैं सद्गुण ही समझता हूं। ब्रिटिश हुकूमतके नीचे हिन्दमें पहले कभी भी न हुआ हो उतना मर्दानगीका लोप हुआ है ऐसी मेरी मान्यता होनेसे, ऐसे राज्यतन्त्रके लिए मनमें प्रीति होना मैं पाप समझता हूं। और इसलिए मेरे सामने

---

१. व्यक्तिगत सत्याग्रह सन् १९४० में शुरू हुआ, जिसका वर्णन आगे 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' नामक अध्याय में दिया गया है।

सबूतके तौर पर प्रदर्शित विभिन्न लेखोंमें मैंने जो कुछ लिखा है, वह मैं लिख सका इस बातको मैं अपना अहोभाग्य मानता हूं।

"मेरे नम्र अभिप्रायके अनुसार बुराईके सामने असहकार करना, यह नेकीके साथ सहकार करने जैसा ही मनुष्यका कर्तव्य है; किन्तु बुराई करने-वालेके सामने इरादतन् अहिंसाका प्रयोग करके ही असहकार करना वह भी नेकीके साथ सहकार करने जितना ही मनुष्यका कर्तव्य है। ऐसी अहिंसा-वृत्तिमें बुराईके साथ असहकार करते हुए जो दुःख सहन करने पड़ते हैं, उन्हें स्वेच्छापूर्वक स्वीकारना चाहिये यह आ जाता है। इसलिए कानूनकी दृष्टिसे जो मेरा इरादतन् किया गया गुनाह माना जाय और फिर भी मेरी अपनी नजरमें जो नगर-जनकी हैसियतसे मानवका सर्वोपरि धर्म है, उसके लिए कड़ी सजा मांग लेने और वह सजा आनन्दपूर्वक सिर चढ़ानेके लिए मैं खड़ा हूं।"

गांधीजीका यह अद्भुत इकरार सुनकर चारों ओर गम्भीर स्तब्धता छा गई। फिर न्यायाधीशने अपना फैसला जाहिर किया। उसमें उन्होंने गांधीजीके लिए अत्यन्त मान और सद्भाव प्रकट किया। इस प्रकार सर्वोपरि धर्मकी व्याख्या करके बापूजीने भारतके आबाल-वृद्ध जनोंमें एक नई चेतना जागृत कर दी और स्वतन्त्रता-आन्दोलनने एक नया मोड़ अख्तियार किया।

राष्ट्रीय 'झण्डा-दिवस'

१ जनवरी, १९२३ की महासमितिने निश्चय किया कि ३० अप्रैल, १९२३ तक २५ लाख रुपया एकत्र किया जाय और ५०००० स्वयंसेवक भर्ती किये जायं। कार्यसमितिके जिम्मे यह सारा काम सौंपा गया।

३० अप्रैल तक मौलाना अबुल कलाम आजाद और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जेलसे छूट चुके थे। . . . इधर कांग्रेसका रचनात्मक कार्यक्रम बड़े जोरशोरसे फैलाया गया। इस कामके लिए जो शिष्ट-मण्डल नियुक्त किया गया था, उसमें बाबू राजेन्द्रप्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, सेठ जमनालाल बजाज और श्री देवदास गांधी थे। इस शिष्ट-मण्डलने देशभरका दौरा किया और तिलक स्वराज्य-कोषके लिए काफी चंदा जमा किया। मई १९२३ को

बम्बईमें हुई कार्यसमितिकी एक बैठकमें इसने अपने कार्यकी रिपोर्ट पेश की। . . . इस बैठकमें मध्यप्रान्तके स्वयंसेवकोंको नागपुरमें झण्डा-सत्याग्रह जारी रखनेके लिए बधाई दी गई।

सितम्बरके महीनेमें बम्बईमें कांग्रेसका एक विशेष अधिवेशन करनेका निश्चय किया गया, जिसमें कौंसिल-बहिष्कारके प्रश्न पर विचार किया गया। मौलाना अबुल कलाम आजादको इसका सभापति चुना गया और कार्यसमितिको इस सम्बन्धमें कार्रवाई करनेका अधिकार सौंपा गया।

इस बीच नागपुर-सत्याग्रहने भीषण रूप धारण कर लिया। नागपुरकी पुलिसने १ मई, १९२३ को १४४ वीं धाराके अनुसार सिविल लाइन्समें राष्ट्रीय झण्डेके समेत जुलूस ले जानेका निषेध कर दिया। स्वयंसेवकोंने कहा—"हमें अधिकार है। हम जहां चाहें झण्डा ले जायेंगे।" बस, गिरफ्तारियां और सजायें आरम्भ हो गईं। बातकी बातमें इस घटनाने आन्दोलनका रूप धारण कर लिया।

आगामी १८ तारीखको गांधी-दिवसके रूपमें मनानेके बदले उसे 'झण्डा-दिवस' कहकर मनाया गया। प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटियोंको आज्ञा हुई कि उस दिन जुलूस निकालकर जनता द्वारा झण्डा फहरायें। इस समय तक इस सत्याग्रहके सिलसिलेमें सेठ जमनालाल बजाज भी गिरफ्तार हो चुके थे। कमेटीने सेठजीको उनकी सजा पर बधाई दी।

नागपुरके इस आन्दोलनमें भाग लेनेके लिए कार्यसमिति और महा-समितिने देशका जो आह्वान किया था, उससे देशके कोने-कोनेमें सत्याग्रही गिरफ्तार होने लगे। इस प्रकार नागपुर झण्डा-सत्याग्रह शीघ्र ही एक अखिल भारतीय आन्दोलन हो गया।

बेलगांव कांग्रेस

असहयोगके इतिहासमें १९२४ की बेलगांव कांग्रेस खास महत्त्व रखती है। इसके सभापति गांधीजी हुए। सभापति-पदसे किया गया गांधीजीका भाषण अद्भुत था, जिसका महत्त्वपूर्ण सार इस प्रकार है:

"मैं साम्राज्यके भीतर ही स्वराज्य पानेकी चेष्टा करूंगा। पर यदि स्वयं ब्रिटेनके दोषसे ही उससे सारे नाते तोड़ना आवश्यक हुआ, तो मैं

ऐसा करनेमें संकोच नहीं करूंगा।" इसके बाद उन्होंने स्वराज्य-पार्टी और रचनात्मक कार्यक्रमका जिक्र किया और बंगालकी अवस्थाके संबंधमें अपने विचार प्रकट करनेके बाद अहिंसामें अपनी आस्था प्रकट की।

बेलगांव कांग्रेसमें गो-संरक्षणकी अखिल भारतीय सभा भी महात्माजीकी अध्यक्षतामें हुई। उससे गोमाताकी प्रीति और महिमा बढ़ती गई। बेलगांव कांग्रेसमें मां के साथ हम सब बच्चोंको भी पिताजी लिवा गये थे। जहां देखो वहां लाल गेरुई मिट्टीका ही साम्राज्य फैला हुआ था। बड़ी सड़कोंके दोनों ओरके बड़े-बड़े पेड़ नखशिखान्त गेरुवे रंगसे होली खेलते हुए नजर आ रहे थे। सम्माननीय मौलाना मुहम्मदअली साहबके परिवारके साथ हम खूब घुलमिल गये थे। उनके बच्चोंके साथ हमारी खूब दोस्ती हो गई थी। मौलाना साहब भी हमें अपने बच्चों जैसा ही प्यार करते थे। बचपनकी वे स्निग्ध स्मृतियां मनको आज भी मुग्ध बना देती हैं।

पू० विनोबाजीका प्रभाव

राष्ट्रके महान नेताओंकी आत्मीयताके साथ ही आत्मोन्नतिकी साधना का आकर्षण और महत्त्व भी जमनालालजीके मनमें निरंतर बढ़ता जा रहा था। इसीसे साबरमती आश्रममें सन् १९२० में पू० विनोबाजीसे परिचय हुअ तभीसे उनके प्रति जमनालालजीकी गहरी श्रद्धा और आत्मीयता भी बराबर बढ़ती चली गई।

'विनोबाजीके प्रथम परिचय और प्रभाव' के संबंधमें माता जानकीदेवीने लिखा है:

"जब साबरमतीमें विनोबाजी आये तो हम लोग वहीं थे। विनोबाजी प्रोफेसरका काम करने लगे। विद्यार्थी पढ़ते थे। पढ़ानेमें वे खूब जोर-जोरसे बोलते थे। खुद भी अभ्यास करते तो श्लोकोंका जोरोंसे उच्चार करते। पर सारे दिन गड्ढे खोदना वगैरह काम करनेमें चुप रहते थे, तो उनसे डर लगता था। बहनोंने सोचा, हम भी गीता सीखें। काशीबहन वगैरह और शायद कस्तूरबा भी पढ़ती होंगी। पढ़नेका समय पूछा तो सुबह पांच बजे बताया। मैं भी क्लासमें जाती, पर रात भर चिंता रहती कि यदि सुबह क्लासमें पहुंचनेमें एक मिनिट भी देर हो गई तो दरवाजा बंद हो

जायगा। पांच वजे गई तो गीताके पांचवें अध्यायका नवां श्लोक विनोवाजी सिखा रहे थे। उसमें जोड़वाले अक्षर ज्यादा हैं।

पश्यन्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन् अश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन्।
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।।

वाहर आकर वहनोंसे पूछा तो मालूम हुआ कि यही श्लोक पढ़ाया था। देखा होगा कि जवान पर कितना अभ्यास है, कौन कैसा उच्चार कर सकते हैं!"

पू० विनोवाजीके वर्धा-आगमनके संवंधमें मां ने वताया कि "गांधीजीके आश्रम-जीवनसे प्रभावित होकर जमनालालजीने वापूसे कहा कि सावरमती सत्याग्रह-आश्रमकी एक शाखा वर्धामें खोलना चाहिये। वापूजीने कहा, 'भाई, एक सावरमती आश्रम चलाना तो मेरे लिए कितना कठिन है, तो वर्धा शाखा कौन चलायेगा?' लेकिन जमनालालजी आग्रह करके वैठ गये और वापूजीसे कहा कि आप हर साल कांग्रेसमें जाते हैं उसके पहले एक महीना वर्धामें रहा करेंगे तो ठीक होगा। परन्तु सावरमती आश्रमकी शाखा तो आपको वर्धामें खोलनी ही पड़ेगी। आश्रम चलानेके लिए जमनालालजीको जैसे व्यक्ति चाहिये थे वैसे तो विनोवाजी ही एक सुयोग्य व्यक्ति थे। अत: वापूजीने विनोवाजीको वर्धा भेज दिया। वादमें श्री मोघेजी और धोत्रेजी भी आ गये।

"शुरूमें मगनवाड़ीके वगीचेमें और वादमें वजाजवाड़ीके घासके वंगलेमें विनोवाजीने आश्रम शुरू किया तव उसमें दीपक चौधरी, कृष्णदास, केशू गांधी, वल्लभ और राधाकृष्ण सीखते थे।

"जमनालालजीने एक वार मुझसे पूछा—'तेरे वच्चोंको विनोवाके पास पढ़ाती है। इनको तू क्या वनाना चाहती है?' मैं वोली—'भीष्म पितामहके समान। विनोवा तीन भाइयों जैसे।' कमल वोलनेमें सदा ही चंट था। वोला—'आप तो नौ वर्षकी उम्रमें ही व्याह कर वैठीं और हमें फकीर वनानेमें लगी हैं।' मैं वोली—'अरे, व्याह तो पशु-पंछी भी करते हैं। पर आदर्श तो मनुष्य ही वन सकता है।' जमनालालजी तो व्यवहारी

थे। उन्होंने कहा – 'हम तो बच्चोंको संगत अच्छी दे सकते हैं, पीछे बच्चोंका भाग्य।'

वर्धामें अपनी १५ जुलाई, १९२४ की दैनन्दिनीमें जमनालालजीने लिखा है: 'आज विनोबाने आश्रममें राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था पर सुन्दर विचार व कार्यक्रम प्रकट किया। जानकर सुख हुआ।' १७ जुलाई, १९२४ को लिखा: 'चि० कमलनयनको सत्याग्रहाश्रम, वर्धामें रखनेके लिए जल्दी तैयार करके सुबह ६।। बजे भेजा।'

'मातृभूमिसे प्रेम'

१९२५ के मार्च और अप्रैलमें गांधीजीने दक्षिण भारत और केरलका दौरा किया। दक्षिणसे गांधीजी बंगाल जानेवाले थे। उस समय तक दासबाबू अस्वस्थ हो चुके थे। . . . देशबंधुने पण्डित मोतीलाल नेहरूको जो अंतिम पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने कहा था:

"हमारे इतिहासकी सबसे नाजुक घड़ी आ रही है। इस वर्षके अंतमें ठोस काम होना चाहिये और दूसरे सालके आरंभमें हमारी सारी शक्तियां काममें लग जानी चाहिये। इधर हम दोनों बीमार पड़े हैं। ईश्वर ही जाने क्या होनेवाला है?" इसके कुछ ही दिनों बाद १६ जून, १९२५ को दार्जिलिंगमें उनका परलोकवास हो गया। . . .

श्रद्धेय जमनालालजीका श्री मोतीलालजी और श्री चित्तरंजन दाससे अत्यंत घनिष्ठ संबंध था और सुख-दुःखमें बराबर दोनों परिवारोंमें वे आते-जाते रहते थे। दोनों परिवारोंका वह पारिवारिक आत्मभाव अब तक कायम है।

'दोनों दीर्घायु हों'

२८ फरवरी, १९२६ के दिन साबरमती आश्रममें बापूजीके सान्निध्यमें बड़ी बहन कमलाबाईका विवाह श्री रामेश्वर प्रसादजी नेवटियाके साथ खादीमय सादगीसे सम्पन्न हुआ था। उस विवाह-संस्कारकी धार्मिकता समझाते हुए बापूजीने अपनी ईश्वर-भीरुता और आत्म-परायणताके आन्तरिक भाव इस प्रकार व्यक्त किए थे:

"हिन्दुस्तान अथवा सारे संसारमें जहां विवाहमें धार्मिक विधि मनाई जाती है वहां उसमें संयमका अंश होता है। स्मृतियोंमें भी लिखा है कि जो दम्पती नियमसे रहते हैं वे भी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। स्त्री पुरुषकी अर्धांगिनी है, सहधर्मिणी है। यह तो एक नया जन्म है। ये दम्पती शिव-पार्वती या सावित्री-सत्यवान या सीता-रामके समान आदर्शभूत हों।

"यह विवाह अनुकरणीय है। मैं इन दोनोंको आशीर्वाद देता हूं कि ये दोनों दीर्घायु हों और अपने बड़ीलोंको सुशोभित करें और धर्मकी रक्षा करते हुए देशकी सेवा करें।"[१]

इस तरह राष्ट्रपिता बापूजीके आशीर्वाद उनके 'पांचवें पुत्र' के परिवार पर शुरूसे ही बरसते रहे हैं।

'धन्य हैं वे लोग'

सन् १९२७ में 'त्यागभूमि' में श्री जमनालालजीका एक बड़ा ही उद्बोधक भाषण प्रकाशित हुआ था। इसमें देशकाल और तत्कालीन परिस्थितियों का सिंहावलोकन प्रदर्शित हुआ है, जो आज भी देशके सभी आबाल-वृद्ध जनोंके लिए उतना ही प्रेरक है:

"देशकी वर्तमान अवस्थासे किसीको सन्तोष नहीं है। इस तूफान और अराजकताके युगमें धन्य हैं वे लोग, जो देशकी असली कमजोरियोंको दूर करनेमें चुपचाप अपनेको खपा रहे हैं। स्वराज्य-संग्राममें विजय प्राप्त करनेकी दृष्टिसे जब हम अपने देश और समाजकी दशा पर विचार करते हैं, तो हमें अनेक कमियां और खामियां नजर आती हैं। जब तक काफी मात्रामें हम उन्हें दूर न कर सकेंगे, उनका असली स्वरूप न समझ सकेंगे, तब तक हमारे बलका पूरा-पूरा उपयोग न होगा। हमारी धर्म-भावनाएं अभी सदोष हैं, हमारी समाज-व्यवस्था विशृंखल और सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न है। हमारी राजनैतिक कार्यप्रणाली परमुखापेक्षी है। इसमें सुधारकी भारी आवश्यकता है।

---

१. हिन्दी नवजीवन, ४. ३. '२६।

"इसके लिए कमी किस बातकी है? मुझे तो यही मालूम पड़ता है कि यह काम धनके अभावमें उतना नहीं रुक रहा है जितना योग्य, प्रामाणिक, परिश्रमी तथा लगनवाले कार्यकर्ताओंकी कमीसे रुक रहा है। दूसरे शब्दोंमें यों कहें कि त्याग और तपोमय जीवन व्यतीत करनेवाले, विद्या और तपस्या दोनोंका मेल अपने जीवनमें मिलानेवाले देशसेवकोंकी कमी है। लोग कहते हैं: पैसा कम है; मैं कहता हूं: अच्छे कार्यकर्ता कम हैं। कितने ही नवयुवक काम और रोटीकी तलाशमें घर-घर घूमते हैं, पर वे अपनेको देशसेवाके योग्य नहीं बनाते। जिन्होंने सेवाका व्रत लिया है वे भी सच्चे सेवककी योग्यता बढ़ानेका उतना उद्योग नहीं करते जितना सेवाके फलकी ओर दृष्टि लगाये रहते हैं। योग्यता और गुणकी कद्र सब जगह होती है। अतएव कार्यकर्ताओंको चाहिये कि वे अपनी योग्यता और गुण बढ़ावें। नवयुवकोंको चाहिये कि वे देशसेवाके योग्य अपनेको बनानेका दिन-रात यत्न करें।"

श्रद्धेय जमनालालजीके आत्मभावसे भरे हुए राष्ट्रसेवाके इन श्रेयस्कर विचारोंको पढ़ कर आज भी उनके अमर सान्निध्यका प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है।

इसके आगेका हमारे देशका राष्ट्रीय घटना-चक्र बड़ा ही क्रान्तिकारी है। राष्ट्रके उत्थानका आरम्भ और सामाजिक जीवनकी उत्क्रांतिका मंगलाचरण प्रत्यक्ष रूपमें यहींसे हुआ है।

राष्ट्रव्यापी अहिंसक संग्राम

अखिल भारत कांग्रेसका इतिहास अनेक दुर्गम घाटियोंको पार करते हुए मंजिल-दर-मंजिल आगे बढ़ता चला गया था। उसी सिलसिलेमें सन् १९२८ के दिसम्बर महीनेमें कांग्रेसके कलकत्ता अधिवेशनके वाद तुरन्त कार्य-समिति द्वारा विदेशी वस्त्र-वहिष्कार, मादक द्रव्य-निषेध, अस्पृश्यता-निवारण, कांग्रेसके संगठन तथा स्वयंसेवकों व स्त्रियोंकी वाधाओंको दूर करनेके लिए कमेटियां नियुक्त की गईं। इनमें अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनका काम जमनालालजीके सुपुर्द किया गया। जहां अस्पृश्य जातियोंको मनाही थी वहां अनेक मंदिरोंके द्वार उनके लिए खोल दिए गए। इनमें वर्धाका श्री लक्ष्मीनारायणजीका मंदिर सवसे पहला था, जहां हरिजनोंको सम्मानपूर्वक प्रवेश प्राप्त हुआ। समितिको वहुतसे कुएं और अनेक पाठशालाएं खुलवानेमें सहायता मिली। कई म्युनिसिपल कमेटियोंने सहयोग दिया। इसी कामके लिए जमनालालजीने पंजाव, मद्रास, मध्यप्रान्त और सिन्ध प्रान्तमें लम्वे प्रवास किये।

स्वराज्यका महान संकल्प

सन् १९२९ के अन्तमें लाहौरमें कांग्रेसका अधिवेशन अत्यन्त उत्साह-पूर्वक सम्पन्न हुआ। इस कांग्रेसका मुख्य प्रस्ताव 'पूर्ण स्वाधीनता' के सम्वन्ध में था, जिसका सार यह है—"यह कांग्रेस घोषणा करती है कि कांग्रेस-विधानकी पहली कलममें स्वराज्यका अर्थ पूर्ण स्वाधीनता होगा। कांग्रेस-आशा करती है कि अव समस्त कांग्रेसवादी अपना सारा ध्यान भारतवर्षकी पूर्ण स्वाधीनताको प्राप्त करनेमें लगायेंगे।" स्वराज्य-प्राप्तिका यही हमारा महान संकल्प था। ३१ दिसम्वरको ठीक आधी रातके समय पूर्ण स्वतन्त्रताके प्रस्तावके मतोंकी गणना पूरी हुई। उसी समय समग्र कांग्रेसने मिलकर पूर्ण स्वाधीनताका झंडा फहराया।

गांधीजीकी योजना सदा उनकी अन्तःप्रेरणासे बनी है। उनका गुरु और मित्र उनका अन्तःकरण ही रहा है। उन्होंने हजारों वर्षका काम बारह महीनेमें कर दिखाया। गांधीजीकी दिव्य दृष्टि और शुद्ध विचारका लोहा सभीने माना। 'सविनय अवज्ञा' का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए २ मार्च, १९३० को उन्होंने लॉर्ड इर्विनको जो पत्र भेजा उसका निष्कर्ष यह है:

"मेरी महत्त्वाकांक्षा है कि मैं अहिंसा द्वारा ब्रिटिश जातिका हृदय-परिवर्तन कर दूं और उसे भारतके प्रति किए गए उसके अन्यायका अनुभव करा दूं। मैं आपकी जातिको हानि पहुंचाना नहीं चाहता। मैं उसकी भी वैसी ही सेवा करना चाहता हूं, जैसी अपनी जातिकी। अगर यह बात सच है, तो यह ज्यादा देर तक छिपी नहीं रहेगी। बरसों तक मेरे प्रेमकी परीक्षा लेनेके बाद मेरे कुनबेवालोंने मेरे प्रेमके दावेको कबूल किया है; वैसे ही अंग्रेज भी किसी दिन करेंगे। यदि मेरी आशाओंके अनुकूल जनताने मेरा साथ दिया, तो या तो पहले ही ब्रिटिश जाति अपना कदम पीछे हटा लेगी, अन्यथा जनता ऐसे-ऐसे कष्ट सहन करेगी जिन्हें देखकर पत्थरका दिल भी पिघले बिना नहीं रह सकता। हमारे राष्ट्रके भाग्यमें तो जेलखानेकी शान्ति ही एक मात्र शान्ति है। मैं जानता हूं कि अहिंसात्मक संग्रामका प्रारंभ करनेमें जोखिम है। परन्तु सत्यकी विजय बहुधा बड़ी-से-बड़ी जोखिमों के उठाये बिना नहीं हुई है।"[1]

ये हैं राष्ट्रपिताके वे गहरे आन्तरिक उद्गार जिन्होंने उनकी शान्ति-प्रियताको क्रान्तिके रूपमें उभार दिया और न्यायप्राप्तिके खातिर सत्याग्रहकी भावनाको स्वतन्त्रता-संग्रामके रूपमें अपने राष्ट्रके सामने प्रस्तुत करनेके लिए उन्हें प्रेरित किया।

नमक-सत्याग्रह

इस सत्याग्रहकी पूर्व-तैयारी और आश्रमसे सत्याग्रहियोंकी विदाईके संबंधमें माता जानकीदेवीने लिखा है:

"साबरमती आश्रममें महत्त्वपूर्ण सभाएं और चर्चाएं होती रहीं। बापूने कहा—'सत्याग्रहमें जिसको शामिल होना हो निःसंकोच शामिल हो, पर

१. कांग्रेसका संक्षिप्त इतिहास—लेखक: पट्टाभि सीतारामैया।

उसे सर्वस्वके त्यागके लिए तैयार रहना चाहिये। अपने घरवालोंसे पूछकर, सलाह-मशविरा करके अपनेको इसमें जो होम सकें वे ही अपना नाम दें।' अन्तमें वापूजीके साथ जानेवालोंकी सूची तैयार होने लगी। सूचीमें ऐसे लोगोंके नाम थे जो 'स्वराज्य लेकर ही घर लौटेंगे या उसी काममें लग जायेंगे' ऐसा व्रत लिए हुए थे। कुल उनासी आदमी तैयार हुए। इन दिनों मैं देखती थी कि जमनालालजी वड़े उदास व गम्भीर दिखाई देते थे। उन्होंने सोचा कि वापू आश्रमसे चले जायेंगे तो पीछेसे आश्रम कौन चलायेगा? और आश्रमका खर्च भी चलाना आवश्यक था। सरकार क्या करेगी, प्रजा क्या करेगी, इन सव वातोंके चिन्तनमें वे गम्भीर रहा करते थे।

"दांडी-कूचके पहले दिनकी शामकी प्रार्थना अभूतपूर्व थी। सावरमतीके तट पर हजारों लोग जमा हो गए थे। वातावरण एकदम गम्भीर वन गया था। वापूजीने प्रार्थनामें कहा—'मैं अव यहां स्वराज्य लेकर ही लौटूंगा, अन्यथा इसे मेरी अन्तिम प्रार्थना ही समझें।'

"दूसरे दिन सवेरे वापूजी आश्रमसे विदा होनेवाले थे। लोग सड़कों पर, झाड़ों पर रातसे ही बैठे थे। वे शंकित थे कि शायद वापूजीको विदा होनेसे पहले पकड़ लिया जाय। विदाईका वह प्रसंग राम-वनवास जैसा ही हृदयको द्रवित करनेवाला था। लाखों लोग उनके पीछे सुधवुध भूलकर चल रहे थे, मानो जनताका समुद्र ही उमड़ पड़ा हो।"[१]

दांडी-कूच

दांडी सूरत जिलेके समुद्र-तट पर वसा हुआ एक गांव है। गांधीजी अपने ७९ साथियोंको लेकर १२ मार्च, १९३० को दांडी-यात्रा पर निकल पड़े। यह विद्रोहियोंकी यात्रा थी। कूचमें ही गांधीजीने यह घोषित कर दिया था:

"स्वराज्य नहीं मिला तो या तो मैं रास्तेमें मर जाऊंगा या आश्रमके वाहर रहूंगा। नमक-कर न उठा सका तो आश्रम लौटनेका भी मेरा इरादा नहीं है। अंग्रेजी राज्यने भारतका नैतिक, भौतिक, सांस्कृतिक और

१. मेरी जीवन-यात्रा—लेखिका: जानकीदेवी बजाज।

आध्यात्मिक सभी तरहसे नाश कर दिया है। मैं इस राज्यको अभिशाप समझता हूं और इसे नष्ट करनेका प्रण कर चुका हूं।"[1]

मंजिल-दर-मंजिल सत्याग्रह संग्रामकी यह गांधी-कूच दांडीके सागर तटकी ओर बढ़ती गई। ९ अप्रैल, १९३० के दिन बड़ी तीव्र अफवाह उड़ी कि गांधीजी आज पकड़े जानेवाले हैं। यह समाचार सुनकर सूरतसे कल्याणजीभाईने जाकर गांधीजीको रात १२ बजे जगाया और उनसे संदेश मांगा। गांधीजीने उसी समय अपना सन्देश लिखाया। उसका सार यह है:

"सन्देश तो बहुत ही दिए हैं। इनमें से यदि कुछ ग्रहण न किया गया हो, तो अब इस सन्देशसे क्या होनेवाला है? मगर आजकी अर्धरात्रि तक आई हुई खबरोंसे मैं देखता हूं कि सन्देश ग्रहण किया गया है। ऐसा शुभ आरम्भ अन्त तक जारी रहेगा तो सम्पूर्ण स्वराज्य है ही और हिन्दुस्तानको शोभा दे ऐसा पाठ हिन्दुस्तानने जगतको दिया, ऐसा माना जायेगा।

"मैं पकड़ा जाऊं तो साथियों या लोगोंके घबड़ानेका कोई कारण नहीं है। इस लड़ाईको चलानेवाला मैं नहीं हूं, परन्तु ईश्वर है। वह सबके हृदयमें निवास करता है। हमारी अपनेमें श्रद्धा होगी तो वह आगे मार्ग-दर्शन देगा ही। मार्ग अंकित हो गया है। नमक लेने या बनानेके लिए गांवोंके गांव निकल पड़ें, मद्यपान और अफीमके पीठोंको और विदेशी वस्त्रकी दुकानोंको बहनें घेर लें और कार्य सिद्ध करें। घर-घर छोटे-बड़े सब तकली चलानेवाले हो जायं और थोकबंद सूत रोज काता जाय और बुना जाय। विदेशी वस्त्रोंकी होली की जाय। हिन्दू किसीको अस्पृश्य न मानें। हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई सब हृदयसे मिलें। विद्यार्थी सरकारी विद्यालय छोड़ दें और सरकारी नौकर, जिन्होंने अपनी नौकरीसे त्यागपत्र दे दिया है ऐसे बहादुर पटेल, तलाटी नौकरीसे त्यागपत्र देकर लोकसेवामें शामिल हो जायं। इस तरह घर बैठे हमें पूर्ण स्वराज्य मिल जायगा।"[2]

नमक-सत्याग्रह करते हुए राष्ट्रपिता गांधीजी ५ मई, १९३० को कराड़ीमें आधी रातके समय गहरी नींदसे उठाकर गिरफ्तार कर लिए गए। तब ६ मईकी सुबह राष्ट्रमाता कस्तूरबाने जनताको जो प्रेरक संदेश दिया वह

१. कांग्रेसका संक्षिप्त इतिहास: कांग्रेसका उग्र रूप, १९२९-३०।
२. दांडी-कूच, १.४.'३० : रात १२ बजे।

बड़ा ही मार्मिक है। मां के जैसे स्नेह, श्रद्धा और समर्पण-भावनासे ओतप्रोत वे समयोचित उद्‌गार आन्तरिक वीरतासे भरे थे। बा ने अपनी सीधीसादी बोलीमें जनताको यह संदेश दिया :

"आज तक संग्रामका उत्तरदायित्व गांधीजी पर था, अब इस लड़ाईकी और भारत-माताकी लाज सब बहनों और भाइयों पर है। इस प्रसंगसे देशमें किसी जगह अशान्ति न हो, ऐसी मैं ईश्वरसे प्रार्थना करती हूं। लोगोंसे भी प्रार्थना करती हूं कि अपनी गहरी भावना और अपनी भक्तिमें कोई पागल मत बनना। किन्तु संग्रामको अधिक जोरसे मौतका आह्वान करते हुए चलाना।

"जिन्हें अभी तक इस संग्राममें शामिल होनेके लिए मना किया गया था, वे अब तुरन्त शामिल हो जायं। वकील और बैरिस्टर जो अभी तक अपने व्यवसायमें लगे हुए हैं वे अब उसे छोड़ दें और देशके संग्राममें शामिल हो जायं। सरकारी नौकरी करनेवाले भाइयो, आप भी अब कहां तक नौकरीसे चिपके रहोगे? आप अदालतमें बैठकर निर्दोष देशसेवकोंको सजा करो और फिर घर जाकर अफसोस करो, उससे क्या होना-जाना है? सिपाही अपने देशभाइयों पर लाठियां चलाते हैं, गोलियां छोड़ते हैं। ऐसा करनेके लिए दिल कैसे करता है उनका? भाइयो, हिम्मत रखो, भगवान आपमें से किसीको भी भूखा नहीं रखेगा। निर्दोष और देशभक्तिसे उभरते हुए लड़कोंको मारना और घर जाकर आंखोंमें पानी भरकर निःश्वास छोड़ना इससे क्या होगा? परमेश्वरका नाम लेकर और देशका नाम लेकर हिम्मत रखो और नौकरी छोड़ो। इसके सिवा दूसरा कोई सन्देश आज मैं क्या दे सकती हूं? परमात्मा सबको शक्ति दे।"[१]

स्वतन्त्रता-संग्रामके सेनानी

साबरमतीसे गांधीजीके महाप्रस्थानके बाद वहांके आश्रमकी जिम्मेवारी पू० जमनालालजीने संभाली। आश्रममें शिक्षा पानेवाले भाई-बहनोंको और शिक्षकोंको वर्धा सत्याग्रह-आश्रममें आमंत्रित किया गया। वहांकी कन्याशाला और साबरमतीकी आश्रमशाला दोनों एक कर दिए गए। इससे वर्धामें

---

१. दांडी-कूच।

हमारे लिए बहुत रौनक हो गई। साबरमतीसे आए हुए भाई-बहनोंके रहने, खाने-पीनेकी सारी व्यवस्था अच्छी तरह जमा लेनेके बाद जमनालालजी बम्बई गए।

नमक-सत्याग्रहके दरमियान स्वतन्त्रता-संग्रामके एक सेनानीकी तरह जमनालालजीने बम्बईके एक उपनगर विलेपारलेमें सत्याग्रही सैनिकोंकी एक छावनी स्थापित की और बड़ी सतर्कतासे उसका संचालन किया। छावनीमें नित नये स्वयंसेवक आते और जहां जरूरत होती वहीं सत्याग्रहके लिए एक-एक दल बनाकर भेज दिये जाते थे। वीरमगांवके निकटका एक ग्राम है धरासणा। वह अखिल भारतीय नमक-सत्याग्रह आन्दोलनका मध्यवर्ती रण-क्षेत्र बन गया था। एक ऊंची टेकरीके शिखर पर बापूजीके वयोवृद्ध साथी इमामसाहब, सरोजिनी नायडू आदि खड़े थे। चारों ओरकी टेकरी श्वेत-शुद्ध खादीधारी स्वयंसेवकोंसे उभर रही थी। इमामसाहबके गम्भीर उद्-बोधनके बाद सरोजिनीदेवीका मेघ-गर्जनाके समान जोशीला भाषण हुआ।

"भारत माताकी जय", "महात्मा गांधीकी जय" के निनादसे आसमान गूंज उठा। सत्याग्रही स्वयंसेवक नीचे झुक-झुक कर नमकसे मुट्ठियां और थैलियां भरने लगे। तत्काल नशेमें चूर यमदूतोंके समान सरकारी सैनिकोंने लाठी और बन्दूकोंके कुन्दोंका अंधाधुंध प्रहार शुरू कर दिया। सूर्योदयके पहले जो छावनी राष्ट्रमाताके लाड़ले स्वयंसेवकोंके उत्साह भरे कलरवोंसे मुखरित हो रही थी, वह घण्टे भरमें ही घायल सैनिकोंकी वेदनाभरी कराहोंसे कंपित हो उठी। यह देखकर छावनीका निरीक्षण करने आये हुए वयोवृद्ध श्री विट्ठलभाई पटेल मर्माहत हो गये। उनकी आंखोंसे अश्रु टपकने लगे, पर घायल स्वयंसेवकोंके उत्साहका पारावार न था। उन्हें न मौतका भय था, न दुःख-दर्दकी परवाह। वे तो नमक लूट लानेके लिए मचल रहे थे। घण्टे भरमें करीब ६०० लोग घायल हो गये। विलेपारले छावनीमें बैठे-बैठे जमनालालजी एकके बाद एक स्वयंसेवकोंके दलको सत्याग्रह-संग्रामका क्रम अखण्ड चालू रखनेके लिए भेजते गये और घायलोंको वापिस बुलवाकर उनकी सेवा-शुश्रूषाका बन्दोबस्त करते रहे। यह देखकर शीघ्र ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। फिर भी छावनीका संचालन व्यवस्थित रूपसे होता रहा और सत्याग्रहके लिए जगह-जगह स्वयंसेवकोंके जत्थे बराबर धरासणा भेजे जाते रहे।

धर्मक्षेत्र धरासणाके समरांगणका वह इतिहास वड़ा ही रोमांचकारी है। राष्ट्रव्यापी अहिंसक संग्रामका वह मानो शक्ति-उत्पादन केन्द्र ही वन गया।

'कौन जानता था?'

नमक-सत्याग्रह एक अजीव और अनोखा आन्दोलन था, जो स्वतंत्रता-संग्रामका मूर्तिमंत प्रतीक वन गया था। इस आन्दोलनके विषयमें पण्डित जवाहरलालजीने लिखा है:

"मार्च १९३० में नमक-कानून तोड़नेके लिए समुद्र-तट पर गांधीजीकी प्रसिद्ध दांडी-यात्रा हुई। अपना धावा शुरू करनेके लिए उन्होंने नमक-करको इसलिए चुना था कि यह कर गरीव लोगों पर वड़ा वोझ था और इस-लिए खास तौर पर वुरा था। अप्रैल १९३० ई०के मध्य तक सविनय-अवज्ञाका संग्राम पूरे जोर पर पहुंच गया था। हर जगह केवल नमक-कानून ही नहीं तोड़ा गया, वल्कि दूसरे कानून भी तोड़े गये। देश भरमें शांतिपूर्ण वगावत फैल गई और उसे कुचलनेके लिए नये-नये कानून और आर्डिनेंस एकके वाद एक तेजीके साथ निकलने लगे। पर ये आर्डिनेंस ही सविनय-अवज्ञाके लक्ष्य वन गये। सामूहिक गिरफ्तारियां हुईं। और लाठियोंकी पशुतापूर्ण मार और शांतिपूर्ण भीड़ों पर गोलियां चलना, कांग्रेस कमेटियोंका गैर-कानूनी घोषित किया जाना, अखवारोंका मुंह वन्द किया जाना, सेन्सरका विठाया जाना और मार-पीट तथा जेलोंमें सख्तीका व्यवहार—ये सव रोजमर्राकी घटनाएं हो गईं। एक ओर तो आर्डिनेन्सों द्वारा किया जानेवाला शासन था, दूसरी ओर इन्हें निश्चित और व्यवस्थित ढंगसे तोड़ा जाता था। साथ-साथ विदेशी माल और अंग्रेजी कपड़ेका वहिष्कार भी चल रहा था। लगभग एक लाख व्यक्ति जेलोंमें गये और कुछ समयके लिए भारतके इस शांतिपूर्ण परन्तु दृढ़तापूर्ण संघर्ष पर दुनिया भरका ध्यान लगा रहा।"[1]

देशके उन दिनोंके वातावरणका वर्णन पू० जमनालालजीने स्वयं विशुद्ध वलिदानकी सार्थकताके रूपमें इस प्रकार किया है:

"वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति अथवा देशने कहां तक प्रगति की है, किन साधनोंको लेकर यह प्रगति हुई है, इसका पूरा वर्णन करनेके लिए

---

१. संक्षिप्त विश्व-इतिहासकी झलक—लेखक: जवाहरलाल नेहरू, पृ० ४०६-०७।

तो १९२० के सत्याग्रह-आन्दोलनसे लेकर सन् १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलन तकका विचार करना होगा। सन् १९२० का अहिंसात्मक असहयोग अथवा सत्याग्रह-आन्दोलन सफल हुआ या असफल? इस बारेमें कई लोगोंको संदेह था। लेकिन सन् १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलनने इस सन्देहको मिटा दिया है। देशकी वेदी पर किया हुआ एक भी शुद्ध बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाता। तब सैंकड़ों-हजारों आदमियोंका वह बलिदान कैसे व्यर्थ जा सकता था? उस समय देशप्रेमकी जो लहर उठी थी, स्वराज्य-प्राप्तिकी जो भूख पैदा हुई थी, वह कम-ज्यादा भले ही होती रहे, पर जब तक भारतको पूर्ण स्वराज्य नहीं मिल जाता, तब तक वह पूर्ण शान्त नहीं हो सकती।

"पूज्य महात्माजीका वाइसरायके नाम लिखा पत्र, उनकी दांडीकी जगत-प्रसिद्ध यात्रा और उसके बादका सविनय कानून-भंग आन्दोलन, ये ऐसी घटनाएं हैं जो आपके सामने ही हैं। जिस समय साठ वर्षका एक दुबला-पतला वृद्ध अस्सी आदमियोंको साथ लेकर सत्याग्रह-आश्रम, साबरमतीसे दांडीके किनारेकी ओर कूच करनेके लिए निकला, उस समय कौन जानता था कि इससे ऐसी शक्ति उत्पन्न होगी, जो संसारकी सबसे बड़ी सल्तनतके दांत खट्टे कर देगी? लेकिन कहावत है कि श्रद्धा पर्वतको भी हिला सकती है। जगह-जगह संग्राम-समितियां स्थापित की गईं और देशके कोने-कोनेसे स्त्री, पुरुष व बालक जेलमें जाने और लाठियोंके प्रहार सहनेके लिए तैयार हो गये।"[1]

भारतवर्षमें स्वराज्यकी साधनाका सिलसिला बड़ा लम्बा चला। उसके अन्तर्गत सत्याग्रह-आन्दोलन तो अनेक हुए, पर परिपूर्ण रूपसे योजनाबद्ध स्वतन्त्रता-संग्राम तो एक यही हुआ, जिसमें सर्वसाधारण प्रजाजनोंने भी पूर्ण सहयोग प्रदान किया। 'नमक-सत्याग्रह' के नामसे यही विश्व-विख्यात हुआ है।

जीवनका संयोजन

नमक-सत्याग्रह-आन्दोलनके सिलसिलेमें स्वतन्त्रता-संग्रामके सेनानी जमनालालजी विलेपारले छावनीमें गिरफ्तार करके नासिक जेल भेज दिए गए

---

१. 'रचनात्मक राजनीति' से।

थे। वहां ४ नवम्बर, १९३०, सोमवारको उन्हें ४१ वर्ष पूरे हुए और ४२ वां चालू हुआ। उस दिन अपने जीवन-कार्योंका लेखा-जोखा करते हुए, आगामी वर्षमें क्या-क्या काम करने हैं, इस विषयमें पू० जमनालालजीने वर्धा महिलाश्रमकी संस्थापिका पू० बहन शान्ताबाई रानीवालाको, जिनको वे अपनी बेटियोंसे भी अधिक मानते थे, निम्न पत्र लिखा था:

४ नवम्बर, १९३०

चि० शान्ता,

जन्मदिन निमित्त शुभ आशीर्वाद। मैंने मेरे इस ४२ वें वर्षमें भी परमात्मासे खूब कसकर प्रार्थना की है कि वह सच्चाई व पवित्रताके साथ सेवाकार्य करनेका मुझे बल प्रदान करे। अगर शरीर कायम रहा तो 'जेल-महल' के अन्दर रह कर भी नीचे लिखी बाबतमें प्रयत्न करनेका निश्चय किया है:

१. अस्पृश्यता-निवारण। कम-से-कम एक मन्दिर व पांच कुएं खुलवाना।

२. एक बाल-विधवा या अन्तर-उपजातीय सम्बन्ध करवाना। (विवाह वातावरण शान्त होनेके बाद)।

३. पर्दा करनेवाली कम-से-कम दो बहनोंका घूंघट खुलवाना।

४. एक सच्चा मित्र, जिसका जीवन भर साथ निभ सके, प्राप्त करना। हो सके वहां तक मुसलमान, अस्पृश्य, पारसी, क्रिश्चियन या अंग्रेजमें से हो।

५. कम-से-कम एक कुटुम्बका, जो चरित्रवान हो और सच्चाईके साथ सेवा करता हो, पता लगाकर उसके आर्थिक कष्टमें सहायता करना।

६. कम-से-कम एक कुटुम्ब, जिसका देशसेवामें अधिक उपयोग हो सके, तैयार करना।

७. कीर्तिके लिए सेवाकार्य करनेकी लालसा (जो बीच-बीचमें मनमें दिखाई देती है) का व होशियारीका अभिमान याने व्यावहारिक घमण्डकी मात्राको कम करनेका जोरके साथ प्रयत्न करना। एकदम नष्ट होना बहुत कठिन है। . . .

मेरी समझसे तुम नीचे लिखी बातोंमें खुदके लिए निश्चय कर सकती हो :

१. जन्मभर तक घूंघट नहीं निकालना, किसी भी हालतमें (ब्यावर जाना पड़े तो भी)।

२. दूसरी बहनोंको समझाकर उनका घूंघट-पर्दा दूर करा सकती हो।

३. स्वराज्य प्राप्त न हो वहां तक खादीके सिवाय दूसरा वस्त्र नहीं पहनना। बादमें भी देशकी हालत देखकर जो निश्चय हो उस मुताबिक स्वदेशीका उपयोग करना व दूसरोंके लिए भी प्रयत्न करना।

४. जान-बूझकर झूठ बोलनेकी आदत हो तो उसे हटाना व सचाई, निर्भयता व नम्रताके साथ मानव-समाजकी सेवावृत्ति बढ़ाने व उसे कार्यरूप में लानेका हिम्मतपूर्वक प्रयत्न करना।

५. घरमें उद्योग करनेमें, बाहर विशेषत: देशसेवा करनेवाली चरित्रवान स्त्रियोंमें, व आवश्यकता पड़े तो उसी प्रकारके पुरुषोंकी संगतमें याने अपनेसे आचरणमें जो ऊंचे व उदार हों, उनकी संगतमें समय बिताना। . . .

जेलमें चरखा मिलनेके बाद मैंने आज तक ८० हजार बार सूत कात लिया है। दिनचर्या खूब ठीक चल रही है।

जमनालालका आशीर्वाद[1]

समाज-सुधार तथा प्रजाके अधिकार

राष्ट्रीय उत्थानकी दृष्टिसे शिक्षा, राष्ट्रभाषा, खादी, ग्रामोद्योग आदिकी तरह अस्पृश्यता-निवारणके संबंधमें जमनालालजीने कहा है :

"जब तक हिन्दू जातिमें अस्पृश्यताका कलंक कायम है, तब तक हम सच्चे स्वराज्यके अधिकारी नहीं हो सकते। इसलिए यह प्रश्न किसीसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। पिछले दस वर्षोंमें पूज्य महात्माजी तथा कांग्रेसके प्रयत्नसे अस्पृश्योंके संबंधमें लोगोंकी भावनामें कुछ सुधार हुआ है। लेकिन खाली भावनासे काम नहीं चल सकता। उस भावनाको कार्यमें परिणत

---

१. नासिक जेल-महल, सोमवार, कार्तिक शुक्ल १२, सं० १९८७।

करना चाहिये। जब तक हम लोग अपने मंदिर, कुएं, विद्यालय, धर्मशाला आदि सार्वजनिक स्थानोंमें स्पृश्य जातिके लोगोंके बराबर ही अस्पृश्योंको हक नहीं देते, तब तक उनके प्रति मौखिक सहानुभूति दिखानेसे कोई फायदा नहीं है।"

इसी तरह हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके महत्त्वको समझाते हुए उन्होंने कहा: "इस समय तो यह प्रश्न इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि देशका भविष्य ही इस प्रश्नके हल होने पर निर्भर है ऐसा मालूम होता है। हिन्दू-मुसलमानों का आपसमें प्रेम बढ़े और वे राष्ट्रीय आन्दोलनोंमें साथ-साथ भाग लें, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

"एक क्षणके लिए मैं आपका ध्यान कानपुरकी घटनाके कुछ ऐसे लक्षणोंकी ओर खींचना चाहता हूं, जिनसे प्रत्येक भारतवासीके दिलमें संतोष और अभिमानकी लहर उठना स्वाभाविक है। यह बात निर्विवाद है कि कानपुरमें कुछ मुहल्ले दंगेसे करीब-करीब अलिप्त रहे। हिन्दुओंने मुसलमानों का, मुसलमानोंने हिन्दुओंका साथ दिया और कलुषित वायुमण्डलके असरसे प्रयत्नपूर्वक दूर रहे। लेकिन कानपुरने हदसे ज्यादा कमाल कर दिखाया। उनमें श्री गणेशशंकरजी विद्यार्थीका आत्म-बलिदान अपने ढंगका निराला है। उनके आगे मेरा सिर झुक जाता है। भारतके इतिहासमें उनका नाम सदैव अमर रहेगा। क्या ही अच्छा हो यदि हममें – हिन्दू और मुसलमानोंमें जगह-जगह गणेशशंकरजी जैसे वीर पैदा हों!"

ऐसी हार्दिक मनोकामना व्यक्त करनेके बाद उन्होंने आगे अनुशासन का महत्त्व इस तरहसे समझाया है: "प्रत्येक कार्यकी सफलता बहुत अंश तक अनुशासन पर निर्भर होती है। कांग्रेसकी वर्किंग कमेटी और ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटीसे लेकर कांग्रेसकी छोटीसे छोटी संस्था तक सबका अच्छा संगठन हो, अधिकसे अधिक कांग्रेसके सदस्य हों और कार्यकर्ता भले ही थोड़े हों, लेकिन उनमें अनुशासन हो, तभी कांग्रेसकी तरफसे कोई काम सफलतापूर्वक किया जा सकता है।"

इसके आगे रामराज्यके स्वरूपका दर्शन इस प्रकार प्रकट होता है:

"कराची कांग्रेसमें जितने प्रस्ताव पास हुए, उनमें दो प्रस्ताव मुख्य थे। एक अस्थायी संधिके सम्बन्धका, दूसरा प्रजाके अधिकारोंकी घोषणाका।

प्रजाके अधिकारों सम्बन्धी प्रस्ताव भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। स्वराज्यका वास्तवमें क्या अर्थ है, इसका इस प्रस्ताव द्वारा खुलासा किया गया है। कांग्रेस हमेशासे भारतवर्षके गरीब किसानों और मजदूरोंकी न्यायोचित मांगके पक्षमें रही, यह इससे स्पष्ट हो जाता है। स्वराज्य-सरकारके वाइसरायकी ५०० रु. महीनेकी सीमा हंसीमें नहीं, लेकिन विचारपूर्वक रखी गई है। जिस भारतवर्षमें करोड़ों आदमियोंको भरपेट खानेको नहीं मिलता हो, उसके वाइसराय अर्थात् सबसे बड़े सेवकको अपने भरण-पोषणके लिए इससे अधिक और क्या दिया जा सकता है? लोकल वोर्ड, म्युनिसिपैलिटी तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओंमें, जहां-जहां इस प्रस्तावको हम अमलमें ला सकें वहां हमें अभीसे उसे अमलमें लानेका प्रयत्न करना चाहिये।

"कांग्रेसके इस प्रस्तावका खुलासा पूज्य महात्माजीसे मैंने पूछा, तव उन्होंने मौनवार होनेके कारण इसका उत्तर मुझे लिखकर दिया। महासभाके इस प्रस्तावका अर्थ आप लोग अच्छी तरह समझ जायं, इससे पूज्य महात्माजीके शब्दोंको ही मैं आपके सामने रख देना चाहता हूं:

धर्मराज्यकी ओर

'महासभाका सबसे भारी प्रस्ताव प्रजाके अधिकारके विषयमें है। उससे सबको पता लग जाता है कि महासभाकी दृष्टिमें स्वराज्यके माने क्या हैं? इसे ध्यानपूर्वक पढ़नेसे पता चलेगा कि स्वराज्य गरीबोंके लिए होगा। इसीको हम रामराज्य कह सकते हैं। रामका अर्थ न्यायमूर्ति। रामका अर्थ धर्म। रामका अर्थ सत्य। रामका अर्थ अहिंसा।

'अब देखें इस प्रस्तावमें क्या लिखा है। सर्वधर्मकी रक्षा होगी। सर्व-धर्मवालोंको अपने धर्मके पालनमें कोई दिक्कत नहीं होगी। किसी धर्म या धर्मीका पक्षपात नहीं किया जायगा। काश्तकारोंसे न्यायपूर्वक लगान लिया जायेगा। मालिक जुल्म नहीं कर सकेगा। मालिक और काश्तकारका सम्बन्ध निर्मल होगा। धनिक धनके मालिक नहीं, परन्तु संरक्षक माने जायेंगे। . . .

'बात यह है कि हम सत्य और अहिंसाके पथ पर जा रहे हैं या नहीं, इस बारेमें शंका आ जाती है। सत्यादिका पालन युक्ति समझ कर किया जाय, उसमें से धर्मराज्यकी प्राप्ति मैं नहीं देखता हूं। धर्मराज्य तव

ही होता है जब सत्य और अहिंसाको धर्म माना जाय। क्या कोई पितृ-भक्तिको युक्ति मानकर भक्ति कर सकता है? युक्ति उसे कहा जाय, जिसको दिल चाहे तब हम छोड़ सकते हैं। सत्य कष्टदायक होने पर असत्यका आचरण किया जाय, उसका नाम युक्ति है। मरणांत तक सत्यका पालन किया जाय, उसका नाम धर्म है।

'इसलिए अब हम देखें कि उस प्रस्तावके कौनसे हिस्से हैं, जिन पर हम आजसे अमल कर सकते हैं। यदि शक्य वस्तु हम आज न करें, तो स्वराज्य वंध्यापुत्र जैसा होगा। जो हम आज करनेके लिए तैयार नहीं हैं, उसे भविष्यमें करनेके लिए तैयार हो जायेंगे, ऐसा नहीं कह सकते।

'प्रस्तावमें लिखा है कि अस्पृश्यता नहीं होगी। क्या हमने आज उसे निकाल दिया है? स्वराज्यमें मद्यपानके लिए कोई भी सुभीता नहीं होगा। क्या आज धनिक गरीबोंको अपनाते हैं? गरीबोंने धनिक-द्वेष छोड़ दिया है? स्वराज्यमें सबसे ज्यादा तनख्वाह हर माह ५०० रु० से अधिक नहीं होगी। क्या आज अधिक पानेवाले अधिक धन परोपकारमें दे देते हैं? क्या करोड़-पतियोंने अपना जीवन उस आदर्शके अनुकूल बनाया है? इन सब प्रश्नोंका निश्चयात्मक उत्तर देना मुश्किल है।

'हम आहिस्ते-आहिस्ते धर्मराज्यकी ओर जा रहे हैं। यह समझा जाय कि यह प्रस्ताव हमारी ऊर्ध्वगतिका वेग बढ़ानेका प्रोत्साहन हमें दिलाता है। मैं उम्मीद करता हूं कि सबसे पहले हम उस प्रस्तावका अध्ययन करें जिस हिस्से पर आजसे अमल हो सकता है। उसका प्रचार करना हम आरम्भ कर देंगे। सबसे अच्छा आरम्भ अपनेसे ही होता है।'

"मुझे आशा है कि आप लोग पूज्य महात्माजीके इन शब्दों पर ध्यान देकर इस प्रस्तावको अमलमें लानेके लिए पूरा प्रयत्न करेंगे। ईश्वर हम लोगोंको सुबुद्धि और शक्ति प्रदान करे। वन्देमातरम्।"[1]

कांग्रेसका ध्येय

५ मार्च, १९३१ को गांधी-इर्विन समझौता हुआ। तत्कालीन गवर्नर-जनरलके वक्तव्यका सार यह था:

१. 'रचनात्मक राजनीति' से।

"विधान-सम्बन्धी प्रश्न पर सम्राट्-सरकारकी अनुमतिसे यह तय हुआ कि हिन्दुस्तानके वैध-शासनकी उसी योजना पर आगे विचार किया जायगा, जिस पर गोलमेज परिषद्में पहले विचार हो चुका है। वहां जो योजना बनी थी, संघ-शासन उसका एक अनिवार्य अंग है।"

गांधीजीने समझौतेसे निबटते ही उसी शामको अमरीकन, अंग्रेज व भारतीय पत्रकारों और प्रेसमैनोंके सामने एक युगान्तरकारी वक्तव्य दिया। उसका महत्त्वपूर्ण अंश यह है:

"कांग्रेसका ध्येय तो पूर्ण स्वराज्य है, जिसको अंग्रेजीमें अनुवाद करके 'पूर्ण स्वाधीनता' कहा जाता है। अन्य राष्ट्रोंकी भांति भारतका यह जन्म-सिद्ध अधिकार है और भारत इससे कम पर संतुष्ट नहीं हो सकता।

"स्वराज्यका मूल अर्थ तो स्वशासन है। स्वराज्यका मतलब है आत्म-नियन्त्रित शासन और पूर्णका मतलब है पूरा—'पूर्ण स्वशासन'।"

उसीको प्राप्त करनेके लिए भारतमें वर्षों तक स्वतन्त्रता-संग्राम चलता रहा। और स्वाधीनताकी बलिवेदी पर ही सरदार भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु जैसे भारत-माताके लाड़ले लाल हंसते-हंसते कुर्बान हो गये।

'महायज्ञमें समर्पण'

पूज्य जमनालालजी स्वेच्छासे बापूजीके पांचवें पुत्र बने, उसी तरह पूज्य बाबा विनोबा स्वेच्छासे बापूजीके परम प्रिय भक्त और आज्ञाकारी सेवक बने। यह उनके बापूको लिखे गए निम्न शब्दोंसे प्रमाणित होता है: "आपके महायज्ञमें समर्पित हो जानेकी ईश्वरसे मुझे पात्रता दिलाइयेगा।" विनोबाजीकी यह अनोखी निष्ठाभरी आकांक्षा स्वयं ईश्वरने अद्भुत रूपसे परिपूर्ण की। १९४० में बापूजीने राष्ट्रीय रूपसे विनोबाजीको 'स्वतंत्रता-संग्रामका प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रही' चुना। इसीसे राष्ट्रपिताके राष्ट्रीय महायज्ञमें समर्पित होनेकी उनकी पात्रता सिद्ध हो जाती है।

विलेपारले छावनीसे जमनालालजीको तुरन्त ही गिरफ्तार करके नासिक जेल भेजा गया। फिर वहांसे धुलिया जेल भेज दिया गया था, जहां अत्यंत कठोर साधनामय जीवन उन्होंने व्यतीत किया। बैलोंकी तरह कुओंसे पानी

खींचनेके लिए मोठ पर स्वयं जुत जाते थे और जेलकी महिला-कैदियोंके निमित्त और भी अनेक बैरकोंमें पानी भर दिया करते थे। वहां कुलगुरु स्वरूप आचार्य विनोबाजीका स्नेहभरा सत्संग मिल जानेसे उसका पूरा लाभ उन्होंने उठाया। विनोबाके गीता-प्रवचन धुलिया जेलमें ही हुए और उनका प्रथम प्रकाशन भी वहींसे हुआ। जमनालालजी स्वयं प्रकाशक बने। इस तरह सन् १९३२ में जमनालालजी और विनोबाजी दोनों धुलिया जेलमें गुरु-शिष्य भावसे रहे। वहां 'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'के रूपमें अच्छा सत्संग जमा था।

श्रद्धेय श्रद्धा

सन् १९३३ में जमनालालजी स्वतन्त्रता-संग्रामके अन्तर्गत कारावासकी सजा पाकर यरवडा-मन्दिरमें पहुंचा दिये गये थे। तब जेल-जीवनमें भी अनायास बापूजीके सान्निध्यके सुखका अनुभव उन्होंने पाया। वहांसे १२ जनवरी, १९३३ को उन्होंने पू० मांको निम्न पत्र लिखा, जिससे पू० बापू और विनोबाजीके प्रति उनकी श्रद्धा कितनी गहरी थी इसका बोध होता है। वे लिखते हैं:

"पूज्य विनोबाजी तो नालवाड़ी चले गये। वहां उनको किसी प्रकार का कष्ट न हो इसकी व्यवस्था भी पूज्य जाजूजीकी सलाहसे कर देना। कुआं वगैरह बनवाना पड़े तो बनवा लेना। और भी जरूरी हो सो देख लेना।

"तुम्हें इस १६ ता० को यानी माघ वदी पंचमी, सोमवारको चालीस वर्ष पूरे होकर इकतालीसवां वर्ष चालू होता है। उस रोज परमात्मासे प्रार्थना करूंगा कि तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान करे व तुम्हारा स्वास्थ्य उत्तम रखते हुए तुम्हारे शरीर व मनसे सेवाकार्य, खासकर बापूजीने तुम्हें पहले लिखा उसके मुताबिक हरिजन-कार्य करनेकी सब प्रकारसे योग्यता प्रदान करे। तुम्हारे जन्मदिनके निमित्त मेरा प्रेमसहित आशीर्वाद स्वीकार करना। तुम भी परमात्मासे सद्बुद्धि प्रदान करनेकी खूब प्रार्थना करना। उस रोज पूज्य विनोबाजीकी संगतमें नालवाड़ीमें रहना।

"चि० कमलको ता० १ फरवरी, यानी माघ शुक्ला ७, बुधवारको १८ वर्ष पूरे होकर उन्नीसवां वर्ष लगेगा। उसको भी परमात्मा सद्बुद्धि प्रदान

करे। वह अपना जीवन पवित्रताके साथ सेवाकार्यमें लगा सके व उसे सफल बना सके और चिरंजीवी हो, ऐसी मैं तो प्रार्थना करूंगा ही। मेरी ओरसे तुम भी उसे आशीर्वाद प्रदान करना। वह भी जन्मदिनके रोज अपने भावी जीवनका विचार कर कुछ निश्चय करना चाहे, तो पूज्य विनोबा व तुम्हारी रायसे कर सकता है।"

रचनात्मक कार्यक्रम

कांग्रेसकी कार्यसमितिकी बैठक १८, १९ और २० मईको पटनामें हुई। उसने सत्याग्रहकी मौकूफी और कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें सिफारिशें कीं, जिन्हें महासमितिने स्वीकार कर लिया। कार्यसमितिने, महासमितिके सत्याग्रह-बन्दीके निश्चयके अनुसार, सारे कांग्रेसवादियोंको उसका पालन करनेका आदेश दिया। देशभरके कांग्रेसवादियोंने इस निश्चयका पालन किया और २० मई, १९३४ को सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। सत्याग्रह-बन्दीके साथ ही कार्यवाहक अध्यक्षका पद स्वभावतः ही उठा दिया गया। कांग्रेसके अध्यक्ष सरदार पटेल इस समय जेलमें थे, इसलिए उनकी अनुपस्थितिमें सेठ जमनालाल बजाज कार्यसमितिके सभापति बनाये गये और कांग्रेसके नये अधिवेशन तक उन्हें कांग्रेसके अध्यक्षकी हैसियतसे सारा काम चलानेका अधिकार दिया गया।

. . . कार्यसमितिकी बैठक १२-१३ जूनको वर्धामें और १७-१८ जूनको बम्बईमें हुई। इन बैठकोंमें नव-संगठित कांग्रेस कमेटियोंके लिए एक रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया गया। हाथसे कातकर खद्दर तैयार करना और खद्दर तैयार करनेवाले इलाकेमें उसका प्रचार करना, अस्पृश्यता-निवारण, साम्प्रदायिक एकता, मादक द्रव्य-सेवनके त्याग और नशीली वस्तुओंसे दूर रहनेका प्रचार करना, राष्ट्रीय ढंगकी शिक्षाकी वृद्धि, छोटे-छोटे उपयोगी उद्योग-धन्धोंकी वृद्धि, ग्राम्य जीवनका आर्थिक, शारीरिक, सामाजिक और आरोग्य सम्बन्धी दृष्टिसे पुनस्संगठन करना, वयस्क गांववालोंमें उपयोगी ज्ञानका प्रसार करना और मजदूरोंका संगठन आदि इस कार्यक्रममें सम्मिलित किए गए।[१]

---

१. 'कांग्रेसका संक्षिप्त इतिहास' से, पृ० २७४–७५।

बापूजीकी प्रारम्भिक एवं खादीकी प्रायोगिक रचनात्मक प्रवृत्तियोंके आधार-स्तम्भ स्व० श्री मगनलालभाई गांधीके नाम वर्धामें 'मगनवाड़ी' नामक संस्था कायम हुई है। उस जगह महात्मा गांधीजीकी प्रेरणासे रचनात्मक प्रवृत्तियोंके प्रदर्शनके रूपमें 'मगन संग्रहालय' बना हुआ है। उसीमें १९६९ में 'जमनालाल स्मृति-दर्शन' प्रदर्शनीका उद्‌घाटन भी हो गया है। जहां पहले बगीचा था वहीं पितामह बच्छराजजीका बनवाया हुआ पुराना बड़ा मकान है। उसीके ऊपर पूज्य बापूजी १९३३ की हरिजन-यात्राके बाद १९३४ से १९३६ तक रहे थे। उनके द्वारा वहींसे राष्ट्रका नेतृत्व होता रहा था।

सन् १९३६ का वर्ष वर्धाके लिए ऐतिहासिक रूपसे बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी वर्धा नगरमें स्थापित मगनवाड़ीसे ३० अप्रैलको पैदल चलते हुए सेगांव नामक एक छोटेसे गांवमें रहनेके लिए जा पहुंचे। यही आज सेवाग्रामके नामसे दुनियाभरमें प्रसिद्ध हुआ है और पूज्य बापूजीका परम पवित्र पुण्यधाम सिद्ध हुआ है। भविष्यमें युग-युगों तक अखिल विश्वके मानवोंको शान्तिमय उत्क्रांतिकी प्रेरणा यहींसे प्राप्त होती रहेगी। ऐसा यह पूज्य बापूजी और जमनालालजीकी सम्मिलित स्मृतिमें स्थापित हुआ पावन तीर्थधाम है, जहांसे स्वराज्यकी आखिरी लड़ाई लड़ी गई और भारतवर्षको स्वराज्यकी सिद्धि प्राप्त हुई। भारतके कर्णधारोंका भारतको आजाद बनानेका महान स्वप्न तो साकार हुआ। अब बापूका 'मेरे सपनोंका भारत' हम सबको मिलकर बनाना है।



शिक्षा-परिषद्

वर्धाके मारवाड़ी शिक्षा-मण्डलकी रजत-जयन्तीके अवसर पर महात्मा गांधीके सभापतित्वमें अखिल भारत शिक्षा-परिषद् २२ और २३ अक्तूबर, १९३७ को नवभारत विद्यालयमें हुई। इस परिषद्के लिए विभिन्न प्रान्तोंसे कोई ९० सज्जन आमन्त्रण पाकर उपस्थित हुए थे।

शुरूमें मारवाड़ी शिक्षा-मण्डलकी ओरसे आये हुए सज्जनोंका स्वागत करते हुए मण्डलके सभापति श्री जमनालाल बजाजने कहा :

"मारवाड़ी शिक्षा-मण्डलकी ओरसे और इस शिक्षा-परिषद्की स्वागत-समितिकी ओरसे मैं आप सबका हार्दिक स्वागत करता हूं। कुछ समय पहले मारवाड़ी शिक्षा-मण्डल, वर्धाने अपनी रजत-जयन्ती मनानेका निश्चय किया था। उससे कुछ ही दिनों बाद बापूजीने 'हरिजन'में अपनी शिक्षा-सम्बन्धी योजनाकी चर्चा शुरू की। इसके सिलसिलेमें नवभारत विद्यालयके आचार्य श्री आर्यनायकम्जी और मण्डलके प्रधान-मन्त्री श्री श्रीमन्नारायणजीके साथ भी बापूजीकी कुछ चर्चा हुई। इस परसे इन दोनों सज्जनोंको यह प्रेरणा हुई कि क्यों न मण्डलकी रजत-जयन्तीके अवसर पर देशके कुछ चुने हुए शिक्षाशास्त्रियोंकी एक परिषद् बुला ली जाय? उन्होंने अपना यह विचार बापूजीके सामने रखा और बापूजीने उसका स्वागत किया। इसी प्रेरणा और उत्साहका यह फल है कि आज हम सब यहां इस रूपमें इकट्ठे हुए हैं। इस समय हमारे देशके सात प्रान्तोंमें कांग्रेसके मन्त्रि-मण्डल काम कर रहे हैं। और उनके सामने लाखोंकी शिक्षाका और शिक्षितोंकी बेकारीका सवाल मुंह खोले खड़ा है। इस विकट समस्याको हल करनेके लिए यह जरूरी था कि कोई देशव्यापी योजना हमारे सामने हो, जिस पर हम विश्वासके साथ अमल कर सकें। मैं समझता हूं कि बापूजीकी योजना ऐसी योजना ठहरेगी, जिस पर इन दो दिनोंमें हमें और आपको गम्भीर विचार करना है।"

शिक्षा-परिषद्‌की कार्रवाई शुरू करते हुए उसके सभापति महात्मा गांधीजीने अपनी योजनाकी व्याख्यामें करीव ८५ मिनट तक भाषण किया, जिसका सार इस प्रकार है :

"इस सभाका आयोजन करनेमें मेरा वहुत कम हाथ रहा है। इसके प्रवन्धमें भाई श्री श्रीमन्नारायणजीने वहुत मेहनत की है। उनका नाम आप सुन चुके हैं। वे इस मारवाड़ी शिक्षा-मण्डलके प्रवन्ध-मन्त्री हैं। खेद है कि वे वीमार हैं और इस वक्त यहां मौजूद नहीं हैं। पहले उन्होंने मुझसे यह कहा कि मारवाड़ी शिक्षा-मण्डलकी रजत-जयन्तीके मौके पर मेरे शिक्षा-सम्वन्धी नये विचारोंकी चर्चाके लिए यदि चन्द भाइयोंको वुला लिया जाय तो कैसा हो? मुझको उनकी यह वात अच्छी लगी।

"मेरा तो काम ही यह है कि जो कुछ मेरे दिलमें वस जाय उसे आप सवके सामने रख दूं।

"अगर हिन्दुस्तानने हिंसाको छोड़ देनेका निश्चय कर लिया है, तो उसे जिस अनुशासनमें होकर गुजरना पड़ेगा, शिक्षाका यह तरीका उसका खास अंग होगा। हमसे कहा जाता है कि इंग्लैंड शिक्षा पर लाखों रुपया खर्च करता है और अमेरिकाका भी यही हाल है। मगर कहनेवाले भूल जाते हैं कि उनका यह धन लूटका धन होता है। लूट या शोषणकी इस कलाको उन्होंने विज्ञानका रूप दे रखा है और यही वजह है कि वे आज अपने वालकोंको इतनी महंगी शिक्षा दे सकते हैं। लेकिन हम शोषणकी वात न तो सोच सकते हैं और न सोचना ही पसन्द करेंगे। इसलिए हमारे पास शिक्षाकी इस अहिंसात्मक योजनाके सिवा और कोई उपाय नहीं रह जाता।

"१२-१३ सालकी उमरके वाद वच्चोंका दिमाग काम करने लगता है, उसका विकास शुरू होता है। इस उमर तक तो उनको जो कुछ भी सिखाया-पढ़ाया जाता है, वे सीख-पढ़ लेते हैं। वादमें वहुत कुछ आधार परिस्थितिका होता है। मां-वापके विचारों और आदर्शोंका भी असर पड़ता है। अगर वच्चोंको सात-आठ साल तक किसी खास तरहकी शिक्षा दी जाये, तो इस अर्सेमें इस शिक्षाके अनुसार वे एक खास 'स्टैंडर्ड' के आदमी जरूर वन जायेंगे। सवसे पहले जरूरतकी वात तो यह है कि वच्चोंको

तालीमका एक पूरा 'प्लान' बना लिया जाय और इस 'प्लान' के अनुसार सबको एकसी तालीम दी जाय। उसके बाद जैसे जिसकी परिस्थिति और रुचि हो, जैसे खयालात हों, वैसे अलग-अलग प्रबन्ध किया जाय। . . ."

वर्धा शिक्षा-परिषद्में सर्व-सम्मतिसे स्वीकृत प्रस्ताव :

"१. इस परिषद्की रायमें देशके सब बच्चोंके लिए सात सालकी मुफ्त और लाजिमी तालीमका इन्तजाम होना चाहिये।

२. तालीम मातृभाषाके जरिये दी जानी चाहिये।

३. यह परिषद् महात्मा गांधीकी इस तजवीजका समर्थन करती है कि इस तमाम मुद्दतमें शिक्षाका केन्द्र किसी किस्मकी उत्पादक दस्तकारी होनी चाहिये। बच्चोंमें जो दूसरे गुण पैदा करने हैं और उनको जो शिक्षा देनी है, उसका सम्बन्ध जहां तक हो सके इसी केन्द्रीय दस्तकारीसे होना चाहिये। इस दस्तकारीका चुनाव बच्चोंके वातावरण और स्थानिक परिस्थितियोंको ध्यानमें रखकर किया जाना चाहिये।

४. परिषद् आशा करती है कि तालीमके इस तरीकेसे धीरे-धीरे अध्यापकोंकी तनखाहका खर्च निकल जायेगा।"



व्यक्तिगत सत्याग्रह

"सत्यधर्मकी उपासनाके लिए मैं जिस प्रवृत्तिमें पड़ा हूं, उसका बाह्य स्वरूप हिन्द स्वराज्य है। उसका आन्तरिक स्वरूप हर व्यक्तिका स्वराज्य है।" राष्ट्रपिताकी इस जीवन-दृष्टिको जमनालालजीने भलीभांति अपना लिया था। उनके जीवनके विविध प्रसंगोंसे यह स्पष्ट होता है।

सन् १९३९ में जयपुर सत्याग्रहके सिलसिलेमें जमनालालजी नजरबन्द थे। उन्हें शहरसे बड़ी दूर जंगलमें मोरांसागर नामक स्थान पर कर्णावतोंके बागके खंडहरमें ले जाया गया। वहां एक कर्मयोगी, वानप्रस्थीकी तरह उन्होंने अपनी दिनचर्या खूब अच्छी तरहसे जमा ली थी। पत्र-व्यवहार, पठन-पाठन, सूत-कताई आदि सारे कार्य वे बड़ी नियमिततासे किया करते थे। तब २८ फरवरीकी अपनी दैनन्दिनीमें उन्होंने लिखा है: "मुझे विनोबाके संसर्गमें अधिक रहना चाहिये। उसीसे मेरा मार्ग साफ, निष्कलंक हो सकेगा; जीवनमें असली उत्साह प्राप्त हो सकेगा।" पू० विनोबाजीके प्रति ऐसी अप्रतिम श्रद्धा जमनालालजीके हृदयमें दिनोंदिन दृढ़ होती जा रही थी।

जेलके कष्टमय जीवनका उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। जब मामला स्थानीय डाक्टरोंकी शक्तिके बाहरका हो गया, तब जमनालालजीको इस शर्त पर छोड़ना स्वीकार किया गया कि वे अपने इलाजके लिए विदेश चले जायं। जमनालालजीने इस शर्त पर छोड़ा जाना पसन्द नहीं किया। अन्तमें ९ अगस्त १९३९ को छः महीनेके कष्टमय जेल-जीवनके बाद उन्हें बिना किसी शर्तके छोड़ दिया गया।

जेलसे छूट कर आ जानेके बाद वर्धासे जमनालालजीने श्रद्धेय किशोरलालभाईको जो पत्र लिखा वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। उसमें खुद बापूजीके गहरे मनोमन्थनका दर्शन जमनालालजीके शब्दोंमें इस प्रकारसे मिलता है:

प्रिय भाई,

कल बापूजीने कुछ महत्त्वपूर्ण बातें सुनाईं। वह आपकी और आप जिन्हें योग्य समझें उन कार्यकर्ताओंकी जानकारीके लिए लिखता हूं। यह अखबार वगैरामें प्रकट करनेके लिए नहीं है। इसमें भाषा बापूजीकी नहीं है; उनके कहनेका भावार्थ ही है:

'जैसा कि मैं लिख चुका हूं, मेरे दिलमें यह बात उठ रही है कि मेरे नसीबमें एक बड़ा अनशन लिखा ही गया है। वर्तमान युद्ध, देशकी पराधीन स्थिति और अहिंसा द्वारा हिन्दुस्तानकी आजादी हो जाय तो सारे जगतके लिए उसका महत्त्व, इत्यादि बातें मेरे बलिदानकी अनिवार्यताको मेरे मनमें सिद्ध कर रही हैं।

'जहां तक मैं सोच सकता हूं, यह अनशन शर्तिया ही हो सकता है; मुक्तिके लिए नहीं होगा, बाह्य सिद्धिके लिए होगा। आध्यात्मिक दृष्टिसे यह उत्तम पंक्तिका नहीं माना जा सकता, फिर भी वह सिद्धि इतनी शुद्ध तो है ही कि उस पर एक जन्म न्योछावर किया जा सकता है। पर सिद्धि मिले तो अनशन छूट जा सकता है। यानी एक विशेष सिद्धिके लिए अनशनके रूपमें वह एक तपश्चर्या होगी।

'रचनात्मक कार्यक्रमकी वैसे तो तेरह बातें बताई गई हैं। उनमें और भी बढ़ाई जा सकती हैं। लेकिन उनमें तीन महत्त्वकी हैं। हमारे जीवनमें वे क्रान्ति करनेवाली हैं। खादी, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य। हरिजन और मुसलमानका स्थान यत्किंचित् भी हमसे अलग रखनेका मानसिक भाव ही मैकडोनल्ड-निर्णय और पाकिस्तान है। याद रखें, भिन्नता उन्होंने मांगी नहीं है, हमने ही उन्हें दी है और मांगनेको मजबूर किया है। तब सवर्ण-अवर्ण और हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य तथा खादी हमारे समग्र जीवनकी ही क्रान्ति है।

'इस वक्त जब कानून-भंगका कार्यक्रम चल रहा है, तब जिन्हें रचनात्मक कार्यक्रममें लगे रहनेके कारण जेल नहीं जाना है, वे अपने-अपने काम

दिलचस्पीके साथ करते रहेंगे ही। लेकिन जब दूसरे कार्यकर्ता जेल जानेके आन्दोलन पर जोर दे रहे हैं, उसी समय तुम्हारा रचनात्मक कार्यक्रमके लिए जोशीला आन्दोलन मचाना ठीक न होगा। जनताकी मनोवृत्ति इस समय जेलकी ओर झुकी हुई है। इसलिए उसे वहीं एकाग्र होने दिया जाय।

'पर जब ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाय कि जितने लोगोंको जेलमें जाना या भेजना है, अथवा मैं अनशन कर रहा होऊं अथवा कोई स्थानिक परिस्थिति, जैसी कि आज सिन्धमें है, पैदा हो जाय, तो तुम्हें अपना कर्तव्य और स्थान पूरी तरह संभालना होगा। उस वक्त जैसी प्रेरणा तुम्हारा अन्त:करण करे, उस तरह तुम आन्दोलन करो और अपने प्राण गंवाओ। मेरे मरने पर वैसी ही तुम्हारे अन्त:करणकी प्रेरणा हो तो अनशनकी परम्परा चलाओ। लेकिन मैं यह नहीं कहता कि चलाना जरूरी होगा।

'एक दूसरी परिस्थितिमें भी तुम्हें अपने प्राणोंका बलिदान देनेकी नौबत आ सकती है। यह सम्भव है कि जनताको मजबूर करनेके लिए अंग्रेज सरकार, अथवा वह हार जाय तो दूसरे विजेता, हिन्दुस्तानमें भीषण दमन-नीति चलावें। चन्द भागका निकन्दन (नाश) भी किया जा सकता है। पर निकन्दनसे तो कुछ अंशमें काम सरल हो जाता है। लेकिन बहुत जनताका निकन्दन नहीं किया जायगा। उदाहरणार्थ, जब तक लोग विजेताकी शर्त मंजूर न कर लें, कई देहातोंको चारों ओरसे घेर लिया जायगा। उनके आसपासकी खेतीको विध्वंस किया जायगा। इस तरह लोगोंको भूख-प्याससे तंग किया जायगा। उसके सामने जनताका झुक जाना मुमकिन है। उस वक्त तुम्हें झुक नहीं जाना है। लोगोंको हिम्मत देनी होगी। खुद भूखे-प्यासे रहकर लोगोंको भूख-प्यास सहन करके मर जाने और विजेतासे असहयोग करनेकी सलाह देनी होगी।

'यदि ऐसा कोई अवसर मिल जाय कि इस प्रकारके मिशनकी मनोवृत्ति रखनेवाले कार्यकर्ताओंके साथ बैठकर मैं अपना दिल खोलकर मशविरा करूं तो मुझे खुशी होगी। लेकिन आज मैं उसकी योजना करना नहीं चाहता।'

यह पूज्य बापूजीकी बातोंका सारांश है। मैं यह सोचता हूं कि इस प्रकारकी मनोवृत्ति रखनेवाले व्यक्तियोंकी नामावली किसी एक जगह संग्रह

कर दी जाय तो अच्छा होगा। अपने-अपने प्रान्तके ऐसे कार्यकर्ताओंकी सूची बनाकर गांधी-सेवा-संघके दफ्तरमें भेज दें।[1]

आपका
जमनालाल बजाज

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-संग्रामके लिए आंतरिक रूपसे राष्ट्रपिताका कितना गहरा चिन्तन चलता था और जमनालालजी जैसे अपने निकटस्थ साथियोंके साथ कितनी गहराईसे वे विचार-विनिमय और चर्चा किया करते थे, इस बातका बड़ा स्पष्ट चित्र उपरोक्त पत्रमें व्यक्त होता है।

'हर व्यक्तिका स्वराज्य'

'सत्यके प्रयोग अथवा आत्मकथा' के अनन्य कथाकार महात्मा गांधीजी का समग्र जीवन-चरित्र सत्यके प्रयोगोंकी एक अनूठी और अप्रतिम गाथा है। उसमें सामूहिक रूपसे न्यायका एवं व्यक्तिगत रूपसे सत्यके आग्रहका सिलसिला बराबर चलता रहा है, जिसने आगे चलकर सहज रूपसे अपने आप स्वराज्यकी साधनाका स्वरूप धारण कर लिया। वह साधना भी स्वराज्यके मन्त्रकी सिद्धिके लिए सत्याग्रहकी सप्तपदीके रूपमें ही सिद्ध हुई है। प्रथम दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह, द्वितीय भारत आनेके बाद वीरमगांवका सत्याग्रह, तृतीय चम्पारनका सत्याग्रह, चतुर्थ नागपुरका झण्डा-सत्याग्रह, पांचवां बारडोली सत्याग्रह, छठा नमक-सत्याग्रह और सातवां 'भारत छोड़ो' के रूपमें स्वराज्य-प्राप्तिका सत्याग्रह, जिसमें 'करेंगे या मरेंगे' का संकल्प सार्वजनिक रूपसे सुदृढ़ हुआ और 'भारत छोड़ो' का नारा भी बुलन्द हुआ, जिसकी प्रतिध्वनिके गुंजनसे विदेशी साम्राज्यका सिंहासन डोल उठा। यही है सत्याग्रहकी सप्तपदीका क्रम जिसने बापूजीके सत्यके प्रयोगोंको स्वराज्यकी सिद्धि तक पहुंचा दिया।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजीकी स्वराज्यकी इस साधनाके अन्तर्गत 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' का अपना विशेष महत्त्व है। इसका संकेत 'चि०

---

१. यह मसविदा जमनालालजीने कुछ मित्रोंको भेजनेके लिए बनाया था (१९४०)। 'पांचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद' से।

जमनालालजी 'को सन् १९२२ में लिखे बापूके पत्रमें सहज रूपसे अभिव्यक्त हुआ है। सत्याग्रहकी साधनाका अभिक्रम प्रदर्शित करते हुए बापूजीने लिखा है कि "स्त्री, पुत्र, मित्र, परिग्रह सभी इस सत्यके अधीन रहना चाहिये। सत्यकी शोध करते हुए इनका सर्वथा त्याग करनेके लिए हम तत्पर रहें, तभी सत्याग्रही हुआ जा सकता है।" इतना लिखनेके बाद वे आगे लिखते हैं: "इस (सत्य) धर्मका पालन अपेक्षाकृत सहज हो जाय, इस हेतुसे मैं इस (राजनैतिक) प्रवृत्तिमें पड़ा हूं और तुम्हारे जैसोंको होमनेमें हिचकिचाता नहीं हूं। उसका बाह्य स्वरूप है हिन्द स्वराज्य। उसका सच्चा स्वरूप 'हर व्यक्तिका स्वराज्य' है।" स्वराज्यके सम्बन्धमें बापूका यह अनोखा दर्शन है। इसमें स्वराज्यकी व्याख्या ही बापूने 'हर व्यक्तिका स्वराज्य' के रूपमें प्रकट की है। अतः हर व्यक्तिके स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' का विधान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है; इतना ही नहीं वह भारतमें हर व्यक्तिके स्वराज्यके रूपमें प्रजातन्त्रको सफल बनानेकी दृष्टिसे उपस्थित किया हुआ एक महान आदर्श है।

सन् १९३३ में व्यक्तिगत सत्याग्रहका प्रश्न जमनालालजीके सामने आया था। वे सब बातोंमें जाग्रत व्यक्ति थे। अपनी बीमारीके कारण बार-बार सत्याग्रहमें भाग लेनेसे रुक गये थे। लेकिन उनकी अन्तरात्माको यह रुचता नहीं था। अपना यह मन्थन उन्होंने पूज्य बापूके सामने नीचे लिखे पत्रके द्वारा प्रकट किया था। यह उनके अन्तःकरणकी सच्चाई पर अच्छी रोशनी डालता है और सत्याग्रहीको कितना जागरूक रहना चाहिये, यह भी बताता है। जमनालालजीने लिखा था:

पूज्य श्री बापूजी,

चित्तकी बड़ी दुविधामें यह खत आपको लिख रहा हूं। कानूनके सविनय-भंगके ऊपर और कांग्रेसके कार्यक्रमके ऊपर पूरा विश्वास होते हुए भी मैं अभी तक जेलमें पहुंचा नहीं हूं, इसका मुझे बहुत रंज है। मैं ता० ४ अप्रैल, १९३३ को जेलसे छूटा तब मेरे कानकी व्याधि खतरनाक गिनी जाती थी। उसका यथासम्भव इलाज करके मैं शरीर-स्वास्थ्य ढूंढ़ता अल्मोड़ा गया। इधर आपने २१ दिनके उपवास किए, जिसके साथ सत्याग्रह-

आन्दोलन तीन महीनेके लिए स्थगित रहा। उन्हीं दिनों एक अत्यन्त जरूरी कौटुम्बिक प्रकरणमें मुझे वहुत दिनों तक गवाही देनी पड़ी। आपने भी मुझे आज्ञा दी थी कि अच्छा शरीर लेकर ही जेल जाना चाहिये।

इन्हीं दिनों पूनाकी खानगी कान्फरेन्स हुई और सामुदायिक सत्याग्रहका रूपान्तर व्यक्तिगत सत्याग्रहमें हुआ। मैं जानता भी हूं और मानता भी हूं कि ऐसी हालतमें जिनका सविनय-भंग पर अटल विश्वास है, ऐसे लोगोंको तो इस वक्त अन्य कामोंका लोभ छोड़कर खसूसन् जेलमें ही जाकर वैठना चाहिये। मैंने ऐसा निश्चय भी किया था। लेकिन शरीर और मानस-स्वास्थ्य जितना चाहिये उतना नहीं सुधरनेके कारण दिलमें कुछ कमजोरी-सी आ गई और इस कारण मैंने गुरुजन और मित्रगणोंके कुछ दिन ज्यादा वाहर रहनेके आग्रहको मान लिया और १२ नवम्वर तक वाहर रहनेकी अवधि निश्चित की।

मेरा विश्वास मुझे कहता है कि व्यक्तिगत सत्याग्रहके आजके दिनोंमें जिसका शरीर कुछ भी चलता है उसको तो जेलमें ही जाना चाहिये।..."[1]

उस समयसे व्यक्तिगत सत्याग्रहका यह विचार भारत-माताके अन्तरमें धीरे-धीरे पनपता रहा, जिस पर आगे चलकर द्वितीय विश्वयुद्धके दौरान १९४० में प्रत्यक्ष रूपसे अमल हुआ। उस समय पू० विनोवाजी प्रथम सत्याग्रही चुने गये। राष्ट्रके सामने उनका नाम और उनके गुण तभी प्रकाशमें आये।

गांधीजीकी चेतावनी

ऐसे समयमें जव कि दुनिया भीषण संहार और सर्वनाशमें जुटी हुई थी, सिर्फ भारत ही एकमात्र ऐसा देश था जो शान्ति और सद्भावनाका युगों पुराना सन्देश लिये सभ्य मानवताके वीच अपना सिर ऊंचा किये खड़ा था। अपने ७१ वें जन्मदिन पर गांधीजीने लड़ाई छिड़ते ही हिटलरको पत्र लिखकर अपील की: "आज जगतमें एकमात्र आप ही युद्धको रोक सकते हैं—वह युद्ध जो मानव-जातिको जंगली हालतमें पहुंचा सकता है।" द्वितीय विश्वयुद्धको रोकनेके अपने प्रयत्नके रूपमें गांधीजीने 'प्रत्येक

१. 'श्रेयार्थी जमनालालजी' से।

अंग्रेजके प्रति' शीर्षकसे अंग्रेजोंको पत्र लिखकर अपील की कि वे इस नर-संहारको रोकनेमें सहायक हों। पत्र इस प्रकार है:

"मेरा प्रत्येक अंग्रेजके प्रति, चाहे वह दुनियाके किसी भी हिस्सेमें क्यों न हो, निवेदन है कि वह राष्ट्रोंके पारस्परिक सम्बन्धों और दूसरे मामलोंका फैसला करनेके लिए युद्धका मार्ग छोडकर अहिंसाका मार्ग स्वीकार करे। आपके राजनीतिज्ञोंने यह घोषणा की है कि यह युद्ध प्रजातन्त्रके सिद्धान्तकी रक्षाके लिए लड़ा जा रहा है। परन्तु मैं आपसे यह कहता हूं कि इस युद्धके समाप्त होने पर जीत चाहे जिस पक्षकी हो, प्रजातन्त्रका कहीं नामोनिशान भी न मिलेगा। यह युद्ध मनुष्य-जाति पर एक अभिशाप और चेतावनीके रूपमें उतरा है। यह शापरूप है। आज तक कभी इन्सान इन्सानियतको इस कदर नहीं भूला था, जितना कि वह इस युद्धके असरसे भूल रहा है। आज इन्सानकी करतूतें हैवानको भी शर्मिन्दा कर रही हैं। मैं प्रकृतिकी इस चेतावनीका अर्थ युद्ध छिड़ते ही समझ गया था। मगर मेरी यह हिम्मत नहीं होती थी कि मैं आपसे कुछ कहूं। किन्तु आज ईश्वरने मुझे हिम्मत दे दी है और मौका अभी भी हाथसे निकल नहीं गया है।

"आप लोग नाजीवादका विनाश करना चाहते हैं। मगर आप नाजी-वादकी कच्ची-पक्की नकल करके उसका कभी नाश नहीं कर सकेंगे। मैं नहीं चाहता कि ब्रिटेन हारे। मगर मैं यह भी नहीं चाहता कि वह पाशविक बलकी परीक्षामें जीते, भले ही वह पशुबल बाहुबलके रूपमें प्रदर्शित किया जाय या बुद्धिबलके रूपमें। आपका बाहुबल तो जगत्प्रसिद्ध है। क्या आपको यह प्रदर्शन करनेकी जरूरत है कि आपका बुद्धिबल भी तबाही करनेमें सबसे ज्यादा शक्तिशाली है? मुझे आशा है कि आप लोग नाजियोंके साथ इस किस्मके मुकाबलेमें उतरना अपनी बेइज्जती समझेंगे। . . ."

गांधीजीके उक्त पत्रका अंग्रेजों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने देखा कि लड़ाईकी लपटें यूरोपमें दूर-दूर तक फैलती जा रही हैं। और इनके कारण ब्रिटेनका दिल भारतके प्रति नरम होनेके बजाय और भी सख्त और कठोर होता जा रहा है। वह इतना निर्मम और निर्दय बनता जा रहा है, जिसकी कल्पना तक भी नहीं की जा सकती।

व्यक्तिगत सत्याग्रहका आरम्भ

ऐसी स्थितिमें देश धीरे-धीरे सत्याग्रह-संग्रामकी तीसरी मंजिल तक पहुंच गया और १७ अक्तूबर, १९४० को सत्याग्रह-संग्रामकी रणभेरी बज उठी। श्री विनोबाने वर्धासे पांच मील दूर अपने निवास-स्थान पवनार गांवमें १७ अक्तूबरको एक युद्ध-विरोधी भाषण देकर सत्याग्रहका श्रीगणेश कर दिया। न तो सभा पर ही कोई रोक लगाई गई और न श्री विनोबाको ही पकड़ा गया। हां, इतना अवश्य हुआ कि देशभरके अखबारोंको चेतावनी दे दी गई कि वे उनके भाषण अथवा उनके कार्यक्रमके बारेमें कोई समाचार न छापें। श्री विनोबा पैदल चलकर गांव-गांवमें भाषण देते रहे। आखिरकार २१ अक्तूबरको उन्हें गिरफ्तार करके तीन महीनेकी सादी कैद दे दी गई। अदालतमें अपना बयान देते हुए श्री विनोबाने कहा :

"मैं यह स्वीकार करता हूं कि युद्ध-विरोधी प्रचार, जिसे सरकार अपराध कहती है, मैंने किया है। मैंने वह पूर्ण रूपसे सोच-समझकर और हेतुपूर्वक किया है। मेरा अहिंसा पर पूर्ण विश्वास है और अहिंसाकी बुनियाद पर खड़ी की गई खादी, हरिजन-सेवा, जातीय एकता, उद्योग द्वारा शिक्षण, गो-रक्षण आदि प्रवृत्तियां चलानेमें मेरा अब तकका जीवन व्यतीत हुआ है। यह बात आसानीसे समझमें आ सकती है कि ऐसा व्यक्ति जब अत्यन्त नाजुक परिस्थितिमें सरकारका विरोध स्वीकार करके सत्याग्रहका दायित्व अपने ऊपर लेता है, तो इसीलिए कि उसे वह अनिवार्य पवित्र कर्तव्य प्रतीत होता है। मुझे आशा है कि सब कांग्रेसी जन तथा कांग्रेसके बाहरके लोग भी रचनात्मक कार्य पर पूरी तरह अमल करेंगे। ऐसा वे करेंगे तो मेरा सविनय कानून-भंग शोभायमान होगा।"

सजा पानेवाले दूसरे व्यक्ति पंडित जवाहरलालजी थे। भारतके हृदय-सम्राट् पंडित जवाहरलालजीने प्रान्तके विभिन्न जिलोंका दौरा अभी खत्म ही किया था। उन्होंने मौजूदा परिस्थिति पर सभी तरहके बहुतसे भाषण दिये। उन्हें वर्धा आनेको कहा गया था, जहांकी वापसी पर उन्हें ३१ अक्तूबर १९४० को गिरफ्तार कर लिया गया। जिस मजिस्ट्रेटके कोर्टमें उन पर मुकदमा चलाया गया, उसने उन्हें ४ सालकी सजा दी। १७ नवम्बरको सरदार पटेल भी हिरासतमें ले लिये गये। उन पर कोई इलजाम नहीं

लगाया गया और न मुकदमा ही चलाया गया। उन्हें गिरफ्तार करके अनिश्चित अवधिके लिए नजरबन्द कर दिया गया। देशके विभिन्न भागोंमें सत्याग्रह करनेवाले लोगोंकी भरमार थी। उनमें पिता और पितामहकी इजाजतसे जमनालालजीके छोटे बेटे रामकृष्ण बजाज सबसे छोटे सत्याग्रही सिद्ध हुए।

आन्तरिक चिन्तन

सन् १९४१ में जमनालालजी व्यक्तिगत सत्याग्रहके सिलसिलेमें नागपुर जेलमें थे तब जनवरीसे जुलाई तककी उनकी दैनन्दिनीके कुछ चुने हुए उद्धरणोंसे उनकी विचारधारा एवं प्रवृत्तियोंका अन्दाजा उन्हींके शब्दोंमें हमें इस तरह मिलता है:

'१ जनवरी, १९४१ : नागपुर जेलमें विनोबाका प्रवचन। उन्होंने हृदय-परिवर्तनके दृष्टान्तमें खुद अपना हृदय पलटनेका प्रयत्न करनेकी आवश्यकता बताई।

'२० मार्च : इस जेलमें आज दो सगे भाइयोंको एक साथ फांसी दी गई। परमात्मा इनको सद्‌गति प्रदान करे। यह सजा तो जल्दी-से-जल्दी बन्द हो जानी चाहिये। यह सुना गया कि ये भाई तेली जातिके थे, शायद नागपुरके हों। छोटाभाई कबूल करता था कि उसने खून किया है, बड़ा भाई निर्दोष है। बड़ा भाई भी कहता था कि मैं निर्दोष हूं। छोटा तो रामनाम भी बड़े जोरोंसे लेता था। बड़ा भाई कहता था कि राम है ही कहां? अगर राम होता तो मुझ निरपराधको क्यों फांसी दी जाती? यह सब सुनकर ऐसा भी लगा कि सचमुच बड़ा भाई निर्दोष है।

'१५ मई : मैंने यह नैसर्गिक उपचार भी मानसिक शान्तिकी दृष्टि रखकर ही मुख्यतः स्वीकार किया है; अन्यथा ज्यादा उत्साह इस समय नहीं था, क्योंकि पूनामें एक प्रयोग हो चुका था। परमात्मासे प्रार्थना तो की है; देखें क्या परिणाम आता है। इस जन्ममें सद्‌बुद्धि प्राप्त हो जायगी व स्वच्छ, पवित्र, सेवामय जीवन बिताते हुए देह छूट सकेगी, तो समाधान हो सकेगा। ईश्वरकी माया अपरम्पार है। . . .

'ईश्वरकी इच्छा होगी तो यह भी सम्भव हो जाएगा। रातको इसी तरहके विचार कई घण्टे चलते रहे। बीच बीचमें आंखोंमें से पानी बहता रहा। बालकपन व तरुणावस्थाका मेरा संकोची, शरमीला, डरपोकपनका स्वभाव पूरी तरहसे आज तक कायम रहता तो कितना अच्छा होता ?

'बुरी संगतका अच्छा परिणाम और अच्छी संगतका बुरा परिणाम। ईश्वरकी क्या माया है? मेरा तो मानना है--'मातृवत्परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्'। एवं 'न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्'।

'३१ मई: रातको ११॥ से २॥-३ बजे तक नींद नहीं आई। विचार चलते रहे। सत्याग्रह समाप्त होनेके बाद नेपाल, बद्रीनाथ, हिमालय वगैरह और बादमें जावा, श्याम वगैरा देशोंकी यात्राके तथा और भी अच्छे-बुरे विचार चलते रहे।[1]

'३ जून: पू० विनोबा तथा अन्य मित्र मिलने आये। ५॥ बजेके करीब जेल-फाटक पर मित्रोंसे मिलकर जेलके कागजों पर सही करके भारी हृदयसे जेलके फाटकसे बाहर आया। वर्धासे जानकीदेवी, दामोदर, राधाकिसन आये थे। . . . उनके साथ मोटरमें वर्धा रवाना हुआ। वर्धामें नालवाड़ी, बंगले[2] पर होते हुए सेवागांवमें बापूको प्रणाम, विनोद किया। जेलके समाचार कहे।

'२ जुलाई, वर्धा: उन्होंने (विनोबाने) यह समझाया कि रचनात्मक कार्यका महत्त्व क्या है और ७ लाख गांवोंमें काम करनेके लिए ७ लाख कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता है।

'१४ जुलाई: विनोबाका सत्याग्रह[3] नालवाड़ीमें ६ बजे शामको हुआ। पौन घण्टा ठीक भाषण हुआ। बादमें विनोबा गिरफ्तार कर लिये गये।

'१५ जुलाई: जेलमें पू० विनोबासे एक घण्टे तक, ६-१० से ७-१५ तक, मुलाकात। खूब बातें हुईं। उनसे अभंग सुना। मदालसासे बातें।'

१. 'श्रेयसाधक'से ।

२. बजाजवाड़ीका पीला बंगला—बजाज परिवारका वर्तमान निवास-स्थान एवं अतिथि-गृह।

३. व्यक्तिगत सत्याग्रहमें शामिल होनेवालोंके लिए यह नियम था कि जब तक सत्याग्रहका हेतु सिद्ध न हो तब तक बार-बार सत्याग्रह करते ही जाना चाहिए।

सन् १९४१ की गर्मियोंमें जमनालालजीको सख्त वीमारीके कारण रिहा कर दिया गया। स्वयं राष्ट्रपति[1]को अचानक गिरफ्तार करके सजा दे दी गई। बाकीका आन्दोलन विधिवत् चलता रहा और उसमें योजनाके अनुसार प्रगति होती रही। स्वयं गांधीजी जेल नहीं गए। वे सेवाग्राम, वर्धामें रह कर ही राष्ट्रीय प्रवृत्तियोंका संचालन करते रहे और राष्ट्रको स्वराज्यकी ओर अग्रसर होनेकी प्रेरणा देते रहे।

*

अब तक वापूके पांचवें पुत्रके रूपमें जमनालालजीका उल्लेख आता रहा है। अब अपने पू० पिताके नाते काकाजीके रूपमें उनका उल्लेख आता रहेगा। यह स्वाभाविक रूपसे क्रमप्राप्त ही है।

काकाजीका परिवार दिनोंदिन राष्ट्रव्यापी होता गया था। अतः भारतके अनेक सेवक और कार्यकर्ता सपरिवार उन्हें 'काकाजी' ही कहने लगे थे। ऐसे आवाल-वृद्ध सबके सम्माननीय और प्रिय काकाजी जव नागपुर जेलसे रिहा होकर सेवाग्राम आये, तो वहां वापूजीकी कुटियाके सामने रुस्तम-भवन नामक अतिथि-गृहमें ही कुछ दिन रहे थे। पर वे इतने कमजोर हो गये थे कि वापूजीने उन्हें कुछ समयके लिए श्रीमती राजकुमारी अमृतकौरके साथ शिमला भेज दिया। वहां उन्हें काफी आराम और आनन्द भी मिला।

वहांसे लौटते हुए देहरादूनमें श्रीमां आनन्दमयीजीके आश्रममें कुछ समय काकाजीने विताया। वहां उन्हें आन्तरिक रूपसे गहरा सुख और शान्ति प्राप्त हुई। जीवन-मृत्युसे सम्वन्वित कई प्रश्नोंका सहज सन्तोषकारक जवाव भी उन्हें मिला। काकाजीने श्रीमांसे अपनी मृत्युके सम्वन्धमें कुछ अन्दाज पूछा तो मांने मुस्कराते हुए कहा कि "तुम वेटे वने हो और मांसे अपनी मौतकी वात पूछते हो, यह कैसी वात है? फिर भी छः महीनेका अन्दाज सामने रखकर अपना कार्य करते रहो। . . ." वस, काकाजीके लिए इतना इशारा काफी था। उन्होंने उसी तरह अपनी तैयारी कर ली।

---

१. कांग्रेसके तत्कालीन प्रेसिडेन्ट।

शिमलासे देहरादून होते हुए वर्धा लौटनेके पहले काकाजी अल्मोड़ा भी गये थे। वहांसे उनका एक महत्त्वपूर्ण पत्र-मुझे मिला था जिसका मुख्य अंश यह है:

अल्मोड़ा,
१० सितम्बर, १९४१

चि० मदू,

मैं, उमा और राजनारायण नैनीतालसे ७ तारीखको निकलकर कौसानी दो रात रहे। यह स्थान चनौदा गांधी-आश्रमसे तीन मील आगे है। बहुत अच्छा मालूम हुआ। पू० बापूजी यहां ८-१० रोज रहे थे। सुना है उन्हें यह स्थान पसन्द आया था। इस स्थानका वर्णन सुनना चाहो तो श्री कृष्णदास गांधीसे सुन लेना। हम सबोंको भी पसन्द आया है। ज्यादा दिन रहनेका मन हुआ था।

पू० बापूजीसे मिलने पर खान-पानके बन्धन थोड़े ढीले करनेकी इच्छा है, अन्यथा सफरमें जरा कष्ट होता है। खर्च भी ज्यादा आता है। मौका लगे तो मेरे पत्रका सारांश पू० बापूसे कह देना।

बापू जेल नहीं भेजेंगे तो नेपाल जानेका विचार कर रहा हूं। पैदल भ्रमणका उत्साह व इच्छा बढ़ती जा रही है। रेल व मोटरकी यात्राका उत्साह कम होता जा रहा है। कैलास, मानसरोवर भी जानेका मन होता है। देखें क्या होनेवाला है।

जमनालालका आशीर्वाद

तबसे लम्बे अर्से बाद हाल हीमें जब यह पत्र परम पूज्य भूदानी बाबा विनोबाजीको दिखलाया गया, तो उन्होंने 'पैदल भ्रमणका उत्साह व इच्छा बढ़ती जा रही है'—काकाजीके इन शब्दोंके सामने मूल पत्रमें अपने हाथसे लिख दिया: "यह विरासत बाबाको प्राप्त है।"

यह कैसा अद्भुत और असाधारण सम्बन्ध है कि बापूको पिता और विनोबाजीको काकाजीने गुरु माना। पर उनके पहले वे इस दुनियासे विदा हो गए। बाद अपने इस पुत्र और शिष्यकी विरासतको बापू और विनोबाने संभाला।



"गोपाल ! गोपुरीवासिन ! जमनालाल ! 'जनप्रिय' ! "

गोसेवामें समर्पण

वर्धा आनेके बाद अपनी आन्तरिक प्रेरणाके अनुसार काकाजीने मोटर और रेलमें बैठना छोड़ दिया। कुछ समय पू० विनोबाजीके सान्निध्यमें परंधाम रहकर जीवनका संशोधन किया। बाद गोपुरीमें एक बहुत मामूली-सी झोंपड़ी बनवाकर वहीं प्रत्यक्ष रूपमें कौशल्या नामक गोमाताकी सेवा करते हुए गो-रक्षण और गो-संवर्द्धनके कार्यमें संलग्न हो गये। उस समयकी उनकी दैनन्दिनीके ये उद्धरण महत्त्वपूर्ण हैं:

'५ दिसम्बर १९४१: गोपुरी, नालवाड़ीमें विनोबासे मिलना। वल्लभस्वामीसे सुरगांवके बारेमें बातचीत। पू० विनोबा व गोपालरावके साथ बैलगाड़ीमें सेवाग्राम गया। विनोबाने गोसेवा-संघके व संचालक-मण्डलके सदस्य होना स्वीकार कर लिया। जाते-आते उनसे ठीक बातें हो गईं। पू० बापूजीसे भी विनोबा व खेर साहबके प्रोग्रामके बारेमें ठीक-ठीक बातें हुईं। (रास्तेमें) वरोरामें[१] बालकोबा-विनोबाका दो वर्ष बाद आदर्श मिलन हुआ। बालकोबाने उनसे संस्कृतके उच्चारण व अर्थ पर ही देर तक पूछताछ की। आदर्श बन्धु-व्यवहार।'

आगे काकाजीकी दिसम्बर १९४१ से फरवरी १९४२ तककी गोपुरीकी दैनन्दिनीमें मुख्यतः गोसेवा-संघके सम्बन्धमें ही उल्लेख आता है, जिससे उनके जीवन-समर्पणसे पूर्वके चिन्तनका स्वरूप स्पष्ट होता है:

'७ दिसम्बर, गोपुरी: विनोबाके साथ बैलगाड़ीमें सेवाग्राम गया-आया। जाते समय गोसेवा-संघकी चर्चा हुई। आते समय राजनैतिक परिस्थिति पर बापूने अपना वक्तव्य बताया।

---

१. सेवाग्रामसे वर्धा आते हुए दाहिनी ओरका एक गांव जहां शुरूमें पू० मीराबहन झोंपड़ी बनाकर रही थीं और जहां बादमें पू० बालकोबाजीने आरोग्य-साधना की थी।

'गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, उनकी स्त्री आदि कलकत्तासे आये। गांधी-चौकमें सभा हुई। विनोबा सुन्दर बोले। प्रफुल्लबाबू, राजेन्द्रबाबूने ठीक खुलासा किया।

'११ दिसम्बर: ४ बजे प्रार्थना। विनोबासे गोसेवा-संघकी योजनाके बारेमें देर तक चर्चा-विचार हुआ।

'१९ दिसम्बर: इन दिनों पू० विनोबाके प्रवचन बहुत ही भावपूर्ण हो रहे हैं। सुरगांवमें भी ठीक संगठन जम रहा है।

'७ जनवरी: विनोबासे डेअरी-एक्सपर्ट श्री कोठावालाके पत्र पर काफी विचार-विनिमय। राजेन्द्रबाबूके स्टेटमेन्ट व मैंने जो स्टेटमेन्ट दिया इन सब पर विचार-विनिमय। वहीं नालवाड़ीमें प्रार्थना।

'३० जनवरी: गोसेवा-संघकी बैठक २॥ से ५ तक। विनोबा भी आये। काफी अच्छी तरह विचार-विनिमय हुआ।

'३१ जनवरी: गोपुरीसे सेवाग्राम। विनोबा, राधाकृष्णके साथ गोसेवा-संघकी बातें करते हुए बैलगाड़ीमें गया-आया। बापूसे बातें, गोसेवा-संघकी कान्फरेन्सके सम्बन्धमें। घनश्यामदासजी बिड़लासे सेवाग्रामके आसपास खेती व कुएंकी योजना पर बातें। उन्होंने अपने विचार कहे। नागपुर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी सभा। विनोबा बोले।

'१ फरवरी: बजाजवाड़ीमें गो-विशारदों (एक्सपर्ट) की सभामें ठीक विचार-विनिमय हुआ। कान्फरेन्स ठीक २ बजे शुरू हुई। बापूका भाषण भावपूर्ण और दुःखसे भरा हुआ विस्तारके साथ हुआ। सदस्य बनने पर जोर। विनोबाका भाषण विद्वत्तापूर्ण। गोसेवा-संघके नामकरणका खुलासा व महत्त्व। सदस्योंकी शंकाओंका तथा अन्य बातोंका स्पष्टीकरण।

'२ फरवरी: गोसेवा-संघ कान्फरेंस २ से ५ तक विनोबाजीके सभा-पतित्वमें हुई। सभाका कार्य समाप्त हुआ। प्रथम सभाके हिसाबसे ठीक रही।'

गोपालन और गो-संवर्धनके जिस कार्यमें पू० काकाजीने स्वयंको लीन कर दिया, उसके विषयमें बापूजीने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं:

गोपालन व्यक्तिगत हो या सामुदायिक ?

"श्री जमनालालजीने गोसेवाका महान वोझ अपने सिर पर उठाया है। इस बारेमें गोसेवा-संघकी सभाके सामने एक महत्त्वका प्रश्न यह था कि गोपालन वैयक्तिक हो या सामुदायिक ? मैंने राय दी कि सामुदायिक हुए वगैर गाय वच ही नहीं सकती। मैं तो यहां तक कहता हूं कि आज संसार हरएक काममें सामुदायिक रूपमें शक्तिका संगठन करनेकी ओर जा रहा है। इस संगठनका नाम 'सहयोग' है। वहुतसी वातें आजकल सहयोगसे हो रही हैं।

"हमारी आवादी बढ़ती जा रही है और उसके साथ व्यक्तिगत रूपसे किसानकी जमीन कम होती जा रही है। नतीजा यह हुआ है कि प्रत्येक किसानके पास जितनी चाहिये उतनी जमीन नहीं है। जो है वह उसकी अड़चनोंको वढ़ानेवाली है। इस हालतमें क्या किया जाय ? इस प्रयत्नमें सहयोगका वड़ा महत्त्व है। सहयोगसे यानी सामुदायिक पद्धतिसे पशु-पालन करनेसे — १. जगह वचेगी; २. किसानको अपने घरमें पशु नहीं रखने पड़ेंगे। आज तो जिस घरमें किसान रहता है, उसीमें उसके सारे मवेशी भी रहते हैं। इससे हवा विगड़ती है और घरमें गन्दगी रहती है। मनुष्य पशुके साथ एक ही घरमें रहनेके लिए पैदा नहीं हुआ है। ऐसा करनेमें न दया है, न ज्ञान है। . . ."

सेवाग्राम, ८.२.'४२

इसी अर्सेमें वजाजवाड़ी और शिक्षा-मण्डलके मकानोंमें पू० काकाजीके नेतृत्वमें चक्षुदान-यज्ञ भी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

गोलोककी ओर प्रयाण

११ फरवरीको सुवह जल्दी ही प्रार्तविधिसे निवृत्त होकर अरुणोदय होते न होते काकाजी गोपुरीसे पैदल ही चलते हुए काकावाड़ी, महिलाश्रम और जीवन-कुटीरमें प्रातःस्मरणीय अलख जगाते हुए, हम वच्चोंको सोतेसे उठाते हुए, पू० मांके साथ वजाजवाड़ी पहुंच गये। वहां पू० वापूजीसे मिलने के लिए चीन देशके महान नेता महामना चांगकाई शेकके शुभागमनकी तैयारी कराते हुए, वे पैदल चलते-चलते श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरमें पहुंचे। एकादशीके शुभ दिन उन्होंने ठाकुरजीके जी भर कर दर्शन किये। वाद अपने जुगजूने

'गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, उनकी स्त्री आदि कलकत्तासे आये। गांधी-चौकमें सभा हुई। विनोबा सुन्दर बोले। प्रफुल्लबाबू, राजेन्द्रबाबूने ठीक खुलासा किया।

'११ दिसम्बर: ४ बजे प्रार्थना। विनोबासे गोसेवा-संघकी योजनाके बारेमें देर तक चर्चा-विचार हुआ।

'१९ दिसम्बर: इन दिनों पू० विनोबाके प्रवचन बहुत ही भावपूर्ण हो रहे हैं। सुरगांवमें भी ठीक संगठन जम रहा है।

'७ जनवरी: विनोबासे डेअरी-एक्सपर्ट श्री कोठावालाके पत्र पर काफी विचार-विनिमय। राजेन्द्रबाबूके स्टेटमेन्ट व मैंने जो स्टेटमेन्ट दिया इन सब पर विचार-विनिमय। वहीं नालवाड़ीमें प्रार्थना।

'३० जनवरी: गोसेवा-संघकी बैठक २॥ से ५ तक। विनोबा भी आये। काफी अच्छी तरह विचार-विनिमय हुआ।

'३१ जनवरी: गोपुरीसे सेवाग्राम। विनोबा, राधाकृष्णके साथ गोसेवा-संघकी बातें करते हुए बैलगाड़ीमें गया-आया। बापूसे बातें, गोसेवा-संघकी कान्फरेन्सके सम्बन्धमें। घनश्यामदासजी बिड़लासे सेवाग्रामके आसपास खेती व कुएंकी योजना पर बातें। उन्होंने अपने विचार कहे। नागपुर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी सभा। विनोबा बोले।

'१ फरवरी: बजाजवाड़ीमें गो-विशारदों (एक्सपर्ट) की सभामें ठीक विचार-विनिमय हुआ। कान्फरेन्स ठीक २ बजे शुरू हुई। बापूका भाषण भावपूर्ण और दुःखसे भरा हुआ विस्तारके साथ हुआ। सदस्य बनने पर जोर। विनोबाका भाषण विद्वत्तापूर्ण। गोसेवा-संघके नामकरणका खुलासा व महत्त्व। सदस्योंकी शंकाओंका तथा अन्य बातोंका स्पष्टीकरण।

'२ फरवरी: गोसेवा-संघ कान्फरेंस २ से ५ तक विनोबाजीके सभा-पतित्वमें हुई। सभाका कार्य समाप्त हुआ। प्रथम सभाके हिसाबसे ठीक रही।'

गोपालन और गो-संवर्धनके जिस कार्यमें पू० काकाजीने स्वयंको लीन कर दिया, उसके विषयमें बापूजीने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं:

गोपालन व्यक्तिगत हो या सामुदायिक ?

"श्री जमनालालजीने गोसेवाका महान बोझ अपने सिर पर उठाया है। इस बारेमें गोसेवा-संघकी सभाके सामने एक महत्त्वका प्रश्न यह था कि गोपालन वैयक्तिक हो या सामुदायिक ? मैंने राय दी कि सामुदायिक हुए वगैर गाय बच ही नहीं सकती। मैं तो यहां तक कहता हूं कि आज संसार हरएक काममें सामुदायिक रूपमें शक्तिका संगठन करनेकी ओर जा रहा है। इस संगठनका नाम 'सहयोग' है। वहुतसी वातें आजकल सहयोगसे हो रही हैं।

"हमारी आबादी वढ़ती जा रही है और उसके साथ व्यक्तिगत रूपसे किसानकी जमीन कम होती जा रही है। नतीजा यह हुआ है कि प्रत्येक किसानके पास जितनी चाहिये उतनी जमीन नहीं है। जो है वह उसकी अड़चनोंको वढ़ानेवाली है। इस हालतमें क्या किया जाय? इस प्रयत्नमें सहयोगका वड़ा महत्त्व है। सहयोगसे यानी सामुदायिक पद्धतिसे पशु-पालन करनेसे—१. जगह वचेगी; २. किसानको अपने घरमें पशु नहीं रखने पड़ेंगे। आज तो जिस घरमें किसान रहता है, उसीमें उसके सारे मवेशी भी रहते हैं। इससे हवा विगड़ती है और घरमें गन्दगी रहती है। मनुष्य पशुके साथ एक ही घरमें रहनेके लिए पैदा नहीं हुआ है। ऐसा करनेमें न दया है, न ज्ञान है। . . ."

सेवाग्राम, ८.२.'४२

इसी अर्सेमें वजाजवाड़ी और शिक्षा-मण्डलके मकानोंमें पू० काकाजीके नेतृत्वमें चक्षुदान-यज्ञ भी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

गोलोककी ओर प्रयाण

११ फरवरीको सुवह जल्दी ही प्रातर्विधिसे निवृत्त होकर अरुणोदय होते न होते काकाजी गोपुरीसे पैदल ही चलते हुए काकावाड़ी, महिलाश्रम और जीवन-कुटीरमें प्रातःस्मरणीय अलख जगाते हुए, हम बच्चोंको सोतेसे उठाते हुए, पू० मांके साथ वजाजवाड़ी पहुंच गये। वहां पू० वापूजीसे मिलनेके लिए चीन देशके महान नेता महामना चांगकाई शेकके शुभागमनकी तैयारी कराते हुए, वे पैदल चलते-चलते श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरमें पहुंचे। एकादशीके शुभ दिन उन्होंने ठाकुरजीके जी भर कर दर्शन किये। वाद अपने जुगजूने

निवास-स्थान पर पहुंचकर बड़ी पुत्रवधू सौ० सावित्रीदेवीके पास फलाहार किया। छोटी बेटी उमा और दामाद राजनारायणजी हल्द्वानी (नैनीताल) से आये थे। उनके साथ गपशप की और ताश खेली। कुछ देर विश्राम करके चरखा तैयार करनेका आदेश दिया। बाथरूम गये और वहीं उनके मस्तकमें भयानक प्राणान्तकारी पीड़ा उठ खड़ी हुई। किसी तरह लम्बे बरामदेमें से चलकर बड़े हॉलमें गद्दे पर आकर बैठते ही खूनकी उल्टी हुई और वे लेट गये। यह देखकर पू० मां चिन्तित हो उठीं।

सेवाग्राम बापूजीको फोनसे खबर भिजवाई। बापूजी श्री घनश्यामदासजी बिड़लाके साथ मोटरमें बैठकर यथाशीघ्र चले आये। चित्तमें चिन्ता समाई थी। हाथमें सर्पगन्धाकी दवा थी। पर स्वेच्छासे पांचवां पुत्र बने हुए पुत्रके प्राण वहां कहां थे? अपने दत्तक पिताके आनेके पहले ही पुत्रके प्राण मानों पितामें समा चुके थे। इस तरह दिन-रात गोसेवाका ध्यान-चिन्तन और विचार-विनिमय करते हुए काकाजी एकादशीके शुभ-दिन व्रत-उपवास और भगवानके दर्शन करके गोलोकवासी हो गये।



पुण्य-स्मरण

जमनालालजी और श्री श्रीकृष्णदास जाजूजीमें गहरी घनिष्ठता थी। जमनालालजी शुरूसे ही सेठजी कहलाते थे और जाजूजी वकील साहब। तदनुसार जमनालालजीने जाजूजीको सदा गुरुतुल्य बड़ा भाई माना था। एक बुजुर्ग स्नेही सलाहकारकी तरह उनसे वे हमेशा सही सलाह और सहयोग पाते रहे।

जमनालालजीके अकस्मात् दिवंगत हो जानेका सदमा जाजूजीको बहुत गहरा लगना स्वाभाविक ही था। उन्होंने २२ फरवरी, १९४२ को काकाजीके संबंधमें जो श्रद्धापूर्ण मनोभाव व्यक्त किये थे, उनमें काकाजीके जीवन-दर्शनकी अनोखी झांकी हमें मिलती है:

सौंदर्य और कला

श्री जमनालालजीका जीवन इतने विविध प्रकारके कार्योंसे भरा हुआ है, और ये कार्य आज इतने दिनोंसे चल रहे हैं कि उनका कितना ही वर्णन किया जा सकता है और वह वर्णन पढ़कर लोगोंको आश्चर्य और आनन्द भी होगा। उनका संबंध अनेक छोटे-बड़े व्यक्तियोंके और संस्थाओंके साथ आया और सारे हिन्दुस्तानमें बड़े-बड़े महत्त्वके कार्य उनके हाथों हुए। प्राय: सब कार्योंमें उन्हें यश ही मिला। सत्कार्य करनेकी उनकी इच्छा इतनी प्रबल थी कि वे अनेक बार अपनी शक्तिसे बाहरके भी काम बड़ी हिम्मतके साथ स्वीकार कर लेते थे और उनमें भी यश पाते थे। उनके जैसा यशस्वी पुरुष विरला ही होगा। उनकी मृत्यु भी कितनी यशस्वी हुई? किसीकी हृदय-क्रिया बन्द पड़नेसे आकस्मिक मृत्यु होनेकी खबर

सुनकर वे कहा करते थे: "ऐसी मृत्युमें सौंदर्य है, कला है।" वे भी अंतिम क्षण तक महत्त्वके काम करते हुए, किसी भी प्रकारकी शारीरिक वेदना सहन किये वगैर शरीर छोड़ सके। औरोंकी मृत्युसे भी वे यही वोध लिया करते थे कि "शरीर नश्वर है, उससे जितने अच्छे काम लिये जा सकें उतने करा लिये जायें।"

वे अनेक महान पुरुषोंसे प्रयत्नपूर्वक मिलकर वीच-वीचमें उनके सहवासमें कुछ समय विताते थे, उनका आशीर्वाद पाकर उनके पाससे क्या वोध लिया जा सकता है, इसका सूक्ष्म विचार करते थे और उसे अपने जीवनमें उतारनेका प्रयत्न करते थे। इस तरहसे उन्नत आत्मशुद्धिका प्रयत्न करके उन्होंने अपना आत्मवल काफी वढ़ा लिया था।

सत्यका दामन

देशकार्य करते हुए संस्था एवं व्यक्तियोंको कितनी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं और कितनी घिसाई सहनी पड़ती है, इसकी उन्हें पूर्ण कल्पना थी। पैसेके विना कहां किसको कठिनाई हो रही है या और किसी प्रकारकी दिक्कतके कारण काममें रुकावट आ रही है, इस वातकी वे हमेशा खोज किया करते थे और उदार हाथोंसे मदद करते थे। उनके उदार मनसे मदद करनेके कारण वे उतने ही श्रीमन्त होंगे, ऐसी लोगोंकी स्वाभाविक रूपसे मान्यता हो गई थी। लेकिन वस्तुस्थिति वैसी नहीं थी। उनकी सम्पत्तिसे उनकी दातृव्य-शक्ति ही सौ गुना वड़ी थी। इसीलिए उन्होंने अपनी हैसियतसे वहुत अधिक दान किया। सार्वजनिक कामकी रुचि उनकी वचपनसे ही थी। परन्तु इधर वीस-पच्चीस वर्ष तो उन्होंने अपना तन-मन-धन लोकसेवामें ही अर्पण कर दिया था। उनका अपना निजी जीवन जैसा तो कुछ रहा ही नहीं था। उन्हें सत्यकी विलक्षण चाह थी। व्यवहारमें कितनी ही अड़चनें आयें, चाहे जितना नुकसान सहना पड़े, फिर भी वे सत्यका दामन नहीं छोड़ते थे। जिस समय उनका व्यापारकी ओर अधिक ध्यान था उस समय भी सारा व्यवहार सतर्कतासे करके वड़े-वड़े व्यापारियों पर वे अमिट छाप डाल सके थे। व्यापारमें उनका प्रभाव केवल प्रामाणिकताके कारणसे ही वढ़ा।

उनका प्रेमल स्वभाव

उनके स्वभावमें प्रेम खूब भरा हुआ था। जिनका-जिनका उनके साथ संबंध आया उन सबको उनके विलक्षण प्रेमल स्वभावका अनुभव हुआ था। राजकीय अथवा सामाजिक क्षेत्रमें कुछ लोगोंने उनका विरोध भी किया, लेकिन वे अपने विरोधियोंके साथ प्रेमसे ही बरते। जिन्होंने वर्षानुवर्ष उनका विरोध किया और उनकी निन्दा करनेमें ही आनन्द माना, ऐसे लोगोंका भी उन्होंने भला किया। इस तरहके अनेक उदाहरण हैं। श्री रमण महर्षिके पास वे गये तब जीवनका ध्येय क्या होना चाहिये, इस प्रश्नकी चर्चा शुरू हो गई। उस समय जमनालालजीने अपना ध्येय निम्न शब्दोंमें व्यक्त किया:

'कामये दुःखतप्तानाम् प्राणिनामार्तिनाशनम्।'

जमनालालजीने अपने सम्पूर्ण जीवनमें यह ध्येय प्राप्त करनेका ही अखण्ड प्रयत्न किया। उन्होंने इतने बड़े-बड़े कार्य किये, उसका भी बीज यही है। गहराईसे विचार करके देखेंगे तो हमें ऐसा दिखाई देगा कि उनका जीवन अनेक दृष्टियोंसे आदर्श व अनुकरणीय था और हमें उनसे समुचित बोध ग्रहण करनेका प्रयत्न करना चाहिये।"

कांग्रेसके इतिहासमें डा० पट्टाभि सीतारामैयाने सेठ जमनालालजीके सफल जीवनके संबंधमें सन् १९४२ में लिखा है:

"महान दानवीर, राजनीतिज्ञ और क्रियाशील व्यक्ति सेठ जमनालाल बजाज वर्षोंसे कांग्रेसके कोषाध्यक्ष और एक अनुभवी तथा पुराने सार्वजनिक कार्यकर्ता थे। अपने देशवासियोंके लिए उनकी एक अमूल्य देन है। वर्धाका श्री लक्ष्मीनारायणका मन्दिर तो अछूतोंके लिए सन् १९२८ में ही खोल दिया गया था। देशमें अपने ढंगका यह एक ही मन्दिर है। यदि इस नश्वर जगतमें जीवनकी सफलताका मूल्यांकन जीवनकी अवधिके बजाय व्यक्तिके नैसर्गिक गुणोंके आधार पर किया जाय, तो केवल एक ही व्यक्ति ऐसा है जो अपने त्याग, आत्मोत्सर्ग, संयम और निर्मोही, विरक्त तथा विनम्र स्वभाव, सद्भाव और मनुष्यमात्रके प्रति अपने प्रेमभावके कारण अपने जीवनको सफल कह सकता है, और वह व्यक्ति हैं सेठ जमनालाल बजाज। वे यद्यपि ५२ वर्षों तक ही जीवित रहे, फिर भी इस थोड़ेसे समयमें ही

उन्होंने देशके जीवनमें प्रमुख स्थान बना लिया था। भावी कई पीढ़ियों तक वे धनिक वर्गके लिए आदर्श बने रहेंगे।"

'भारत छोड़ो' आन्दोलन

जुलाई १९४२ में कांग्रेस कार्यसमितिका एक लम्बा अधिवेशन हुआ, जो ६ जुलाईसे लेकर १४ जुलाई तक जारी रहा। उसमें यह तय हुआ: "अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पूरे आग्रहके साथ भारतसे ब्रिटिश सत्ताको हटा लेनेकी अपनी मांगको दुहराती है। भारतकी स्वतन्त्रताकी घोषणा हो जाने पर एक अस्थाई सरकार स्थापित कर दी जायगी और स्वतन्त्र भारत मित्रराष्ट्रोंका मित्र बन जायगा और स्वातंत्र्य-संग्राममें सम्मिलित प्रयत्नकी परीक्षाओं और दुःख-सुखमें हाथ बंटायेगा। अस्थाई सरकार देशके मुख्य दलों और वर्गोंके सहयोगसे ही बनायी जा सकती है। . . ."

आगे यह भी निश्चय किया गया: "कमेटी भारतके स्वतन्त्रता और स्वाधीनताके अविच्छेद्य अधिकारका समर्थन करनेके उद्देश्यसे अहिंसात्मक प्रणालीसे और अधिक-से-अधिक विस्तृत परिमाण पर एक विशाल संग्राम चालू करनेकी स्वीकृति देनेका निश्चय करती है, जिससे देश गत २२ वर्षोंके शांतिपूर्ण संग्राममें संचित की गई समस्त अहिंसात्मक शक्तिका प्रयोग कर सके। यह संग्राम निश्चय ही गांधीजीके नेतृत्वमें होगा। कमेटी उनसे नेतृत्व करने और प्रस्तावित कार्रवाइयोंमें राष्ट्रका पथ-प्रदर्शन करनेका निवेदन करती है। . . ."[१]

७ और ८ अगस्तको बम्बईमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन प्रारंभ हुआ। उसमें उक्त प्रस्ताव पं० जवाहरलाल नेहरूने पेश किया और सरदार पटेलने उसका समर्थन किया। मतदानके बाद प्रस्ताव पास हुआ।

---

१. कांग्रेसका संक्षिप्त इतिहास — लेखक: डा० पट्टाभि सीतारामैया।

गांधीजीने सार्वजनिक रूपसे यह घोषणा कर दी कि आन्दोलन शुरू होनेके पूर्व वे वाइसरायको एक पत्र लिखकर उनके जवावकी प्रतीक्षा करना चाहते हैं। इस बीच देशवासियोंको उन्होंने सलाह दी कि वे कांग्रेसके तेरह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रममें अपनी शक्ति लगायें।

इसके वावजूद सरकारने ९ अगस्तके दिन पौ फटनेसे पहले ही कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्योंको नजरबंद कर लिया। गांधीजीको पूनाके पास आगाखां महलमें रखा गया। दूसरे सदस्योंको अहमदनगरमें चांदवीवीके किलेमें नजर-बंद किया गया। जनता पर सरकारने भीषण दमन-चक्र शुरू कर दिया। गांधीजीके साथ आगाखां महलमें महादेव देसाई भी थे। वहीं १५ अगस्त १९४२ के दिन हृदयकी गति बंद पड़ जानेसे महादेवभाईका एकाएक अवसान हो गया।

११ फरवरी १९४३ को पूज्य काकाजी (जमनालालजी वजाज) का प्रथम 'पुण्य-स्मृति' दिवस आया। उस दिनसे हम वहनोंने वर्धामें सामूहिक रूपसे अखण्ड सूत-कताईका कार्यक्रम संयोजित किया। श्री लक्ष्मीनारायजीके हरिजन-प्रवेशसे विशुद्ध हुए मंदिरमें पूज्य काकाजीकी तस्वीरके सामने प्रार्थनाके साथ सामूहिक कताई शुरू हुई। उसी दिन दोपहरको खवर मिली कि आगाखां महल, पूनामें पू० वापूजीने २१ दिनके उपवास शुरू कर दिये हैं। इस समाचारको सुनते ही पूज्य वापूजीकी गहरी चिंतामें काकाजीकी स्मृति सहज रूपसे विलीन हो गई। अखण्ड सूत-कताई और प्रार्थना अधिक गंभीरतासे चलती रही।

काकाजी स्वेच्छासे वापूजीके पांचवें पुत्र वन गये थे। इस घनिष्ठ संबंधसे मां जानकीदेवी, कमलनयनभाई और मुझको वापूजीसे कारावासमें मिलनेकी इजाजत सरकार द्वारा प्राप्त हो गई। उपवासके १० वें दिन हम पूना पहुंचे। शामको ४ वजे करीव आगाखां महलमें हमने प्रवेश किया। राष्ट्रमाता पू० कस्तूरवा, देवी सरोजिनी नायडू, श्रीमती मीरावहन (मिस स्लेड), डा० सुशीला नय्यर, डा० गिल्डर, वहन मनु गांधी आदि सव वहीं थे। वातावरणमें गंभीरता छाई हुई थी। धीमेसे झिझकते हुए हमने वापूजीके दर्शन किए। उस दिन वापूजीकी स्थिति अत्यंत नाजुक थी, जवान लड़खड़ाने लगी थी, फिर भी भाईको उन्होंने पहचाना। कमलभाई घुटने टेक कर

पलंगके पास झुके तव वापूजीने उनके माथे पर हाथ रख कर गहरे आशीर्वाद दिये।

वापूजीके पलंगके सामने दीवाल पर पू० मीरावहनने 'हे राम' की तस्वीर टांग रखी थी। उस पर घरसे कातकर लाई हुई आजकी एक सूतकी आंटी मैंने पहना दी। फिर हम सव पूज्य वा के पास उनके कमरेमें आकर वैठे, तो वा ने अपनी अडिग श्रद्धासे हमें सहज ही यह आश्वासन दिया: "आप घवरायें नहीं, वापूजी अच्छे हो जायंगे। जव तक मैं स्वस्थ हूं तव तक वापूजीको कुछ नहीं होनेवाला है। . . ."

वापूजीके २१ दिनके उपवास समाप्त होने तक हम पूनामें रहे। प्रतिदिन शामको ४ वजे हम नियमित रूपसे वापूजीके दर्शनोंके लिए जाते थे। ६४० तारकी एक सूतकी माला रोज वापूजीके सामने टंगी 'हे राम' की तस्वीर पर चढ़ानेका मौका मुझे मिलता था। वापूकी कठोर तपस्याके वीस दिन वीत गये। २१ वें दिन उपवास छूटना था। उस दिन सुवह हम आगाखां महलमें पहुंचे। वापूजीका पलंग वाहरके लम्वे वरामदेमें विछा था। वे आरामसे लेटे थे। डा० सुशीलावहन वगीचेसे ताजे फूल ले आईं। कदलीके पत्ते पर वापूजीने अपने हाथसे वड़ी कोमलताके साथ एक फूल वड़ी सुन्दरतासे सजाया। भावमयतासे सुशीलावहनसे कुछ कहा। स्वर्गीय महादेवभाई देसाईकी समाधि पर चढ़ानेके लिए वह वापूजीके हाथसे सजाया हुआ 'सुमन-पत्र' ले गईं। वे लौटकर आईं तव तक वापूजी ध्यानमग्न रहे। सुशीलावहनके लौट आने पर मंगलमय प्रार्थना हुई। २१ दिनके दीर्घ उपोषणका पारणा करनेका समय उपस्थित हुआ। पूज्य वा के हाथसे मोसम्वीका रस लेकर पूज्य वापूजीने अपना कठोर तप पूर्ण किया। पूजनीय माता कस्तूरवाकी अडिग श्रद्धा सफल हुई।

तिथिके अनुसार वह दिन पूज्य काकाजीका स्मृतिदिन था। इसका खयाल पूज्य वापूजीको मैंने दिलाया तव वे एकदमसे वोल उठे: 'केवुं अद्भुत कहेवाय!'—अर्थात् कैसी अद्भुत वात है! उपवास आरंभ होनेका दिन और उपवासकी पूर्णाहुतिका दिन दोनों जमनालालजीके स्मृति-दिवस थे। पिता-पुत्रकी कैसी अनोखी प्रीति और अद्भुत अभिन्नता थी!

एक वर्ष वाद २२ फरवरी, १९४४ को आगाखां महलकी नजरबंदीमें ही माता कस्तूरवाकी जीवन-ज्योति भारत मातामें विलीन हो गई।

आशा और उत्साहका संचार

सन् १९४४ में गांधीजीकी रिहाईसे भारत और कांग्रेसके इतिहासमें एक नये अध्यायका श्रीगणेश हुआ था। जनता और सरकार दोनों ही को उनसे वहुत कुछ आशाएं थीं। जनता चाहती थी कि गांधीजी जादूकी छड़ी घुमाकर निराशाकी परिस्थितिका अन्त कर उसके स्थान पर **आशा और विश्वासका संचार** कर दें। सरकार चाहती थी कि वे व्यक्तिगत और राष्ट्रीय आत्म-सम्मानको त्याग कर सत्य और अहिंसाके अपने चिर-सिद्धान्तों की वलि चढ़ा दें और पराजित पक्षकी भांति राजनीतिके अलावा अन्य राष्ट्रीय कल्याणकारी क्षेत्रोंमें अपना सहयोग प्रदान करें।

गांधीजीने जनतासे कहा कि मेरे पास ऐसा कोई पारस पत्थर नहीं है जो जनताकी शिथिल मानसिक स्थितिके लोहेको सोनेमें वदल सके और न कोई ऐसा जीवनदायी अमृत ही है जो उदास मनमें स्फूर्ति और उत्साहका संचार कर सके।

'आजाद हिन्द' : 'जय हिन्द'

ई० सन् १९४५ का जमाना था। आजाद हिन्द फौजके मुकदमोंसे भारत भरमें वड़ी सनसनी फैल गई थी। सवसे पहले कर्नल शाहनवाज, कप्तान सहगल तथा लेफ्टिनेंट ढिल्लन पर मामले चलाए गए। सच तो यह है कि उन्हींके कारण आजाद हिन्द फौजकी स्थापनाके इतिहास पर प्रकाश पड़ा। भारतमें ऐसा शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसका दिल फौजके रोमांचकारी अनुभवों तथा साहसिक कार्योंको जानकर हिल न उठा हो। जज-एडवोकेटकी अदालतमें जिन घटनाओंका वयान किया जाता था उन्हें भारतकी साक्षर जनता वड़ी उत्कंठासे नित्य ही पढ़ती थी और निरक्षर जनता वड़ी उत्सुकतासे उसे सुनती थी। इन मुकदमोंका विवरण सुननेके लिए निजी तथा सार्वजनिक रेडियोके आसपास लोगोंकी भीड़ लगी रहती थी। . . .

मुकदमोंकी सुनवाई समाप्त होने पर तीनों अभियुक्तोंको आजन्म कारावासका दण्ड दिया गया; किन्तु प्रधान सेनापतिने उन्हें इस दण्डसे

मुक्त कर दिया। उनके छोड़े जाने पर देश भरमें खुशियां मनाई गईं और 'जय हिन्द' के नारेके साथ उनका स्वागत किया गया।[1]

जमनालालजीकी यादमें

"वर्धामें जो केन्द्रीय गोसेवा-संघ चलता है वह स्वर्गीय जमनालालजी की अंतिम कृति है। उनकी लोकोपयोगी प्रवृत्तियां अनेक थीं। वर्षोंसे धन कमानेका मोह उन्होंने छोड़ रखा था। जो कुछ धन कमाते थे, सो लोक-सेवामें लगानेके लिए। ११ फरवरी, १९४६ को उनकी पांचवीं पुण्यतिथि थी। उनके अनुयायियों और साथियोंने इस पुण्यतिथिका समय जमनालालजीकी अंतिम प्रवृत्तिका विचार करनेमें बिताया। सब जानते हैं कि अपने देहान्तके एक घंटे पूर्व भी वे कुछ-न-कुछ गोसेवाका कार्य कर रहे थे। गोपुरी नामका क्षेत्र भी उन्होंने बनाया था। उनकी समाधि गोपुरीमें ही है और उक्त सभा भी वहीं हुई। 'गोसेवा' शब्दका प्रयोग विचारपूर्वक हुआ है और गोरक्षामें जो मुरब्बीपन रहा है वह सेवा शब्दके स्वीकारसे नहीं रहता। गायको हिन्दूमात्र माता समझता है; और वह माता है ही। एक अंग्रेज लेखकने उसे मानव-समृद्धिकी माता माना है—'मदर ऑफ प्रोस्पेरिटी' कहा है। और यह प्रयोग ठीक भी है। यह दूसरी बात है कि पश्चिमके लोग गायको खा जाते हैं। लेकिन वे भी मानते हैं कि मनुष्य-जीवनमें जो अनेक प्राणी हिस्सा लेते हैं, उनमें गायका सबसे बड़ा स्थान है।

बगैर गायके दूधके मनुष्य-जीवनका चलना असम्भव नहीं, तो मुश्किल अवश्य है। इस गोसेवाके भीतर पशु-पालन रहा है। यह पशु-पालन हमारे हिन्दुस्तानमें बड़े महत्त्वका प्रश्न है। और यह दुःखकी बात है कि जिस मुल्कमें गायकी भक्ति होती है, उसी मुल्कमें उस पशुकी देखभाल नहीं की जाती है। उसको काटते नहीं हैं, तो निर्दयतासे सताते हैं। बात यहां तक पहुंच गई है कि आज हिन्दुस्तानके करोड़ों पशु हिन्दुस्तानकी भूमिमें भाररूप माने जाते हैं, और उनको हजारोंकी संख्यामें कतल करके भार

१. 'कांग्रेसका संक्षिप्त इतिहास' से।

कम करनेकी बात भी चलती है। ऐसी हालतमें एक जमनालालजी क्या कर सकते थे? लेकिन अब तो वे भी नहीं हैं।

पशु-पालन व्याख्यानसे नहीं हो सकता। उसके लिए तो गहरे ज्ञान, अभ्यास व त्यागकी आवश्यकता है। करोड़ों रुपया इकट्ठा करनेमें वाणिज्य नहीं है, लेकिन पशु-पालन कैसे करना, उसका शुद्ध ज्ञान हजारों लोगों तक कैसे पहुंचाना और कैसे उसका अमल करना—इस सबकी छानबीनमें और ऐसे कामोंमें द्रव्य खर्च करनेमें सच्चा वाणिज्य रहा है। आज होता है उल्टा। धनिक-वर्ग धन किसी-न-किसी तरह कमा लेता है, और उसमें से दो-चार कौड़ीका दान करके शास्त्रीय ज्ञानविहीन लोगोंके मारफत नामकी गोशाला बनाकर अपने दिलको धोखा देता है कि पुण्यका काम कर लिया। इन त्रुटियोंका दर्शन जमनालालजीने कर लिया था और उन्हें दूर करनेके लिए वे एक योजनाका मनन कर रहे थे। इतनेमें यमदूतोंने उनको बुला लिया। स्वराज्य पानेके वास्ते जितनी शक्ति चाहिये, इस कठिन समस्याको हल करनेके लिए शायद उससे भी अधिक शक्तिकी आवश्यकता है।"

हरिजनसेवक, मोहनदास करमचंद गांधी
१७.२.'४६

महामानवका महाभिनिष्क्रमण

राष्ट्रपिता महात्मा मोहनदास करमचंद गांधी इस युगके महामानव कहलाये। ऐसा क्या सम्मोहन उनमें था? वे मानव-प्रेमी थे, मानवमात्रके लिए उनके मनमें गहरा प्यार भरा था। उन्होंने जन-जनमें नवजीवन जगाया और जगतको यह दिखा दिया कि मानव-जीवन कितना महान है!

मानवसे बढ़कर इस दुनियामें श्रेष्ठतर और क्या है? यह महिमामयी धरती हमारी माता है और हम सब अपनी जन्मभूमिकी प्यारी प्रजा हैं। इसीसे हमारा यह मूल्यवान मानव-जीवन महिमावान है। इसमें दैवी-सम्पदाका बड़ा भारी खजाना भरा है। सद्‌गुणोंके इस खजानेको बढ़ानेके लिए ही इस पुण्यवान धरती-माताके वक्षःस्थल पर परमेश्वरके विशिष्ट गुणावतार होते रहे हैं। उसी तरह इस युगमें भारत-माताकी गोदमें गांधी बापूका मोहनावतार हुआ और उन्होंने मानवताकी महिमाको मानवके अंतराकाशमें प्रकाशमान किया। 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'—मानवाधिकारके इस महा-मंत्रको पुण्यभूमि भारतमें सिद्ध किया। बाद वे दिवंगत हो गये। उनका मानवीय अवतार-कार्य प्रेम-परिपूर्ण हो गया।

अखिल भारतीय कांग्रेसके इतिहासमें राष्ट्रपिताकी 'स्वराज्य-साधना' के अंतिम वर्षका विवरण इस प्रकार प्रगट हुआ है:

३ जून, १९४७ के अंग्रेज सरकारके वक्तव्य पर विचार करनेके लिए विधान-परिषद्, कर्जन रोड, नई दिल्लीमें, ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटीका एक विशेष अधिवेशन १४ और १५ जून, १९४७ को दिनके २ बजे हुआ। उसमें पारित प्रस्ताव—

"ब्रिटिश कैबिनेट-मिशनके १६ मई, १९४६ के वक्तव्य तथा बादमें ६ दिसम्बर, १९४६ को उस पर की गई व्याख्याओंको कांग्रेसने स्वीकार कर लिया है और मिशनकी योजनाके अनुसार विधान-परिषद् कायम करके वह

उस पर अमल कर रही है। विधान-परिषद् ६ माससे अधिक समयसे अपना काम कर रही है। परिषद्ने अपना ध्येय हिन्दुस्तानके लिए स्वतन्त्र लोक-तन्त्र-राज्य घोषित किया है। इसके अलावा, प्रत्येक हिन्दुस्तानीके लिए, समान बुनियादी अधिकारों और सुअवसरोंके आधार पर, आजाद भारतीय संघका विधान बनानेमें भी विधान-परिषद्ने काफी उन्नति कर ली है।

"ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटीको भरोसा है कि राजा लोग, आजकी स्थितिको भलीभांति समझकर, अपनी प्रजा तथा समस्त भारतके हितार्थ अपनी प्रजाके हमराह, प्रजातंत्रकी इकाइयां बनकर हिन्दुस्तानी संघमें सम्मि-लित होंगे।

"बुनियादी अधिकारोंकी कमेटीमें हमने सारे देशके लिए एक ही सामान्य नागरिकता मान ली है। प्रत्येक रियासतका नागरिक हिन्दुस्तानका नागरिक है और उसे भारतीय विधान-परिषद्में प्रतिनिधित्व करनेका अधिकार है। रियासतके बाहरसे आया हुआ दीवान नागरिकोंका यह अधिकार सीमित नहीं कर सकता। हमें भारतका विधान बनानेमें रियासती प्रजाजनोंके परामर्शकी जरूरत है। . . .

"हमें फिर अपनेको उस नए कार्यमें लगा देना चाहिये, जो स्वतंत्रता-प्राप्तिके समान ही महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि हमने जो आजादी हासिल की है वह तब तक पूरी नहीं हो सकती जब तक भारतकी एकता न स्थापित हो जाय। विभाजित भारत तो गुलाम बन जायगा। इसलिए हम दूसरी गुलामीसे जहां तक हो सके शीघ्र दूर हो जायं। हमें स्वभाग्य-निर्णयके जो सुअवसर प्राप्त हैं उन्हें अब हमारे भारतमें एकता कायम करनेके उत्कृष्ट ध्येयमें लगा देना चाहिये। इस कार्यमें ईश्वर हमारी मदद करे।"[१]

इस तरह जब कांग्रेस अपने स्वभाग्य-निर्णयके प्रयत्नमें संलग्न थी तब राष्ट्रपिता गांधीजी स्वयं राष्ट्रीय एकता कायम करनेकी चिन्तासे चिन्तित होकर हिन्दू-मुसलमानोंके दंगे शान्त करानेमें लगे हुए थे। कुमारी मनुबहनकी 'अंतिम झांकी' नामक पुस्तकसे लिए गए बापूजीके निम्न उद्गारोंमें उनके हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके लिए प्राणपणसे किये गये प्रयत्नोंकी तथा इसी ध्येयके लिए हुए उनके अंतिम बलिदानकी झलक हमें मिलती है:

---

१. 'कांग्रेसका संक्षिप्त इतिहास' से।

हम मन्दिर, मस्जिद या गिरजेमें जाते हैं तब चप्पल नहीं पहनते; तब मुझे तो दरिद्र-नारायणके पास जाना है। जिस भूमिके स्वजन लुट गये हैं, जहां स्त्रियों और बच्चोंकी हत्या हुई है, जहांके लोगोंके पास लाज ढंकनेको भी कपड़े नहीं हैं, जहां अनेक निर्दोषोंकी पवित्र हड्डियां पड़ी हुई हैं; ऐसी भूमि पर मुझे चलना है और ऐसे लोगोंसे मिलने जाना है। यह मेरे लिए धर्मयात्रा है। कलसे मेरा नियमित प्रवास शुरू होनेवाला है। ऐसी हालतमें मैं चप्पल कैसे पहन सकता हूं?

चण्डीपुर, सोमवार, ६ जनवरी, १९४७

आज ही लिखाये गये एक हृदयस्पर्शी पत्रमें बापूने लिखाया: "... मेरे स्वास्थ्यकी चिन्ता न करो। अभी तो बहुत काम देता है। कब तक काम देगा, यह तो भगवान ही जाने। ... मेरी चिन्ता करनेवाला एक सर्वशक्तिमान वैद्य हमारे सिर पर है, वह काफी है। ... यहांका काम अटपटा है। रास्ता अंधेरेमें तय करना है। 'मेरे लिए एक कदम काफी है'।"

चण्डीपुर, मंगलवार, ७ जनवरी, १९४७

मैं तो यहां यज्ञ करके बैठा हूं। मेरे लिए यही स्वातंत्र्य-दिवस है। परन्तु गांवके लोगोंमें उत्साह पैदा करनेके लिए तुम लोग प्रेस-प्रतिनिधि और दूसरे उत्सव मना सकते हो।

अभी-अभी 'जन-गण-मन' गाया गया। कितना सुन्दर गीत है! हिन्दुस्तानमें ऐसी ऐसी चीजें मौजूद हैं। परन्तु इसे हम हृदयसे गाएं तो सब एक हो जायं।

वासा, २६ जनवरी, १९४७

नोआखाली तो एक ऐसा रमणीय प्रदेश है, जहां अपार प्राकृतिक सम्पत्ति है। यदि इसमें हिन्दू-मुसलमानोंकी अपूर्व एकता और हार्दिक मित्रता हो जाय, तो मैं इसे पृथ्वी पर स्वर्ग कहूंगा।

मैं तो यहां अपनी अहिंसाकी परीक्षा पास करने आया हूं। अहिंसामें असफलताके लिए तो स्थान ही नहीं है। मैं यहां 'करूंगा या मरूंगा'।

जिसके हृदयमें दोनों जातियोंके बीच या मानव-जातिके बीच ऐक्य-मैत्री स्थापित करनेकी लालसा है, ऐसे अहिंसक मनुष्यके लिए दूसरा कोई रास्ता हो ही नहीं सकता। मेरे लिए तो है ही नहीं।

विजयनगर, सोमवार, १० फरवरी, .

एशियाका पैगाम

दिनांक २ अप्रैल, १९४७ को दिल्लीमें एशियायी कान्फरेंसकी आखिरी बैठकमें भाषण करते हुए गांधीजीने बताया कि पश्चिमको ज्ञानकी रोशनी पूर्वसे ही मिली है। इस सिलसिलेमें उन्होंने कहा: "... जो बात मैं आपको समझाना चाहता हूं, वह एशियाका पैगाम है। उसे पश्चिमी चश्मोंसे या एटम-बमकी नकल करनेसे नहीं सीखा जा सकता। अगर आप पश्चिमको कोई पैगाम देना चाहते हैं, तो वह प्रेम और सत्यका ही पैगाम होना चाहिये। जमहूरियतके इस जमानेमें, गरीबसे गरीबकी जागृतिके इस युगमें, आप ज्यादासे ज्यादा जोर देकर इस पैगामका दुनियामें प्रचार कर सकते हैं। चूंकि आपका शोषण किया गया है, इसलिए उसका उसी तरह बदला चुकाकर नहीं, बल्कि सच्ची समझदारीके जरिये आप पश्चिम पर पूरी तरहसे विजय पा सकते हैं। अगर हम सिर्फ अपने दिमागोंसे नहीं, बल्कि दिलोंसे भी इस पैगामके मर्मको, जिसे एशियाके जरथुस्त, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद जैसे महापुरुष हमारे लिए छोड़ गए हैं, एक साथ समझनेकी कोशिश करें और अगर हम सचमुच उस महान पैगामके लायक बन जायं, तो मुझे विश्वास है कि हम पश्चिमको पूरी तरहसे जीत लेंगे। हमारी इस जीतको पश्चिम खुद भी प्यार करेगा।

पश्चिम आज सच्चे ज्ञानके लिए तरस रहा है। अणुबमोंकी दिनदूनी बढ़तीसे वह नाउम्मीद हो रहा है। क्योंकि अणुबमोंके बढ़नेसे सिर्फ पश्चिमका ही नहीं, बल्कि पूरी दुनियाका नाश हो जायेगा; मानो बाइबलकी भविष्य-वाणी सच होने जा रही है और पूरी कयामत होनेवाली है। अब यह आपके ऊपर है कि आप दुनियाकी नीचता और पापोंकी तरफ उनका ध्यान

खींचे और उसे बचावें। . . . यही वह विरासत है जो मेरे और आपके पैगम्बरोंसे एशियाको मिली है।"[१]

भगवानसे प्रार्थना

२ अक्तूबर, १९४७ को अपने ७८ वें जन्म-दिवस पर उन्होंने (बापूने) कहा था: "मैं अपनी हर सांसके साथ परमात्मासे यह प्रार्थना करता हूं कि या तो मुझे इस आगको शान्त करनेकी शक्ति दे या मुझे इस दुनियासे उठा ले। मैं, जिसने भारतकी आजादीके लिए अपनी जानकी बाजी लगा दी, स्वयं इस खून-खराबीका एक जीवित गवाह नहीं बनना चाहता।"

*

१२ जनवरी, १९४८ को दिल्लीमें अपनी प्रार्थना-सभामें उपवासकी सूचना देते हुए गांधीजीने कहा था: "कोई भी इन्सान, जो पवित्र है, अपनी जानसे ज्यादा कीमती चीज कुर्बान नहीं कर सकता। मैं आशा रखता हूं और मैं प्रार्थना करता हूं कि मुझमें उपवास करनेके लायक पवित्रता हो। जब मुझे यकीन हो जायगा कि सब कौमोंके दिल मिल गये हैं और वह बाहरके दबावके कारण नहीं, मगर अपना-अपना धर्म समझनेके कारण तब मेरा उपवास छूटेगा।"[२]

स्वराज्य-प्राप्तिके बाद प्रथम स्वातन्त्र्य-दिन पर २६ जनवरी, १९४८ को प्रगट हुए बापूके ये गहरे हृदयोद्‌गार हमारे लिए कितने प्रोत्साहक हैं:

"आज स्वाधीनता-दिवस है। आज हम यह उत्सव इसीलिए मना सकते हैं कि हमारी अनेक नई आशाएं परिपूर्ण हों। अब भारतके सात लाख गांव स्वतन्त्र होकर यह दिखायें कि भारतका सच्चा सोना और खमीर तो हम ही हैं। यह नूर दिखाना स्वतन्त्रतामें ही संभव है।

हम सबको इस भूमिको सर्व-धर्म-समानताकी भावनाके साथ आजादीके रास्ते ले जानेका जी-तोड़ श्रम करना होगा।"

---

१. हरिजनसेवक, २०.४.'४७।

२. 'गांधी श्रद्धांजलि ग्रन्थ' से।

कांग्रेस क्या करे?

२७ जनवरी, १९४८ को बापूने कांग्रेसके विषयमें लिखा:

"इंडियन नेशनल कांग्रेस देशकी सबसे पुरानी राष्ट्रीय राजनीतिक संस्था है। उसने कई अहिंसक लड़ाइयोंके बाद आजादी हासिल की है। . . . कांग्रेसने राजनीतिक आजादी तो हासिल कर ली है, मगर उसे अभी आर्थिक आजादी, सामाजिक आजादी और नैतिक आजादी हासिल करनी है। ये आजादियां चूंकि रचनात्मक हैं और भड़कीली नहीं हैं, इसलिए उन्हें हासिल करना राजनीतिक आजादीसे ज्यादा मुश्किल है। जीवनके सारे पहलुओंको अपनेमें समा लेनेवाला रचनात्मक काम करोड़ों जनताके सारे अंगोंकी शक्ति को जगाता है। . . .

"अभी तक कांग्रेस बेजाने देशकी सेविका थी। वह खुदाई खिदमतगार थी—भगवानकी सेविका थी। अब वह अपने आपसे और दुनियासे कहे कि वह सिर्फ भगवानकी सेविका है—न तो इससे ज्यादा है, न कम। अगर वह सत्ता हड़पनेके व्यर्थ झगड़ोंमें पड़ती है, तो एक दिन देखेगी कि वह कहीं नहीं है। भगवानको धन्यवाद है कि अब वह जनसेवाके क्षेत्रकी एक-मात्र स्वामिनी नहीं रही।"

*

२९ जनवरी, १९४८: रातमें अत्यन्त श्रान्त होने पर भी बापूने कांग्रेस-संविधानका मसविदा पूरा करके ही छोड़ा।

"है बहारेबाग दुनिया चन्द रोज,
देख लो जिसका तमाशा चन्द रोज।"

इतना कहते हुए बापूको खांसी आने लगी। यह देख-सुनकर मेरी आंखें डबडबा उठीं—हाय! बापूके हृदयकी वेदना कितनी बढ़ती जा रही है, मानो इस समय उनके लिए सिवा ईश्वरके और कोई भी नहीं है।[1]

१. 'अन्तिम झांकी' से।

हे राम!

३० जनवरी, १९४८: नियमानुसार बापू प्रार्थनाके लिए जगे, मुझे भी जगाया। . . . बापूने दतौन करते हुए आज भी एक बात कही:

"मैं देख रहा हूं कि मेरा प्रभाव मेरे निकट रहनेवालों परसे भी उठता जा रहा है। प्रार्थना तो आत्माको साफ करनेकी झाड़ू है। मैं प्रार्थना में अटल श्रद्धा रखता हूं। . . .

"यह सब देखनेके लिए भगवान अब मुझे अधिक जिन्दा न रखे, यही चाहता हूं। आज मैं तुमसे यह भजन सुनना चाहता हूं:

'थाके न थाके छताय हो मानवी न लेजे विसामो!'—थके या न थके तब भी हे मानव! तू विश्राम न लेना।"

आश्चर्यकी बात है कि आज पहली बार बापूने यह भजन पसन्द किया। शायद बापू उसे साकार करना चाहते थे। . . .

अन्तिम क्षणोंका वर्णन मनुबहनने अपनी पुस्तकमें निम्न शब्दोंमें किया है:

"बापू चार सीढ़ियां चढ़े और सामने देख नियमानुसार हम लोगोंके कन्धे परसे अपने हाथ उठाकर उन्होंने जनताको प्रणाम किया और आगे बढ़ने लगे। मैं उनके दाहिनी ओर थी। मेरी ही तरफसे एक हृष्ट-पुष्ट युवक, जो खाकी वर्दी पहने और हाथ जोड़े हुए था, भीड़को चीरता हुआ एकदम घुस आया। मैं समझी कि यह बापूके चरण छूना चाहता है। बापू चाहे जहां जायं, लोग उनके चरण छूने और प्रणाम करनेके लिए पहुंच जाते थे। हम लोग भी अपने ढंगसे उनसे कहा करते थे कि बापूको यह ढंग पसन्द नहीं। इसी कारण मैंने इस आगे आनेवाले आदमीके हाथको धक्का देते हुए कहा: 'भाई, बापूको दस मिनट देर हो गई है, आप क्यों सता रहे हैं?' लेकिन उसने मुझे इस तरह जोरसे धक्का मारा कि मेरे हाथसे माला, पीकदानी और नोटबुक नीचे गिर गईं। जब तक और चीजें गिरीं, मैं उस आदमीसे जूझती ही रही। लेकिन जब माला भी गिर गई, तो उसे उठानेके लिए नीचे झुकी। इसी बीच दन . . . दन . . . दन . . . एकके बाद एक तीन गोलियां दगीं। अन्धेरा छा गया। वातावरण धूमिल हो उठा और गगनभेदी आवाज हुई।

‘हे राम! हे रा . . .!’ कहते हुए वापू हाथ जोड़े हुए तत्काल जमीन पर आ गिरे। . . . वस . . .! ”[1]

ॐ पूर्ण है वह, पूर्ण है यह;
पूर्णसे निष्पन्न होता पूर्ण है।
पूर्णमेंसे पूर्णको यदि लें निकाल;
शेष तव भी पूर्ण ही रहता सदा।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

प्रार्थना

“एक पवित्र आत्मा परमात्मामें लीन हो गई है और उसकी देहका अन्तिम अवशेष भी अव सृष्टिमें मिल गया है।

“देह मरनेसे आत्मा नहीं मरती, इसकी साक्षी आज तुम्हारा हमारा मन दे रहा है। जो विचार गांधीजीके हृदयमें रहते थे, जिनका प्रचार देहके वन्धनके कारण मर्यादित हो गया था, वे आज तुम्हारे हमारे हृदयमें प्रवेश कर रहे हैं। आगे हम सव तदनुसार वर्तन करनेका सतत यत्न करें।

“हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ख्रिस्ती, यहूदी आदि विभिन्न धर्मके लोग हमारे भाई-वहन हैं। ये हमारे वड़े भाग्य हैं। इसे पहचान कर हम सव प्रकारके भेदभाव भूल जायं और प्रेमसे एक वनकर रहें। हरिजन और परिजन यह दुष्ट भेद मनसे निकाल दें और सव हरिजन ही वन जायं। अपने हाथके सूतकी खादीसे अपना शरीर ढंकें। गांवोंको शीशे जैसा निर्मल रखें। व्यसन सव निकाल दें। ईश्वरका नित्य स्मरण करें। सत्य और अहिंसाका व्रत लें। परमेश्वर इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेका वल हमें दे, यही प्रार्थना।”

धाम नदीका तट, गांधीघाट, वर्धा — विनोवा
१२ फरवरी, १९४८, मध्याह्न

---

१. ‘अंतिम झांकी’ से।

राष्ट्रपिताकी स्मृतिमें

सर्वोदयी सम्मेलन

सन् १९४८ के मार्च महीनेमें राष्ट्रके साधना-धाम सेवाग्राम,[1] (वर्धा)में राष्ट्रपिताकी परम्परागत प्रेरक स्मृतिमें राष्ट्रके महानतम सेवकोंका एक बड़ा महत्त्वपूर्ण सम्मेलन हुआ। उसमें राष्ट्रकी सभी महत्त्वपूर्ण रचनात्मक संस्थाओंका एक सम्मिलित 'सर्व-सेवा-संघ' बना और 'सर्वोदय समाज' की स्थापना भी हुई। उस समयके भारतके प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरूके व्यथापूर्ण भाषणका महत्त्वपूर्ण सारांश :

"विनोबाजीने कहा कि हमें इस वक्त बुनियादी बातोंको सोचना चाहिये। मैं इससे सहमत हूं। आज हमारे लिए जो बुनियांदी बात है वह यह कि हमारी आयी हुई आजादी किस तरह बनी रहे। हमारी आजादीको खतरा बाहरसे नहीं। इस वक्त बाहरसे हमलेका अन्देशा नहीं है। डर है आपसकी हिंसासे—भीतरी लड़ाईसे। पहले जब आजादीकी लड़ाई चलती थी और हिंसा-अहिंसाके सवालसे दिमाग परेशान हो जाता था, तो मैं बापूके पास चला जाता था।

अब हमको यह सोच लेना है कि अव्वल कौनसी बात हो, दूसरी कौनसी और तीसरी कौनसी? पहली चीज हमें पहले रखनी चाहिए। हम कमजोर क्यों हो गये हैं? इस बात पर गौर करना जरूरी है। इस दृष्टिसे विनोबाजीकी बात बहुत माकूल थी। उन्होंने जो सवाल उठाया वह दरअसल बुनियादी चीज है।

---

१. सेवाग्राम आज अखिल विश्वके प्रवासी यात्रियोंके लिए नव-जीवन-प्रद प्रेरणा-धाम बन गया है। राष्ट्रपिता बापूजी और उनके पांचवें पुत्र काकाजीके सम्मिलित स्मृति-संगमके फलस्वरूप आज वर्धा भारतवासियोंका पवित्र तीर्थधाम बन गया है तथा प्रेमात्मन् विनोबाजीकी ज्ञान-कर्म-भक्तिमय त्रिविध जीवन-साधनाकी त्रिवेणीने उसे भारतका पंचम तीर्थराज बना दिया है।

देखिये, आज दुनियाका हाल क्या है। हमारे आपके देखते-देखते दो लड़ाइयां हो चुकीं। मुमकिन है कि तीसरी जंग भी छिड़ जाय। उससे हम दूर रहना चाहें तो रह नहीं सकते। यों अलग रहें तो भी दुनियामें लगी हुई आगकी आंचसे हम बच नहीं पायेंगे। सरकारके एक सदस्यके नाते मैं चुपचाप कैसे बैठ सकता हूं? मुझे अपने देशके बचावकी माकूल तैयारी करनी पड़ेगी। यह एक सवाल हमारे सामने है। हमारी नीयत तो अच्छी है। लेकिन हम किन अच्छे साधनोंको इस्तेमाल करें, इसका फैसला करना आसान नहीं। अगर नीयत अच्छी है तो दूसरी बातोंको नजर-अन्दाज किया जाय, यह तो वही पुरानी बात है।

दूसरी बात जनताके ऊपर जो बोझ है, जो शोपण होता है, उसको हटानेका क्या तरीका हो? विनोबाजीने सलाह दी है कि हममें से हरएकको जरूरतसे ज्यादा चीजें नहीं रखना चाहिये। गैर-जरूरी चीजोंका इस्तेमाल नहीं करना चाहिये। उसूली और बुनियादी तौर पर उनकी राय ठीक है। हां, इसमें मतभेद हो सकता है कि जरूरी क्या है और गैर-जरूरी क्या है। बाज बातों पर आप मुझसे ज्यादा जानते हैं। उन्हींमें से यह भी एक बात है। मैं विनोबाजीकी बातकी ताईद करता हूं।

मैं इतना ही कह सकता हूं कि आपके जो फैसले होंगे उन्हें पूरा करनेमें मदद पहुंचानेकी मैं कोशिश करूंगा। आप मुझसे मार्गदर्शन न चाहें। मुझे भी अपने 'कैंप-फॉलोअर्स' में से एक समझियेगा।"[१]

विश्वशान्ति परिषद्

इस अर्सेकी दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना थी विश्वशान्ति-परिषद्, जो वर्धामें दिसम्बर १९४९ के अन्त और जनवरी १९५० के आरम्भमें हुई। विश्वके अनेक देशोंसे, जिनमें इंग्लैंड, अमेरिका, फ्रान्स, इटली, जापान, हालैण्ड, चेकोस्लोवाकिया तथा न्यूजीलैण्ड शामिल थे, प्रसिद्ध शान्तिवादी कार्यकर्ता महात्मा गांधीकी पवित्र स्मृतिमें सेवाग्राममें एकत्र हुए थे। सी० पी० और बरारके

१. रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन, सेवाग्राममें हुए अधिवेशनमें १३ मार्च, १९४८ को दिये गये पंडित जवाहरलाल नेहरूके भाषणका अंश। 'सम्मेलन-रिपोर्ट' से।

गवर्नर श्री मंगलदास पकवासाने अपनी सरकार तथा जनताकी ओरसे इन प्रतिनिधियोंका हार्दिक स्वागत किया।

परिषद्के अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसादने कहा: "महात्मा गांधीका व्यक्तित्व अत्यन्त उदात्त और महान था। उन्होंने हमें और जगतको एक महान सन्देश दिया। भारतके लाखों-करोड़ों लोगोंने उनके सन्देशसे प्रभावित होकर उनका अनुसरण किया। यद्यपि हम उनके पूर्ण अनुयायी होनेका दावा नहीं कर सकते, फिर भी उनके मार्गदर्शनमें ही हम अपनी स्वाधीनता प्राप्त कर सके। यद्यपि आज भी हम भारतमें एक बड़ी सेना और पुलिसकी शक्ति रखते हैं, फिर भी भीतर ही भीतर यह विचार और विश्वास बना रहता है कि हमने महात्मा गांधी द्वारा बताया हुआ मार्ग अभी तक छोड़ा नहीं है। गांधीजी आज जीवित होते तो उन्होंने स्वाधीन भारतको वह सही मार्ग बताया होता, जिस पर उसे चलना चाहिये। परन्तु ईश्वरने ऐसे समय उन्हें बुला लिया जब हमें उनकी विशेष जरूरत थी। अब हमें अपनी सारी ही कमजोरियोंके साथ उनके अधूरे छोड़े हुए कार्यको पूरा करना है।"

परिषद्का उद्घाटन करते हुए विनोबाने कहा: "अहिंसाका अर्थ इतना ही नहीं है कि हम हिंसक और नाशकारी प्रवृत्तियोंमें भाग न लें। उसका मुख्य प्रकटीकरण है रचनात्मक प्रवृत्तियोंके साथ एकरूप होना और मानव-जातिकी सेवामें लीन रहना। अहिंसा देवीके पास बड़ेसे बड़े शक्तिशाली हथियार हैं। वे प्रेमके हथियार हैं। इसलिए वे सर्जन करनेवाले हैं, संहार करनेवाले नहीं। और फिर भी वे विनाश करते हैं। वे घृणाका, विषमताका, भूखका और रोगका विनाश करते हैं।"

अपना भाषण जारी रखते हुए विनोबाने एक मौलिक विचार प्रकट किया: "आज सारी दुनिया तीसरे विश्वयुद्धकी संभावनाकी बात करती है। परन्तु मैं विश्वयुद्धसे नहीं डरता। मुझे डर छोटी-छोटी लड़ाइयोंका और छोटे-छोटे झगड़ोंका लगता है। विश्वयुद्धोंकी संभावना हमें तेजीसे अहिंसाकी ओर ले जा सकती है, जब कि छोटी-छोटी लड़ाइयां हमें हिंसा और विनाशकी ओर घसीट कर ले जाती हैं। इसलिए हमें इन छोटी-छोटी लड़ाइयोंसे, छोटे-छोटे झगड़ोंसे सावधान रहना है। हमें जनताकी सेवामें लग

जाना चाहिये और प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये कि लोगोंमें सदा मेलजोल और भाईचारा बना रहे।"

अन्तमें विनोबाने कहा: "मुझे यह कहते खुशी होती है कि देशके भीतरी कामकाजमें हमारी सरकारकी जो भी खामियां और दोष हों, परन्तु जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंकी बात है नेहरू-सरकारका सारा ध्यान विश्वशान्ति और सारे राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रता पर केन्द्रित हो रहा है। भारत अहिंसाकी शक्तिके विकासका प्रयत्न कर रहा है, जिससे कमजोर राष्ट्र निर्भय और बलवान बनें। अगर हम असफल रहे तो भगवानके द्वारा भेजे हुए दूसरे लोग हमारा स्थान लेंगे।"[1]

'निज गुण देई सुगंध बसाई'

सन् १९५० में विनोबाजी परंधाम, पवनार, वर्धामें अपने 'कांचन-मुक्ति' के सघन प्रयोगमें तल्लीन थे। उसी समय ५ दिसम्बरको उन्होंने काकाजीके सम्बन्धमें निम्नलिखित हृदयोद्‌गार व्यक्त किए थे:

"जमनालालजीके साथ मेरा बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था। यह इतने निकटका था कि इसके वर्णनके लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। उनके सत्य-निष्ठ जीवनका समग्र चित्र मेरी आंखोंके सामने खड़ा है, जिसका मैं बीस वर्ष तक सतत साक्षी रहा। हमारे जैसे उनके परिवार-जनोंको परमेश्वर ऐसी ही सत्यनिष्ठा दे, इतनी ही मेरी प्रार्थना है।"[2]

'दिनमपि रजनी सायं-प्रातः शिशिरवसंतौ पुनरायतः' की भांति काकाजी को दिवंगत हुए कई साल बीत गए। कांचन-मुक्तिके अनोखे प्रयोग द्वारा ज्ञान-कर्म-भक्तिकी पवित्र धाराओंका त्रिवेणी-संगम पवनारमें हो रहा था। सूर्य-नारायणके प्रेरक प्रकाश और प्रखर तापमें दिनभर कठिन श्रमोपासना करके शामको सूर्यास्तके समय धाम नदीके किनारे खड़े-खड़े, भक्तिभावमें विभोर होकर नाचते-गाते हुए प्रार्थना कराते समय बाबा (विनोबा) को देखकर चैतन्य महाप्रभुका स्मरण जाग उठता था। ऐसेमें ११ फरवरीका दिन आया, तो प्रार्थनाके बाद बाबाने काकाजीको स्मृतिमें कहा:

१. विनोबा: हिज लाइफ एण्ड वर्क—लेखक: श्रीमन्नारायण।

२. श्री रिषभदास रांका द्वारा लिखित पुस्तक 'जीवन-जौहरी' की प्रस्तावनासे।

"अच्छे पुरुष इतिहास भरमें हुए हैं। . . . पर वास्तवमें जो कुछ कार्य हो रहा है, जो प्रकाश फैल रहा है, वह केवल परमेश्वरका है और उसके अंश जगह-जगह प्रकट होते हैं। तो इस प्रकार सारा परमेश्वरका ही काम हो रहा है। हमें उससे यही पाठ लेना चाहिये कि अपने हिस्सेमें जो काम आवे वह पूर्ण करनेका प्रयत्न हमें करना चाहिये।

"जमनालालजी जैसे हमारे सुहृज्जनोंने अपना शरीर चन्दनकी तरह खपाया। जो शक्ति उन्हें भगवानने दी थी, उसका उन्होंने स्वार्थमें नहीं, परमार्थमें उपयोग किया। वैसे ही हमें भी करना चाहिये। हमारी जीवन-ज्योति भी उसी तरह भगवानके मन्दिरमें जलनी चाहिये। हमारी कृतिकी सुगन्ध भी वैसे ही भगवानके शरीरको समर्पण हो जानी चाहिये। ऐसी कुछ प्रेरणा सुहृज्जनों और सज्जनोंके स्मरणसे होती है।"[1]

"प्रभुजी! तुम चन्दन हम पानी,
जाकी अंग-अंग वास समानी!'

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'



१. प्रार्थना-प्रवचन, परंधाम, ११ फरवरी, १९५० ('सर्वोदय', फरवरी, १९५१)

प्रेरक प्रवाह

धर्मचक्र-प्रवर्तन

स्वराज्यके मन्त्रका जाप और स्वतन्त्रता-संग्रामकी साधना करते हुए बापूजीके साथ-साथ काकाजीने भी कितने असह्य कष्ट सहे, कितनी बार वे जेल गये और वहांकी असह्य यातनाएं सहर्ष सहीं। आखिर व्यक्तिगत सत्याग्रह करते हुए काकाजी इतने अधिक थक गये कि ममतामयी मृत्यु-माताने उन्हें अपनी वात्सल्यभरी गोदमें सुला लिया। वहां वे तत्काल बड़े सुखसे चिर निद्रामें लीन हो गये। कुछ समय बाद स्वराज्यका मन्त्र सिद्ध हो गया। हमने स्वराज्यकी सिद्धि प्राप्त कर ली। तब राष्ट्रपिता बापूजीने भी चिर-विश्राम पानेके लिए अपने अन्तरमें बसे श्रीरामकी याद की और 'हे राम' कहते हुए वे भी दिवंगत हो गये। फिर भी उनकी प्रेमभरी पवित्र और प्रेरक स्मृतियोंका प्रवाह सतत प्रवाहित होता ही रहा।

१२ फरवरी, १९५१ को राष्ट्रपिता बापूजीके स्मरणमें धाम नदीके बीचोंबीच गांधीघाट पर, गांधी-स्मृति स्तम्भके समीप लाखों लोगोंके बीच सामूहिक प्रार्थना हुई। उसके बाद विनोबाजीने अपने प्रवचनमें ऐसे अप्रतिम भाव अभिव्यक्त किये कि अब युग-परिवर्तन हो रहा है और धर्मचक्र-प्रवर्तन होनेवाला है। यह अपूर्व आगाहीका संकेत था। उन दिनों सेवाग्राममें कांचन-मुक्तिका सघन प्रयोग चल रहा था। उसी बीच सेवाग्राममें बुनियादी तालीम का सम्मेलन भी हुआ। उसीमें से सर्वोदय-यात्रा प्रवाहित हुई, जिसका समावेश शिवरामपल्लीके सर्वोदय-सम्मेलनमें हुआ। वहांसे तेलंगाना होकर लौटते हुए पोचमपल्लीमें अचानक 'भूदान-गंगा' का अवतरण हो गया।

तबसे सत्य, प्रेम, करुणाका अखण्ड चिन्तन करते हुए भूदानी बाबा विनोबा द्वारा भूदानसे ग्रामदान तक शान्तिमय क्रांतिका अद्भुत आन्दोलन संचालित हुआ है। उनके पुनश्चिन्तनमें जमनालालजीकी स्मृति-धाराका सहज

संगम होता ही रहा है, जिसकी झलक उनके हृदयोद्गारोंसे और नेत्रोंमें उभरते हुए भावोंसे अनेक बार मिलती रही है।

'मृत्युमें सौंदर्य है, कला है'

श्रद्धेय काकासाहब कालेलकरने बम्बईसे ८ सितम्बर, १९५३ को पू० काकाजीसे सम्बन्धित मृत्युके विषयमें पू० बापूजीके विचार इस तरह व्यक्त किये हैं: "एक समय जमनालालजीको उनके जन्म-दिवस पर आशीर्वाद भेजते हुए यरवडा जेलसे गांधीजीने लिखा था:

'जन्म और मृत्यु दोनोंकी बात सोचते हुए मुझे लगता है कि जन्मकी अपेक्षा मृत्युके सामने हम पराधीनतासे छूट जाते हैं। चन्द लोगोंने ब्राह्मी स्थितिका अनुभव भी किया है। अगर ठीक देखा जाय तो जन्मके मानी हैं–दुःखमें प्रवेश, पर मृत्यु तमाम दुःखोंसे पूर्ण मुक्ति बन सकती है। इस तरह हम मृत्युके सौन्दर्यके बारेमें और उसके लाभके बारेमें बहुत कुछ सोच सकते हैं। मैं तो आशीर्वाद देता हूं कि इसी प्रकारकी मृत्यु तुमको मिले। इस आशीर्वादमें, इस इच्छामें, सब इष्ट बातें आ जाती हैं।'"[1]

यहां मृत्युके सौन्दर्यका उल्लेख आया है। ऐसा ही उल्लेख २२ फरवरी, १९४२ को जाजूजीने काकाजीके 'विलक्षण प्रेम और स्वभाव' का जो वर्णन किया है उसमें आया है:

"हृदयकी क्रिया बन्द हो जाने पर आकस्मिक मृत्युके सम्बन्धमें जमनालालजी कहा करते थे–'ऐसी मृत्युमें सौन्दर्य है, कला है।' बापूजी और काकाजी दोनों पिता-पुत्रोंके द्वारा मृत्युके सौन्दर्यका अप्रतिम सुन्दर भाव इस तरह प्रगट हुआ है, यह अनोखी बात है।"

तेरह साल तक भूदान-पदयात्रा करते हुए अखिल भारतकी दो बार प्रदक्षिणा कर लेनेके बाद बाबा विनोबा अपने परंधाम आश्रममें स्थापित ब्रह्मविद्या-मंदिरमें आ पहुंचे। वहां २४ जुलाई, १९६४ की सायंकालीन प्रार्थनाके बाद आश्रमवासी भाई-बहनोंके बीचमें आकर एक बड़ेसे कक्षमें वे सहज भावसे जमीन पर ही बैठ गए। वहां अपने वयोवृद्ध साथी श्री बालुभाई

---

१. 'पांचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद' की भूमिकासे।

मेहतासे संयोग-वियोगकी विविध वातें करते हुए अपने पुराने संस्मरण बावा सुनाने लगे। इससे धीरे-धीरे अद्वितीय समरसता फैलने लगी और वातावरणमें वड़ी ही मधुर आत्मीयता छा गई। कितने ही पुराने साथियोंका स्मरण वहां उभर आया। जीवन-मरणके कितने ही प्रसंग एकके वाद एक सुनाते हुए वावाने वताया :

"मरणकी वेला — मृत्युका क्षण — कभी टल नहीं सकता। वह जव आना होगा तभी आयेगा। यह वात जवसे मेरे मनमें जंच गई है तवसे मरनेका डर चला गया है। श्री गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरने एक जगह कहा है: 'जीवन और मरण ये माताके स्तनोंकी तरह हैं।' 'स्तनथेके स्तनान्तरे' ऐसा वंगलामें कहा है। कितनी भव्य कल्पना है यह! कितने मधुर रूपमें समूचा जीवन-दर्शन रख दिया गया है! नन्हा वालक माताके एक स्तनमें से दूध पीता है, वह समाप्त हो जाने पर माता उसे दूसरी ओरके स्तनसे दूध पिलाने लगती है। ऐसे हैं ये जीवन और मरण, माताके दो स्तनोंकी तरह सवको समान पोषण देनेवाले।"

गांधी-ज्ञान-मंदिर

सन् १९५३ में विनोवाजीकी भूदान-पदयात्रा विहारमें चल रही थी। तव कुछ दिनोंके लिए मैं भी उनके साथ रही थी। १८ दिसम्वरका पड़ाव सहरसा जिलेके सुपोल ग्राममें था। वहींसे मुझे गांधी-ज्ञान-मंदिरके उद्घाटनके अवसर पर वर्धा जाना था। मंदिरके उद्घाटनके लिए मेरे अनुरोध पर वावाने यह शुभ सन्देश दिया था :

"वर्धाके गांधी-ज्ञान-मंदिरका उद्घाटन पण्डितजीके कर-कमलोंसे होने जा रहा है, यह वहुत खुशीकी वात है।

"यह गांधी-ज्ञान क्या चीज है, जरा समझनेकी जरूरत है। अपने देशमें आत्मज्ञानका उदय प्राचीन कालमें ही हुआ था और उसकी परंपरा आज तक यहां अखंडित चली। और आधुनिक जमानेमें विज्ञानका विकास पश्चिममें हुआ। आत्मज्ञान और विज्ञानके संयोगसे सामूहिक अहिंसाका जन्म हुआ। उसे 'गांधी-ज्ञान' कहते हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उसीसे दुनियाका भला होनेवाला है। इतना ही नहीं, उससे हम अपनी इस दुनियामें स्वर्ग ला

सकते हैं। जैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी बनता है, वैसे आत्मज्ञान और विज्ञान मिलकर 'सर्वोदय' या 'साम्ययोग' बनता है।

"मैं आशा करता हूं कि गांधी-ज्ञान-मंदिर इस तरहके समग्र जीवनका केन्द्र साबित होगा और पण्डितजीको जो तकलीफ दी जा रही है उसकी सार्थकता होगी।"

कृतयुगी विनोबाजीसे गांधी-ज्ञानका यह सन्देश प्राप्त कर मैं वर्धा पहुंची तो देखा कि बजाजवाड़ीके बंगलेके सामने गांधी-ज्ञान-मंदिरका दुमंजिला भवन बनकर तैयार हो गया है। उसकी अटारीके ऊपर बने गोल गुम्बजमें से भारतीय संस्कृतिकी झलक पाकर प्रसन्नता हुई। काकाजी (जमनालालजी)ने बहुत पहलेसे ही सोचा था कि वर्धामें अन्य अनेक रचनात्मक संस्थाओंकी स्थापना तो हुई है, परन्तु उन सबको सही दिग्दर्शन और सद्ज्ञान प्राप्त होनेकी दृष्टिसे गांधी-विनोबाकी विचारधाराका एक अध्ययन-केन्द्र भी वर्धामें स्थापित होना जरूरी है। गांधी-ज्ञान-मंदिरके रूपमें जमनालालजीके उसी स्वप्नको साकार होते देख माता जानकीदेवीके आनन्द और उत्साहकी सीमा नहीं रही। मंदिरके उद्घाटनके लिए जब पण्डित जवाहरलालजीने बजाजवाड़ी बंगलेके दालानमें पदार्पण किया, तो मांने स्वयं उनका हार्दिक स्वागत किया। बाद ५ जनवरी, १९५४ को गांधी-ज्ञान-मंदिरका उद्घाटन करते हुए पण्डितजीने कहा :

"गांधी-ज्ञान-मंदिरके रूपमें श्री जमनालालजीका एक स्वप्न पूरा हुआ है। गांधी-ज्ञान-मंदिर यों तो एक छोटी-सी इमारत है, मगर इसके पीछे जो तत्त्वज्ञान है वह बहुत बड़ा है और उसे हमें समझना चाहिये। विनोबाजीने ठीक ही कहा है कि आत्मज्ञान और विज्ञानका मेल ही गांधी-ज्ञान है।

"भारत आजाद हुआ। भारतकी एक मंजिल पूरी हुई। अब भारतकी दूसरी मंजिल शुरू हुई है और वह करोड़ों भारतीयोंको ऊपर उठानेकी है। सिर्फ हुकूमत और कानूनसे यह हल नहीं हो सकती। हम सभीको मेहनत करनी होगी। एकता और सहयोगसे काम लेना होगा। लड़ाई-झगड़ा हमारा धर्म नहीं है। हमारा धर्म है : प्रेम और सेवा। गांधी-ज्ञान-मंदिरका यही सन्देश है, जिसे हमें अपनाना है।"

इसी प्रेम-सेवाके सन्देशको सत्य-प्रेम-करुणाके अखण्ड चिन्तनके साथ दिन-रात विनोबाजी अखिल भारतमें फैला रहे हैं, जिसकी सुगन्ध 'जय हिन्द' से 'जय जगत' तक सतत फैलती जा रही है।

कृतयुग-दर्शन

सन् १९५३ में बिहार प्रदेशके मानभूम जिलेमें भूदान-पदयात्रा करते हुए ७ मार्चको सर्वोदय सम्मेलनमें विनोबाजीने समझाया :

"आखिर सृष्टि तो अनादि ही कही गई है, किन्तु जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उसे कुछ नहीं तो दो सौ करोड़ वर्ष जरूर हो गए हैं। फिर भी पिछले दो सौ वर्ष हमारे लिए इतने महत्त्वपूर्ण बन बैठे हैं कि हमें लगता है कि मानवका आधेसे अधिक इतिहास इन्हीं सौ-दो-सौ वर्षोंमें समाया हुआ है।

"वर्तमान कालका महत्त्व तो हमेशा ही होता है। वह भूतकालका फल और भविष्यका बीज होता है। दोनों ओरसे उसका महत्त्व अद्वितीय ही है। भूत और भविष्यके सन्धि-स्थान पर होनेके कारण स्वभावतः वह क्रांतिका काल सिद्ध होता है। वर्तमान काल निःसन्देह क्रांतिका ही नहीं बल्कि अपूर्व क्रांतिका काल होता है।"

*

"मनुष्य समाजमें रहता है इसलिए उसका मुख्य ध्येय समाज-सेवा ही है। वही सच्ची भक्ति है। लोग समझते हैं कि भक्ति मंदिरमें ही होती है। खैर, भक्तिका मंदिरमें नाटक तो होता है, परन्तु सच्ची भक्ति समाजकी सेवामें होती है। सबके हृदयमें नारायण है। नर, नारी, बालक, हरएकके हृदयमें उसका वास है। उसकी सेवाके लिए हमें यह मनुष्य-देह मिली है। इस देहका उपयोग समाज-सेवाके लिए, दीन-दुखियोंके लिए होना चाहिये। अगर हम ऐसा नहीं करते तो मानव-देहका प्रयोजन मिट जाता है। इसलिए

शास्त्रमें कहा है कि मनुष्य-देह दुर्लभ है। यह क्यों कहा है? क्योंकि मनुष्य-देहसे सेवा हो सकती है। मनुष्य अपना शरीर दूसरोंके लिए खपा सकता है, परोपकारमें लगा सकता है।"

१७ अगस्त, १९५४

*

"अपना भला तो सब चाहते हैं। अपनोंका भला चाहनेवाले भी कुछ होते हैं। पर सबका भला चाहनेवाले रामजी और उनके चरण-सेवक ही हो सकते हैं। हम तो यही कामना करते हैं कि इस दुनिया भरमें रामजीके चरण-सेवकोंका ही दर्शन हो।

सर्वोदय हमारे लिए रामनाम है। तुलसीदासजीने लिखा है:

आपको भले हैं सब, आपनेको कोउ कहु।
सबको भलो है राम रावरो चरन॥"

उत्कल, २२ मार्च, १९५५

कूपदान महावरदान

११ सितम्बर, १९५६ को दिल्लीमें विनोबा-जयंतीके शुभ अवसर पर राष्ट्रपिता बापूके स्मृतिस्थान राजघाटमें विशेष रूपसे प्रार्थना-सभाका आयोजन हुआ था। वहां माता जानकीदेवीके अनुरोध पर कूपदानके लिए ५०० रुपये भी मांकी झोलीमें बाबूजीने अर्पित किये थे। उस दिन राष्ट्रके नाम राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रबाबूने यह सन्देश दिया था:

"श्री आचार्य विनोबाजीका भूदान-यज्ञ उस समय तक पूरा नहीं हो सकेगा जब तक उन लोगोंको, जिनको भूदानमें मिली जमीन दी जायगी, उसे आबाद करनेके लिए और आवश्यक सहायता भी न दी जाय। इसलिए श्री विनोबाजीने सम्पत्ति-दान-यज्ञका भी कार्यक्रम आरंभ किया है। खेतीके लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु पानी है। उसके लिए कुआं अथवा दूसरे प्रकारके जलाशय आवश्यक हैं। इसलिए कूपदानकी बात उठाई गई है और यह हर्षका विषय है कि यह यज्ञ भी उसी प्रकार लोकप्रिय और उत्साहवर्धक होगा जैसा भूदान-यज्ञ हुआ है। सब लोग इसमें शरीक होकर पूर्ण यज्ञमें सहायक हों यही मेरा निवेदन है।"

इस सम्बन्धमें पूज्य विनोबाजीका निम्न विवेचन स्मरणीय है:

"जानकीदेवीने अपनी 'मेरी जीवन-यात्रा' किताबके लिए मुझसे प्रस्तावना मांगी तो मैं इनकार नहीं कर सका। जमनालालजीके पूरे परिवार से मेरा काफी संबंध रहा है। इसका कोई श्रेय मुझे हासिल नहीं। जमनालालजीका आक्रमणकारी प्रेम ही इसके लिए जिम्मेदार है। खैर, जिम्मेदारी किसीकी हो, वह संबंध बन गया सो बन गया।

"जानकीदेवीको जो भी विद्या मिली है, अनुभवसे मिली है। इसमें पढ़ाई-लिखाईका ज्यादा अंश नहीं है। इसलिए उनकी यह कहानी बहुत ही सरल भाषामें कही गई है। यह लिखी नहीं गई है, जबानी कही गई है। इसलिए यह 'कहानी' है। और मैं मानता हूं, यह पारिवारिक वर्तुलोंमें रोचक भी होगी।

"जानकीदेवीकी एक विशेषता है कि अभी तक उनका बचपन कायम है। बात करनेमें उनको बहुत संकोच या हिचकिचाहट नहीं रहती। इस कहानीमें भी उसका अनुभव आयेगा। इस कारण उनका भाषण काफी असर डालता है। जमनालालजीको इतना वक्तृत्व नहीं सधता था। जानकीदेवीने उसका एक बहुत ही सरल कारण बताया। वह बोलीं: 'जैसा बोलो वैसा करो' यह एक नाहकका भूत जमनालालजीके पीछे लगा हुआ था। बोलनेमें कहीं अतिशयोक्ति न हो, इसकी उनको फिकर रहती थी। इसलिए वक्तृत्व उनकी वाणीसे झरता ही नहीं था। हमको ऐसी कोई कैद नहीं, तो क्यों वक्तृत्व नहीं सधेगा? जमनालालजीकी वृत्तिका जो विश्लेषण इसमें किया गया है, वह मार्मिक और यथार्थ है। इसकी ताईद सभी परिचित लोग करेंगे। लेकिन जानकीदेवीके भाषणोंमें जो निःसंकोच वृत्ति दीखती है, उसका कारण वास्तवमें उनकी बालवृत्ति है। बोलनेके अनुसार कृति करनी पड़ती है, इसका भान उनको भी है। किये हुए संकल्पके पीछे वह कितनी एकाग्र हो सकती हैं, इसका ख़याल १०८ कूपदान-यज्ञोंका जो जिक्र उन्होंने किया है, उस परसे आ सकता है। भूदान-यज्ञमें यह उन्होंने विशेष पराक्रम किया है। . . ."[1]

पोचमपल्ली, ३० जनवरी, १९५६

---

१. 'मेरी जीवन-यात्रा' की प्रस्तावनासे – लेखिका: जानकीदेवी।

मई, १९५७ में कालड़ीमें नौवां सर्वोदय-सम्मेलन हुआ। भगवान शंकराचार्य उसी गांवमें पैदा हुए थे। इसी वर्ष २१-२२ सितम्बरको सबसे बड़ी घटना घटी एलवलमें।

सर्व-सेवा-संघने देशके तमाम राजनीतिक दलोंके बड़े-बड़े नेताओंको बुलाया और सब दलोंका एक ग्रामदान सम्मेलन किया। राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्रीने भी अपनी उपस्थितिसे परिषद्को गौरवान्वित किया। इस सम्मेलनने एकमत होकर यह फैसला किया कि हम सबको ग्रामदानकी बात जंचती है और सारे देशको चाहिये कि इस आन्दोलनको सफल बनाये।

परिषद्ने सर्वसम्मतिसे जो प्रस्ताव स्वीकृत किया उसका सार यह है:

"परिषद् अपनी दो दिनोंकी बैठककी समाप्ति पर विनोबाजीके मिशन और उनके अहिंसात्मक तथा सहकारी उपायोंसे राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओंके समाधानके प्रयत्नोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करती है और भारतीय जनताके सभी वर्गोंसे इस आन्दोलनका उत्साहपूर्वक अनुमोदन करनेकी अपील करती है।"

नेताओंके इस प्रस्तावको विनोबा 'राष्ट्रीय संहिता' कहा करते हैं। देशके सभी दलोंने इसका समर्थन किया है और इस आन्दोलनको बढ़ानेकी जिम्मेदारी स्वीकार की है। एलवलका यह फैसला राष्ट्रीय फैसला है और सन् १९५७की क्रांति है।

*

सन् १९५८में संत विनोबाजीकी भूदान-पदयात्रा मैसूर प्रदेशमें चल रही थी। तब १४ जनवरीको आलूर नामक पड़ाव पर उन्होंने भारतके प्रति निम्न आशाभरे भाव व्यक्त किये थे:

"विश्वशांतिके लिए किसी न किसी देशको तो यह हिम्मत करनी ही होगी कि अपना कदम वह आगे बढ़ाये और अपना सैन्यबल और शस्त्रास्त्र-बल कम कर दे, याने शस्त्रास्त्र और सेनाबलसे अपने देशको मुक्ति दे दे। दूसरे देश या सामनेवाले क्या करते हैं, इसकी राह न देखे। यह कार्य ऐसा नहीं जो बुद्धिके विरुद्ध हो।

"ईश्वरकी योजनामें क्या है, यह तो हम नहीं जानते। पर बुद्धिसे सोचते हैं तो इंग्लैंड और हिन्दुस्तानसे आशा होती है। हिन्दुस्तान अपनेको सेनासे मुक्त कर सकता है। ऐसी आशा हमें इसीलिए होती है कि भारतकी सभ्यता ही उस प्रकारकी है और इंग्लैंडसे हमें वही आशा इसलिए होती है कि वहां एक अन्तर्गत सामर्थ्य है।

"भारतमें गांधीजीके नेतृत्वमें अहिंसक आन्दोलन चला। उसके बाद इंग्लैंड और हिन्दुस्तानके बीच प्रेम ही बना है। इसका गौरव जितना भारतको है उतना ही इंग्लैंडको भी है ऐसा हम समझते हैं। इंग्लैंडके लोगों को लड़ाई क्या है यह भलीभांति मालूम है। किस प्रकार युद्धको सुव्यवस्थित बना सकते हैं, यह वे खूब जानते हैं। इसलिए वे सेनामुक्तिकी हिम्मत करके अपने देशको उबार सकते हैं। यही हमारी इंग्लैंडसे आशा है।

"अब भारतके लिए आशाकी बात। भारत दीखनेमें तो एक देश दीखता है। लेकिन वह देशोंका एक समूह है। जैसा यूरोप एक महाद्वीप है, वैसा भारत भी एक महाद्वीप है। इसमें विविध समर्थ भाषाएं हैं। यह घटना दुनियाके इतिहासमें अद्वितीय है। . . .

"अब तो भारत आजाद है। अब वह सोच सकता है, अपना रास्ता चुन सकता है। उस पर किसीकी कोई जबरदस्ती नहीं चलेगी। इसलिए अपनी बुद्धिसे और अपना पूर्व-इतिहास देखकर भारत यह हिम्मत कर सकता है।"

ब्रह्म-विद्या-मंदिर

राजस्थानमें भूदान-पदयात्रा करते हुए पूज्य विनोबाजी सन् १९५९ में १४ मार्चको श्रद्धेय जमनालालजी (पूज्य काकाजी) के जन्मस्थान काशीकाबास पहुंचे। काकाजीको बहनोंकी शिक्षा और उनकी आत्मोन्नतिका बहुत ख्याल रहता था। अतः उनके जन्मस्थान पर बहनोंको ब्रह्म-विद्या-मंदिरकी योजना और विचार बाबाने इस तरहसे समझाये :

"हम चाहते हैं कि जो शरीर-परिश्रम हो वह सूर्य-प्रकाशमें और खुली हवामें हो। समय बचे तो बचाना चाहते हैं, जिससे संस्कारका विकास

हो, भजन-भक्ति-संगीत हो। हम विचारका प्रकाश चाहते हैं। जितना समय बचा सकते हैं उतना अच्छा है। हमें जितना करना है वह युक्तिपूर्वक, प्रेम-पूर्वक करना है। रसोईका काम हो या खेतीका या खादी-उत्पादनका या सफाईका, ऐसा हरएक काम उपासनाके तौर पर करना चाहिये।

"जैसे-जैसे शरीर लायक बनेगा, औजार सुधरेंगे, युक्तियां सधेंगी, वैसे वह सफल होगा। बंधन हम किसीका नहीं चाहते हैं। पर जितना करनेकी जरूरत है किया जाय। जो श्रम करें उसके साथ दृष्टि हो, उसमें आलस न हो, व्यवस्थित ढंगसे किया जाय, बुद्धि प्रखर होती हो, जड़ताका अनुभव नहीं आता हो, सौन्दर्यका, प्रेमका अनुभव होता हो। . . ."

बागियोंका आत्म-समर्पण

सन् १९५९ में अपना मोहब्बतका पैगाम लेकर बाबा कश्मीर पहुंचे थे। 'उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनां, धिया विप्रो अजायत'—पर्वतोंकी सन्निधि में, नदियोंके संगम पर ब्राह्मण, तत्त्वदर्शी और ज्ञानीका जन्म होता है। इस वेद-वचनके अनुसार ब्रह्म-विद्याका ध्यान-चिन्तन करते हुए बाबाकी पदयात्राने कश्मीरमें पर्वतारोहण किया। उस सालकी प्रलयंकारी बाढ़ने सारे कश्मीरमें अत्यंत विनाशकारी ताण्डव-नृत्य दिखाया था। उसको देखते हुए और पीर पंजालको पार करते हुए बाबा गुलमर्ग पहुंचे थे।

९ अगस्तको बीजबेहड़ा पड़ाव पर स्वागतके लिए आये हुए लोगोंको बाबाने समझाया :

"कुरान शरीफमें यह बात आती है—'अल्लाहकी इबादत करनेवाले, अल्लाहके प्यारे एक-दूसरेसे सलाह-मशविरा करते हैं। मेरा मजहब दूसरोंको मदद देगा। अपने रास्ते पर चलनेके लिए मदद हासिल करना, सब पर प्यार करना, हमदर्दी रखना, सच्चाई पर चलना, यह भी मेरे मजहबका काम है। मुहब्बत, रहम और सच्चाई, यह मैं अपनी जिंदगीमें लाना चाहता हूं। दूसरेको मदद पहुंचाना चाहता हूं। यही है मेरा धर्म।'

"सच्चाई, मुहब्बत, रहम—ये तीनों बातें मुख्तलिफ मजहबोंके नबियोंने और संत-सत्पुरुषोंने बताई हैं। यही इंसानियत है। इंसानियत ही धर्म है।

यही वात गीतामें आती है, वाइविलमें और जपुजीमें भी आती है। सव मजहवोंकी कितावोंमें, धर्मग्रंथोंमें आती है और मैंने वही पकड़ ली है। मैंने इन सव धर्मग्रन्थोंका मुताला, अध्ययन किया है और सभीमें मैंने ये ही वातें पायी हैं। इसलिए मैं समझ गया हूं कि यह मजवूत वात है।

"यही चीज मैं जहां जाता हूं, समझाता हूं। इसके लिए मेरे दो ही लफ्ज सारे हिन्दुस्तानमें जाहिर हो गये हैं–'एक वनो और नेक वनो।'

"अपने हिन्दुस्तानमें मुख्तलिफ जमातें रहती हैं। ये एक ताकत वन सकती हैं। जिस जंगलमें मुख्तलिफ किस्मके पेड़ होते हैं, वह जंगल जल्दी वढ़ सकता है। एक ही किस्मके पेड़ हों तो वह आसानीसे वढ़ता नहीं है। यह वात मुझे पीरके पासके जंगलसे गुजरते समय एक फारेस्टरने वतायी। इस वातको सुनते ही फौरन मेरे ध्यानमें आया कि हिन्दुस्तान खूव फले-फूलेगा। हिन्दुस्तानके एक शायरने कहा है: 'हिन्दुस्तान एक वहुत वड़ा दरिया है, समुन्दर है, जिसमें मुख्तलिफ जमातें रहती हैं।' 'एइ भारतेर महामानवेर सागरतीरे'–हिन्दुस्तान एक वहुत वड़ा समुन्दर है और इसमें छोटी नदियां और नाले मिले हैं। यहां जापानी, चीनी, यहूदी, पारसी मुख्तलिफ देशके वाशिन्दे वसे हैं। यह हिन्दुस्तानकी खसूसियत है। जैसे सारी दुनियाकी कुल जमातें हैं वैसे ही हिन्दुस्तानमें दुनियाकी कुल जमातें हैं और छोटे पैमाने पर यह देश याने एक दुनिया है। ये सारी जमातें मिलजुल कर रहेंगी तो एक वहुत वड़ी ताकत वनेगी और दुनियाको राह दिखा सकेगी। . . ."

आगे वागियोंके अभूतपूर्व आत्म-समर्पणकी अनोखी हृदयस्पर्शी घटनाओंके संवंधमें विनोवाजीके हृदयोद्गार इस प्रकार व्यक्त हुए:

"भिण्ड-मुरेनामें जो कुछ हुआ, वह सव परमेश्वरकी ही कृपा है। जहां तक मेरा अनुभव है, इसका सोलह आने श्रेय परमेश्वरको है। पर अगर श्रेय वांटना ही हो तो पहला श्रेय उन डाकुओंको देना चाहिये, जो शरण आये। दूसरा श्रेय पुलिसको है। अगर पुलिस चाहती तो यह चीज नहीं वनने देती। तीसरा श्रेय मेरे साथियोंको और कार्यकर्ताओंको है, जो दूर-दूर जंगलमें जाकर डाकुओंसे मिले और उनको विचार समझाया। चौथा श्रेय

मुझे है—रुपयेके १०० नये पैसोंमें १ नये पैसे जितना। और वह भी भगवान के चरणोंमें रखकर, मुक्त होकर मैं आगे आया हूं:

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।'"

*

कनेरा, भिण्डमें १८ मई, १९६० की सायंकालीन प्रार्थनाके समय बाबाका हृदय भरा हुआ था। वे बहुत थोड़ा बोले:

"आज मेरा दिल परमेश्वरके पास पहुंच गया है। यहां जो कुछ चल रहा है उसके पीछे ईश्वरकी इच्छा ही काम कर रही है। आज जो भाई आए, वे परमेश्वरके भेजे हुए ही आये हैं। हमारा कोई साथी भी उनके पास नहीं पहुंचा था। ईश्वरने प्रेरणा दी और वे यहां चले आये। ढाई हजार सालसे हम अंगुलिमालकी कहानी सुनते आ रहे हैं। आजका युग कलियुग माना जाता है, पर कलियुगमें भी ऐसी कहानियां बन रही हैं, यह ईश्वरकी ही कृपा है।"[1]

राष्ट्रसंत तथा राष्ट्रपतिका मधुर मिलन

४ अप्रैल, १९६० की बात है। उस समय हम ९-यार्क रोड, नई दिल्लीमें रहते थे। शामको चार बजेके करीब घंटी बजी और मैंने फोन उठाया, तो अचानक राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबूजीकी आवाज फोन पर सुनाई दी: "मदालसा, सोनीपतमें परसों विनोबाजी आ रहे हैं। उनसे वहां जाकर मिलनेका मेरा बहुत मन है। इसका सारा इन्तजाम तुम्हें करना है।" मैं तो बहुत खुश हो गई।

दूसरे दिन सुबह श्रीमन्नारायणजी और मैं राष्ट्रपति-भवनके एक अधि-कारीके साथ सोनीपत गए। पूज्य बाबाको एक प्रफुल्लित फूल अर्पण करके प्रणाम किया तो एकदम उन्होंने कहा—"आज राम-नवमी है न?" सुनकर हमें विशेष प्रसन्नता हुई। हम उनके प्रार्थना-प्रवचनमें शामिल हुए। राम-नवमीके महत्त्व पर ही आज बाबाका प्रवचन हुआ। उसमें उन्होंने अवतारका रहस्य इस तरह समझाया:

---

१. चम्बलके बेहड़ोंमें—लेखक: कृष्णदत्त भट्ट, १९६०।

"घरमें छोटा बच्चा इधर-उधर खेलता, घूमता-फिरता हुआ मांके पास आता है और दोनों हाथ ऊपर उठाकर बड़ी आतुरतासे अपनेको गोदीमें उठा लेनेकी उत्कंठा मांके प्रति दर्शाता है। यह देखकर अत्यंत स्नेहभरे दिलसे दोनों बाहें फैलाकर बालकको गोदमें उठा लेनेके लिए मां स्वयं नीचे झुकती है। इसी तरह आत्म-विकासकी साधनामें रत हुए भक्त भगवान के प्रेममें ऊंचे उठनेकी उत्कंठा लिये अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर ऊंचे उचकते हैं तब उन्हें बड़े प्यारसे अपनी गोदमें उठा लेनेके लिए भगवान नीचे झुकते हैं।" यही अवतरण और यही अवतारका रहस्य आज विनोबाजीने अपने प्रवचनमें समझाया।

पू० बाबूजीके मिलने आनेके संबंधमें विस्तारसे सब बातोंकी चर्चा हुई। तय हुआ कि ता० ६ की सुबह विनोबाजी सोनीपत पहुंचेंगे। उसके बाद ही ठंडे-ठंडेमें मिल लेना अच्छा होगा, जिससे बाबूजीको वापस जानेमें गर्मी न लगे। इतना तय होनेके बाद जिलाधीश आदिसे मिलकर रास्ते आदिकी सारी व्यवस्था करके हम वापस लौट आये और पू० राजेन्द्रबाबूजीको सब समाचार सूचित कर दिए। ता० ६ की सुबह करीब आठ बजे हम राष्ट्रपति-भवन पहुंच गए। उस दिन मौसम बड़ा सुहावना था। बाबूजीने अपनी ही बड़ी पार्टीशनवाली गाड़ीमें दाहिनी ओर श्रीमनजीको और बाईं ओर मुझे बिठाया। मोटरमें अनेक प्रकारकी गहरी चर्चा करते हुए हम चले।

करीब नौ बजे सोनीपत रेस्ट-हाउस पहुंचे। वहां जलपान करके साढ़े नौ बजे पू० विनोबाजीके निवास-स्थान पर पहुंच गये। वहां राज्यपाल श्री गाडगिल साहबके साथ पू० विनोबाजी भी अगवानीके लिए मोटर तक आये। परस्पर नमस्कार करके कमरेमें लिवा जाते समय भीड़ने अपने प्रेमी नेतागणोंको एकदम घेर लिया। मुश्किलसे कमरे तक जा पाए। वहां एक कम्बलकी बिछावन पर बाबूजी और विनोबाजी विराजित हुए। कुछ देर माननीय गाडगिल साहब भी बैठे। माता जानकीदेवी बजाज भी वहीं थीं। पंजाबके अनेकों सर्वोदयी कार्यकर्ता एवं नेतागण एकत्रित हुए थे। ऐसे वातावरणमें पू० बाबूजी और बाबाकी बातचीत आरम्भ हुई।

बाबूजी: हम जहां तक सोचते हैं, इस वक्त चारों ओर काफी शिकायत होती है। अभी तक एक ही चीज सबके सामने है कि सबका भौतिक

स्तर ऊंचा उठे। पर भौतिक चीजके साथ-साथ दूसरा आध्यात्मिक स्तर कैसे उठाया जाय? यह सवाल है।

बावा: दो चार बातें ध्यानमें आती हैं। एक तो यह कि जो लोग दु:खी हैं, परित्यक्त हैं, खास उनकी ओर प्लानिंगमें विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये और राष्ट्रको ऐसी दृष्टि प्लानिंग कमीशनकी तरफसे मिलनी चाहिये।

दूसरी बात, तालीममें उद्योग तो दाखिल होने ही चाहिये। और हमारे यहां सब धर्मोंका स्वागत है, पर सेक्यूलर स्टेटके नाम पर आज तो सभी धर्मग्रन्थोंकी मनाही हो गई है। उसके बजाय हम सब धर्मोंका स्वागत करें। इसके लिए हिन्दुस्तानकी भाषाओंमें माडर्न लिटरेचर बनना अभी बाकी है। जो परम्परागत चालू है वह धार्मिक है, स्पिरिच्युअल है। उसे धार्मिक कहकर बन्द कर दें, यह ठीक नहीं है। स्कूलमें गीता, रामायण, कुरान, बाइबल, जपुजी आदि ग्रन्थ नहीं चलेंगे, यह बात कैसे चलेगी? यहां-वहांसे थोड़े उपनिषद् आदि पढ़ा देना, इतनेसे काम नहीं चलेगा। पहले किसी मुलजिमके हाथमें रामायण देते थे, तो हाथमें ग्रन्थ देनेके बाद वह गुनाह कबूल कर लेता था। ऐसे श्रद्धास्पद ग्रन्थ आज तालीमके बाहर कर दिए गए हैं, यह गलत है।

तीसरी बात, आज सिनेमा वगैरह ज़िस तरहसे चलते हैं वह बहुत खराबी पैदा कर रहे हैं। यह ऐसे ही चला तो हमारे बच्चे हमारे हाथमें रहेंगे नहीं। श्री रविशंकर महाराज कहते थे कि अहमदाबादमें जहां बापूजी रहे थे वहां आज शिक्षित लड़कियोंका भी अकेले घूमना सुरक्षित नहीं रहा है। यह कितनी चिन्ताजनक हालत है!

चौथी बात यह है कि राज्य-पद्धतिके या शासन-तंत्रके प्रति आज 'सस्पीशन' बढ़ता जा रहा है। ऐसे शंकाकुल वातावरणसे समाजका कुल वातावरण बिगड़ जाता है। लोगोंको आश्वासन नहीं मिलता। श्रद्धाका कोई स्थान नहीं रहता। गांधीजीने बहुत कोशिश और तपस्यासे अपने शब्दों पर जनताका विश्वास हासिल किया था। बापूके शब्दों पर जनताका विश्वास

दृढ़ हो गया था। उनकी शब्दशक्ति पर लोगोंका विश्वास सदा कायम रहा। जब कभी कहीं कोई कमजोरीका आभास मिलता तो वे आत्मशुद्धिके लिए उपवास कर लेते थे। इससे उन पर लोगोंका विश्वास बढ़ता था। यह शब्दशक्ति उन्होंने हासिल की थी। अपने देशको शब्दशक्तिकी महान देन वे दे गए।

बाबूजी: पहलेका तो यह जरिया था कि शामको प्रायः घर-घरमें और गांव-गांवमें कथा हुआ करती थी। कथाकार पहले पढ़ते थे तब अनपढ़ लोग भी पीछे-पीछे पढ़ते थे। कथामें सब बैठते थे तब बहुत-कुछ शिक्षा मिल जाती थी। उसकी अमिट छाप जम जाती थी। और, घरोंमें माताओंसे जो मिलता था, वह भी अब नहीं मिलता। वही शिक्षा जो घरोंमें मांके दूधके साथ मिलती थी, वह चीज फिरसे मिलने लग जाय तो धीरे-धीरे हमारा नैतिक स्तर फिर ऊंचा उठ सकता है। पर अब तो लोक-जीवनमें ऐसा विरोध पैदा हो रहा है कि माताएं ही जो नहीं जानतीं वह धर्मकी शिक्षा बच्चोंको मिले, यह कैसे सम्भव हो सकता है?

इस तरह गहरे चिन्तन और चर्चाके साथ पारिवारिक आत्म-भावनाके वातावरणमें राष्ट्रसंत और राष्ट्रपतिका सुमधुर सम्मेलन सम्पन्न हुआ।

कतिपय प्रेरक प्रसंग

सन् १९६१ में पू० विनोबाजीने अपने एक प्रवचनमें बताया – "एक बार महात्मा गांधीने कहा था : 'काऊ इज़ ए पोएम ऑफ पिटी' – गाय करुणाका काव्य है। गायके जरिये हम जीवन-सृष्टिके साथ एकरूप होनेकी कोशिश करते हैं। सृष्टिमें सबके साथ एकरूप होनेकी भगवानने मनुष्यके छोटेसे दिलमें महान शक्ति रखी है। मनुष्यकी यही विशेषता है कि वह सृष्टिके साथ एकरूप हो सकता है। मनुष्यको भगवानने दिमाग ऐसा दिया है कि वह दुनिया पर सैर कर सकता है, द्रष्टा बन सकता है।"

"वेद, उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र, योगसूत्र, रामायण और भागवत – ये ऐसे ग्रन्थ हैं कि जिन्होंने हिन्दुस्तानको बुनियाद दी।

यह बुनियाद अगर हट जाये तो हमारा कुल मकान ही बिना बुनियाद का हो जायेगा। यह तुलसीदासजीकी कृपा है कि उन्होंने 'वाल्मीकि रामायण' में से सार और अनुभवकी चीजें लेकर एक राम-रसायन बनाकर रख दिया। जब तक गंगा-जमुनाकी जलधारा बहती रहेगी, तब तक रामकथा-धारा भी बहेगी। जिस ग्रन्थके पात्र रोजमर्रा (के जीवनमें) मदद करते हैं, मार्गदर्शन, सान्त्वना हर घड़ी देते हैं, इस कोटिका ग्रन्थ रामायण ही है।

'वाल्मीकि-रामायण' प्रथम ग्रन्थ है। . . . वाल्मीकिकी प्रतिभा सारी दुनियामें अद्वितीय है। . . . वाल्मीकिकी प्रतिभा, व्यासकी प्रज्ञा और शुकदेवका प्रेम तीनों अद्वितीय हैं। तीनोंका लाभ हिन्दुस्तानको मिला है। वाल्मीकिकी प्रतिभाने रामायण लिखी, व्यासकी प्रज्ञाने महाभारत लिखा, शुकदेवके प्रेमने भागवत लिखी। यह प्रतिभा, यह प्रज्ञा, यह प्रेम – ये तीनों हिन्दुस्तानकी खास चीजें हैं, अपनी दौलत हैं, बापकी इस्टेट हैं। इस वास्ते उसका चाहे जैसा उपयोग हम कर सकते हैं।

ज्ञात याने जिसे व्यक्त कहते हैं उसमें विज्ञानकी खोज होती है और अज्ञात याने अव्यक्तमें आत्मज्ञानकी खोज होती है। और जैसे दोनों पंखोंसे पक्षी गगनमें विहार करता है, वैसे दोनों पंखोंसे कवि और साहित्यिकोंका विहार होगा और वे ऊंची उड़ान लगायेंगे। आगे ऐसे महान कवि निर्माण होंगे, जिनके सामने वाल्मीकि, व्यास, शुकदेव आदि सामान्य ही रह जायेंगे। 'कविः क्रांतदर्शी'।

इसी तरह प्रेम और परमेश्वरकी एकरूपताके संबंधमें महात्मा टाल्स्टाय के उद्‌गारोंका अचानक स्मरण हो रहा है:

'परमात्मा किसीको यह नहीं बतलाता कि तुम्हें क्या चाहिये, बल्कि हरेकको यही बतलाता है कि सबके लिए क्या चाहिये। वह चाहता है कि प्राणीमात्र प्रेमसे मिले रहें। अब मुझे विश्वास हो गया कि प्राणोंका आधार प्रेम है, प्रेमी पुरुष परमात्मामें और परमात्मा प्रेमी पुरुषमें सदैव निवास करता है।

'सारांश यह है कि प्रेम और परमेश्वरमें कोई भेद नहीं। यह कहकर देवता स्वर्गलोकको चला गया।'"

*

राष्ट्रपिता महात्मा गांधीने कहा है:

'विश्व ही मेरा परिवार है और मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है।'

सर्वोदयी पदयात्री संत विनोबाने आज कहा:

'वास्तवमें मेरी पदयात्रा ही सर्वोत्तम सन्देश है।'

भूदान-दिवस, १८ अप्रैल, १९६१

*

सन् १९६२ में सर्वोदय समाजका चौदहवां सम्मेलन गुजरात राज्यके अन्तर्गत बुनियादी तालीमके समर्थ कार्यकर्ता श्री जुगतरामभाई दवेकी ओरसे वेड़छी ग्राममें हुआ। उस सम्मेलनके प्रस्तावका सार:

"अहिंसक प्रतिकारका विचार आते ही युद्धक्षेत्र पर जाकर आक्रमण का मुकाबला करनेकी कल्पना आती है। यह हर्ष और अभिनन्दनका विषय

है कि देशमें आज कितने ही शांति-सैनिकोंने इस प्रकारसे कार्यक्रमके लिए अपने प्राण तक अर्पण करनेकी उत्कटता प्रकट की है। किन्तु आजके संयोगों में इस कार्यक्रम पर गम्भीर विचारणाकी आवश्यकता है।"

*

सन् १९६३ में सर्वोदय समाजका पंद्रहवां सम्मेलन मध्यप्रदेशके रायपुर नगरमें सम्पन्न हुआ। जो प्रस्ताव अधिवेशनमें पास हुआ उसका सार यह है:

"पिछले साल जब वेड़छीमें सर्वोदय-सम्मेलन मिला था, तब दुनिया तथा हमारा देश एक तनाव और संकटकी स्थितिमें से गुजर रहा था। यह सन्तोषका विषय है कि इस अरसेमें तनाव तथा संकट कम हुआ है और विश्वशांतिके लिए नयी सम्भावनाएं पैदा हुई हैं। अणुअस्त्रके परीक्षणका आंशिक निषेध करनेवाली संधि इस नये वातावरणका एक सबूत है। इसके अलावा भी कुछ अन्य घटनाएं हैं, जिनसे यह आशा बनी है कि दुनियामें शांतिकी ताकतें बढ़ रही हैं।"

अद्वितीय व्यक्तित्व

सन् १९६४ में पू० विनोवाजी परंधाम आश्रम, वर्धामें अस्वस्थ थे। ११ सितम्बरके अपने जन्मदिनसे अनिश्चित कालके लिए मौन रखनेका निश्चय उन्होंने जाहिर किया था। उस दिन दिल्लीसे कुछ दूर नजफगढ़में बाबाके जन्मदिनके समारोहमें श्री कमलनयनभाईका एक घंटे तक बड़ा ही उद्‌बोधक भाषण हुआ, जिसमें पू० बाबाके संबंधमें निम्न महत्त्वपूर्ण भाव व्यक्त हुए थे:

"जैसे तुकाराम, तुलसीदास, ज्ञानेश्वर, रामकृष्ण परमहंस आदि महापुरुष हमारे देशमें हुए हैं, ऐसे ही महापुरुषोंकी कोटिके संत विनोबाजी हैं। और जिनको तत्त्व-विचारक, बुद्धिमान, विद्वान कहा गया है, ऐसे श्री शंकराचार्य आदि महान आचार्योंकी कोटिमें भी वे बैठने लायक हैं। वे उपनिषद्‌कारकी कोटिके भी हैं। उतनी गहराईसे चिंतन करनेवाले, महत्त्वकी बातोंको सूत्ररूपमें कहनेवाले भी वे हैं और भाष्यकार भी वे ही हैं। विनोबाने गीता आदि ग्रन्थोंका जिस बारीकीसे अध्ययन किया और उसे आत्मसात् किया, ऐसा महापुरुष दूसरा देखनेमें नहीं आया। गीताका उनका

भाष्य उच्चसे उच्चतर और उच्चतम कोटिका है। दुनियामें जब तक गीता रहेगी तब तक उनका प्रभाव अमर रहेगा।

"बाबाका जीवन चिन्तनमय, कर्ममय और प्रार्थनामय है। एक-एक क्षणका उपयोग उन्होंने किया है। उनका सोचनेका, वर्ताव करनेका तरीका इतना आसान है कि उनकी बातें सुलभतासे बुद्धिगम्य और हृदयंगम भी हो जाती हैं। . . . मेरा तो मानना है कि पौराणिक युगसे अब तक जितने ऋषि-मुनि हुए उस परम्परामें आत्मज्ञानके अनुभवोंके साथ विज्ञानका भी पूरा पुट मिलाकर और आजके वैज्ञानिक विचारोंको मिलाकर आधुनिक युगकी आवश्यकताके अनुसार उसे आध्यात्मिक रूपसे प्रकट करनेका अद्वितीय कार्य किया है विनोबाने।

"विनोबाका सर्वोदय-विचार बुद्धकी विचारधारा पर आधारित है। वह इस युगको गांधीजीकी देन है। . . . मुझमें, कोई एक भी दुःखी न हो, इतना प्रेम हो, बल हो, ऐसा अहिंसाका तरीका हो, सबका भला उसमें निहित हो, यह है भारतीय समाजवाद और यही है सर्वोदय। इसी परंपरा को आज वे भारतके घर-घरमें पहुंचानेके लिए लगातार १४ वर्षोंसे घूमते रहे हैं। . . ."

विश्वशान्तिका महान कार्य

२ अक्तूबरको सारी दुनियामें गांधीजीकी जन्म-जयंती मनाई जाती है। उसी दिन एक छोटेसे अत्यन्त विनम्र राष्ट्र-सेवकका भी जन्म हुआ था। वही थे भारतके लोकप्रिय प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री। २ अक्तूबर, १९६४को दिल्लीके खादी ग्रामोद्योग-भवनमें गांधी-जयन्तीके आयोजन पर शास्त्रीजीके आशीर्वादात्मक भावोंसे परिपूर्ण प्रवचनका संक्षिप्त सार:

"मैं पहली बार सागर पार जा रहा हूं। महत्त्वका प्रसंग है। काम कठिन है। पर मैं अकेला व्यक्ति नहीं हूं। अभी पू० जवाहरलालजीकी तस्वीरका अनावरण मुझसे आपने कराया। जहां तक मैंने उनको जाना-पहचाना था, मैं कह सकता हूं कि वे गांधीजीके परम भक्त थे और खादीके परम प्रेमी थे। मुझे आप सबकी शक्तिका आधार है, बल है। आज राज-घाट पर और शान्तिवनमें मुझे उन महापुरुषोंका मूक आशीर्वाद मिला है।

अभी वर्धासे आया पू० विनोबाजीका सन्देश भी आप सबको सुनाया गया है। वयोवृद्ध काका जेराजाणीके आशीर्वाद मुझे मिले हैं। यह ताकत मेरे साथ है। इसलिए मैं कह सकता हूं कि विश्वशान्तिके जिस महान कार्यके लिए मैं आज विदेश जा रहा हूं उसे पूर्ण विश्वास, दृढ़ता और शक्तिसे मैं स्पष्ट रूपसे रख सकूंगा।"

*

उसी दिन २ अक्तूबर, १९६४ को ब्रह्मविद्या-मंदिर, वर्धासे पूज्य विनोबाजीके आशीर्वादका पत्र चि० मदालसाके नाम इस तरहसे प्राप्त हुआ था:

"अब तुम लोग नेपाल जा रहे हो। बहुत बड़ा काम है—राष्ट्रोंको जोड़नेका। विज्ञानके युगमें राष्ट्र-कल्पना पिछड़ गयी है। उस कल्पनाको व्यापक बनाना होगा। तभी वह शुभंकर होगी। इस काममें नियुक्ति तो श्रीमन्‌की हुई है, पर उसके साथ तुम्हारी युक्ति होगी तभी वह नियुक्ति कारगर बनेगी।"

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि भारतके प्रधानमन्त्री माननीय श्री लालबहादुरजीकी आन्तरिक प्रेरणा और विशेष आग्रहसे ही हमारा नेपाल जाना हुआ था।

'बापू जेल नहीं भेजेंगे तो नेपाल जानेका विचार कर रहा हूं।' पू० काकाजीने यह अल्मोड़ासे १० सितम्बर, १९४१ को एक पत्रमें लिखा था। लम्बे अरसे बाद उनकी उसी इच्छापूर्तिका अवसर नेपालमें भारतीय राजदूतके रूपमें हमें प्राप्त हुआ। आत्माकी अमरता एवं आप्तजनोंकी आत्म-प्रेरणाका ही यह प्रमाण प्रतीत होता है।

जनताका प्रेम

पू० विनोबाजीके बालमित्र श्री रघुनाथ धोत्रे जमनालालजीके निकटतम साथी थे। उन्होंने भारतीय जनताके प्रति गांधीजीके अत्यन्त गहरे प्रेम और विश्वासके विषयमें लिखा है:

"वापू कहा करते थे —'जनताका मेरे ऊपर इतना प्रेम और विश्वास है कि जैसा नन्हे वालकका अपनी माताके प्रति होता है। जनताका इतना प्रेम और विश्वास पाने लायक इस जन्ममें मैंने कुछ किया है, ऐसा मुझे तो प्रतीत नहीं होता। पूर्वजन्मका संचित पुण्य और मुख्य तो ईश्वरकी कृपा का ही यह फल है, ऐसी मेरी श्रद्धा है। वहुत वार मेरे मनमें आता है कि इस निरतिशय प्रेम और विश्वासके कारण ही मैं जव तक जीवित हूं तव तक हिन्दुस्तानकी जनता मेरा काम नहीं करेगी, लेकिन मेरी मृत्युके वाद वह मेरा काम खूव-खूव करेगी।"[1]

संकल्प करें

'आत्मानुशासन और साहसी संकल्प' के सम्वन्धमें भारतीय गणतन्त्र-दिवसके उपलक्षमें २५ जनवरी, १९६५ की रातको आकाश-वाणीसे प्रसारित राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्के सन्देशका प्रेरक अंश:

"राजनीतिक जनतन्त्रका सुगठन, सामाजिक समानताकी स्थापना, आर्थिक विकासकी प्रगति और देशकी एकताको वनाये रखना, इन कामोंके लिए प्रशासन हो, राजनीतिक पार्टियां हों, किसान हों, विद्यार्थी हों। समाजके हर हिस्सेसे अनुशासित व्यवहार और सख्त मेहनत और ईमानदारीकी उम्मीद की जाती है। अव जव हम अपने गणतन्त्रके जीवनके नये सालमें प्रवेश करते हैं तो इन कामोंमें आत्म-अनुशासन और दृढ़ता, साहस और चरित्रके साथ अपनेको लगानेका संकल्प करें।"

'एकादश व्रत'

जिनका पूर्व-जीवन सावरमती आश्रममें व्यतीत हुआ और उत्तर जीवन सेवाग्राम आश्रममें परिपूर्ण व्रतनिष्ठाके साथ व्यतीत हो रहा है, वे श्री चिमनलालभाई शाह[2] सेवाग्राम आश्रमके संचालक हैं। उन्होंने २२ जुलाई, १९६६ को गांधी-जन्म-शताव्दीके सिलसिलेमें ये भाव एक पत्रमें व्यक्त किये थे:

---

१. 'मैत्री' के १२ अक्तूवर, १९६४ के अंकसे। भाई श्री धोत्रेजी वर्षों तक गांधी-सेवा-संघके मन्त्री रहे थे।

२. आजीवन व्रतधारी, वापूजीके साथी। इनका जीवन गांधी-विचारको आचारमें रखनेका एक आदर्श दृष्टान्त है।

"पू० बापूके जीवनका सारा सार एकादश-व्रतमें है। उसका जितना प्रवेश लोक-हृदयमें हो उतना बापू-स्मारक होगा।

"परम पूज्य विनोबाजीने इन व्रतोंका मराठी पद्यानुवाद किया है। उसके निवेदनमें उन्होंने बताया है कि ये व्रत-अभंग कंठस्थ करके उन पर चिन्तन होता रहे। इनका हृदयंगम पद्यानुवाद लोकभाषामें भारतकी प्रत्येक भाषामें हो, ऐसी मेरी इच्छा कई सालसे है।

"बापू-प्रेमी समाजमें जहां-जहां प्रार्थना रोज हुआ करती है वहां-वहां इन व्रत-अभंगोंका सेवन अनुक्रमसे दो-चार मिनट रोज प्रार्थनाके समय होता रहे, तो धीरे-धीरे उसका असर जीवन पर होता रहेगा। इनके जीवन परसे समाजके जीवनमें प्रवेश पाता रहेगा।

"विदेशी भाषाओंमें भी इन व्रतोंका पद्यानुवाद लोकभाषामें होनेकी आवश्यकता है।"

'ग्रामसेवा' से 'ब्रह्मविद्या' में

हालमें जो ग्राम-सेवा-मण्डल[1] है उसका मेरी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्व है। भारतवर्षका करीब-करीब साठ वर्षोंका इतिहास इससे जुड़ा हुआ है। हमारे बड़ौदाके कई मित्र आज वहां काम करते हैं। वे ६० वर्षोंके साथी हैं। उसके बाद साबरमतीके हमारे कुछ मित्र भी वहां गये। उनमें से कइयोंकी मृत्यु भी वहां हुई। गांधीजी वहां गये इसलिए और भी कुछ लोग वहां गये। महादेवभाई आये, किशोरलालभाई आये, और भी कई विद्यार्थी जो मेरे साथ काम करते थे, पढ़ रहे थे, उनका प्रवाह मुझसे जोड़ा गया। तत्पश्चात् भूदान-आन्दोलन शुरू हुआ। उसकी प्रेरणासे भी अनेक लोग वहां आये। तब जो प्रेरणा बड़ौदामें काम करती थी वह स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलनके समयकी थी। उसके बाद गांधीजीकी प्रेरणा आई। फिर रचनात्मक क्रांतिकी प्रेरणा आई, जो उनकी ही देन थी। तत्पश्चात् ग्रामदानकी प्रेरणा आई। इन सबमें लगनसे लगे हुए साथी जुड़े हुए हैं।

---

१. पू० विनोबाजी द्वारा आयोजित एवं वर्धामें संस्थापित ग्राम-सेवा-मण्डल पू० जमनालालजीके स्मृतिस्थान गोपुरीमें आज भी सुचारु रूपसे संचालित हो रहा है।

मैं जब प्रथम बार वर्धा आया तब प्रथम १०-१२ वर्ष अध्यापनमें बीते और साथ-साथ अध्ययन भी चालू रखा था। आपने देखा होगा कि हमारी लिखित पुस्तकें जो हैं वे मूलमें आध्यात्मिक हैं। उपनिषदोंका अभ्यास, विचार-पोथी, गीताई, गीता-प्रवचन, संतोंका प्रसाद, मधुकर चिन्तन-मननपूर्वक लिखी गईं और आध्यात्मिक विचारोंसे भरी हुई हैं। ऐसी तब हम लोगोंकी दृष्टि थी। उसमें से विद्यार्थी तैयार हुए।

सन् १९२२ के सालमें मैं वर्धा आया उसको भी आज ४५ वर्ष हो गये। वहां जो युवक तैयार हुए, उन्हें इधर-उधर कहीं भेजनेके बजाय, दूसरी जगह कहीं काम देनेके बजाय, अपने क्षेत्रमें काम मिले तो अच्छा है, ऐसा विचार था। स्वाभाविक ही था कि इन सब प्रवाहोंमें सब ब्रह्मचारी रह सकनेवाले नहीं थे। अतः गृहस्थाश्रम अच्छी तरह चले और उन्हें अच्छा कार्य भी मिले, इस दृष्टिसे ग्राम-सेवा-मण्डल संस्थाकी स्थापना की गई। नालवाड़ी गया तब अव्यक्त रूपमें और अब व्यक्त रूपमें वह शुरू हुआ।

उसके बाद एक कदम आगे बढ़कर साक्षात् ब्रह्मविद्याकी खोज करनेके खयालसे हम पवनार गये। इस बातको भी अब ३० साल होनेको आये। साक्षात् ६० वर्षोका यह प्रवाह अखंडित वहां है। भारतमें ऐसे स्थान कम हैं जहां ६० वर्षका सतत प्रवाह देखनेको मिले।

बादमें ग्राम-सेवा-मण्डल चलाया। उसमें भी यही दृष्टि रखी कि वह सरकार-निरपेक्ष हो। तब अंग्रेज सरकार थी। लेकिन जब हमारी सरकार आई तब भी यही दृष्टि रखी कि सरकार-आश्रित संस्था न बने और संभव हो वहां तक स्वावलम्बी रहे। सरकार-मुक्त और स्वावलम्बी गांधी-निधि बना। उसमें से भी मुक्त ऐसी संस्थाएं भारतमें बहुत कम मिलेंगी।

अनेक रचनात्मक कार्य गांधीजीने उठाये। सरकार ही असलमें गांधीजी की है। इसलिए इन कामोंमें सरकारी मदद मिलती है। ग्राम-सेवा-मण्डलमें ऐसी दृष्टि नहीं रखी है। एक बार पण्डित नेहरू मुझे कहते थे कि 'हमारे रचनात्मक कार्यकर्ता उत्तम काम करते हैं और हमारे पास मदद मांगते हैं। ऐसे कार्यके लिए मदद मांगें वह देना हमारा कर्तव्य है। इसलिए हम मदद देते हैं। लेकिन जैसे-जैसे वे हमारी मदद लेते हैं, वैसे ही फीके पड़ते

जाते हैं।' तब यह विशेष दृष्टि उस जगह रखी गई। बीचमें खादीका काम ग्राम-सेवा-मण्डलके पास था। तब खादीको सरकारकी जो स्वाभाविक मदद मिलती है वह आती थी। किन्तु वह काम भी अब अलग हो गया। अब सरकारके द्वारा चरखे बनाने आदिके आर्डर आवेंगे इतना ही नहीं है। यह कोई सरकारी आश्रय नहीं है। वह उद्योग है। उद्योगके लिए अनेक लोगोंसे मांग आवे, वैसे ही सरकारसे भी आती है। इसलिए ग्राम-सेवा-मण्डलकी ओर देखनेका मैं जो दृष्टिकोण रखता हूं वह इस युगके लिए विशेष ही है ऐसा कहना चाहिये।

अन्तिम कल्पना ब्रह्मविद्याकी है। स्वराज्य-कार्यसे आरम्भ करके ब्रह्मविद्याके संशोधन तक पहुंचे। नदी आगे सतत विशाल होती जाती है, लेकिन पीछेसे बहना बन्द नहीं होता, बहते हुए रुकती नहीं। इसलिए उसको अखंडता मिलती है। उसके ये जो एक-एक प्रवाह हैं, उनमें से एक-एक सूखता जाय और नया आता जाय, समाजके लिए यह जरूरी नहीं है। इसलिए ब्रह्म-विद्या-मन्दिरमें जो स्वरूप दिखाई दिया उससे जरा पहलेका स्वरूप मुद्रणालयमें दिखाई देगा और उसके पहलेका थोड़ा रूप नालवाड़ीमें दिखाई देगा। जो पुराने-पुराने स्वरूप हैं, उनको खंडित करनेका कारण नहीं है। वह प्रवाह सतत बहता रहना चाहिये।

ग्राम-सेवा-मण्डल और ब्रह्म-विद्या-मंदिर अथवा दूसरी जगहके आश्रम और मातृ-स्वरूप संस्थाकी योजना हमने की। वह प्राचीन योजनाके अनुसार है। संन्यासी उत्तम गृहस्थोंके आधार पर निर्वाह करते हैं। उन्हें चिन्ता कुछ नहीं। चिन्तन-मनन करना, समाजकी सेवा करना, जी चाहे तब चल पड़ना। पर उनका आधार है गृहस्थ। वैसी ग्राम-सेवा-मण्डल यह संस्था है। वह उत्तम संस्था होनी चाहिये। फिर उसमें से जो आगे जा सकेगा उसे आगे जाना चाहिये। मुझे आपत्ति नहीं है। यह जो सारी कल्पना मेरे मनमें है—ऐसी कल्पना सूक्ष्म होती है—मतलब वह ज्यों-की-त्यों शब्दोंमें नहीं उतारी जा सकती।

गृहस्थ संस्था और संन्यासी संस्था इनका मेल होनेसे क्रांतिके लिए गुंजाइश रहती है और स्थितिसे मेल रहता है। नहीं तो चालू स्थितिसे मेल रखें तो क्रांति नहीं सधती और क्रांति करने जायं तो चालू स्थिति

बिगड़ती है। इसलिए चालू स्थितिको बाधा न होने देते हुए वह धीरे-धीरे आगे बढ़े और क्रांतिमें बाधा न आवे ऐसा करना होगा।

आचार्य-कुल

गत ६ मार्च, १९६८ को विनोबाजी भागलपुर पधारे। वहीं ८ मार्चको प्राचीन विक्रमशीलाके समीप कहोल मुनिके नामसे प्रसिद्ध कहल गांवमें 'आचार्य-कुल' की स्थापनाकी घोषणा विनोबाजीने की, जिससे शिक्षकोंके जीवन-निर्माणकी दिशामें एक नया आरोहण आरम्भ हुआ। विनोबाजीने कहा:

"शिक्षकोंकी नैतिक प्रतिष्ठा बने और बढ़े एवं उनकी सामाजिक हैसियतका उन्नयन हो, न्याय-विभागकी भांति शिक्षा-विभागकी स्वायत्तता सर्वमान्य हो, हिंसाशक्तिकी विरोधी और दण्डशक्तिसे भिन्न लोकशक्तिका निर्माण हो, विश्वशान्तिके लिए आवश्यक वृत्ति एवं दृष्टिकोण बने तथा शिक्षामें अहिंसक क्रांतिका श्रीगणेश हो, ऐसे उद्देश्योंसे 'आचार्य-कुल' का प्रारम्भ हुआ है।"[१]

स्नेहके तीन अधिष्ठान

"स्नेहमें तीन चीजें आती हैं: १. प्रेम, २. आदर और ३. विश्वास। ये तीनों मिलकर स्नेह बनता है। हम देखते हैं कि माता-पिता, पति-पत्नी, मां-बेटे इनका बहुतोंका आपसमें प्रेम तो सामान्यतया होता है, लेकिन आदर नहीं होता है। कुछ ऐसे परिवार होते हैं, जिनमें प्रेम और आदर हो, लेकिन विश्वास होता है ऐसी बात नहीं। पतिको पत्नीकी अकल पर विश्वास नहीं और पत्नीको पतिकी अकल पर विश्वास नहीं। पिताको बेटेकी अकल पर विश्वास नहीं और बेटेको पिताकी अकल पर विश्वास नहीं। प्रेम है, पर विश्वास नहीं। आदर तो ऐसी वस्तु है, जो जरूरी है। इकट्ठे होनेसे एक-दूसरेके दोष देखनेको मिलते हैं। दोष जो हैं, वे प्रकट होते हैं। नजदीकसे देखनेवालेको हमेशा लगता है कि जमीन ऊबड़-खाबड़ है, लेकिन दूरसे देखते हैं तो सारी पृथ्वी गोल दीखती है। उसमें पांच मील ऊंचे पहाड़ हैं और पांच मील गहरे समुद्र हैं। इन दोनोंके बावजूद विज्ञान कहता है कि पृथ्वी

१. 'तीसरी शक्ति' से।

गोल है। नीचाई-ऊंचाई उसकी छोटी चीज लगती है। इस वास्ते नजदीकसे देखने पर वह ऊबड़-खाबड़ दीखती है। हम एक-दूसरेके नजदीक आते हैं, आना पड़ता है। अतः घरमें प्रेम, आदर और विश्वास हो। अपना परिवार ऐसा बने कि जो एक-दूसरे पर प्रेम, आदर और विश्वास करता हो। . . .

गुण आदमीका स्वभाव है। एक-एक आत्मामें एक-एक गुण है, इस तरहसे सब इकट्ठा होकर भगवानका होता है। हरएकको एक-एक गुण देकर उसने भेजा, फिर भी बहुत सारे अपने पास रखे हैं। जो गुण दिया गया है वह भगवानका गुण है, इस वास्ते प्यारसे उसका गुण गाना है।

आसामके महान साधु माधवदेवने मनुष्यके चार प्रकार बताये हैं– अधम मनुष्य वह होता है, जो केवल दोष देखता है। मध्यम मनुष्य वह होता है, जो विचार करके गुण और दोष दोनों ही लेता है। उत्तम वह होता है, जो केवल गुण ही लेता है। ये तीन प्रकार हो गये। लेकिन उत्तमोत्तम वह है जो गुणका विस्तार करता है।

यह आजकल हमको बड़ा आनन्ददायी मालूम होता है कि गुणगान करें।"

राजगीर, ८ जनवरी, १९६९

शान्ति और समृद्धि

"इन्सानके लिए जो ताकतें मददगार हो सकती हैं, उनमें सबसे बड़ी ताकत है: विश्वास। यदि आप चाहते हैं कि सर्वत्र शान्ति हो, सुख हो, समृद्धि हो, कहीं कोई कष्ट न होने पाये, कभी किसीको परेशान न होना पड़े, तो वेदान्त—आत्मज्ञान, विज्ञान और विश्वास, इन तीनोंको अपनानेकी जरूरत है। बाबाके पास यही जादू है कि वह सब पर विश्वास रखता है। जैसे हिंसामें शस्त्र तीव्रसे तीव्रतम हो जाते हैं, वैसे ही अहिंसामें वे सौम्यसे सौम्यतम होते हैं। सर्वोदयकी पद्धतिमें दूसरों पर विश्वास रखना ही बहुत बड़ा शस्त्र है। विश्वास इस संसारका सबसे अद्भुत जादू है। विश्वास पर ही यह सारा संसार खड़ा है।

इसलिए वेदान्त और विज्ञानके साथ मैंने विश्वासको भी जोड़ दिया है। मैं आजकल इन्हीं तीनों तत्त्वोंकी उपासना करता हूं। मैंने संस्कृतमें

एक श्लोक बनाया है, जो इन दिनों मेरे जपका मन्त्र बन गया है। वह इस प्रकार है:

वेदान्तो विज्ञानं विश्वासश्चेति शक्तयस्तिस्रः।
यासां स्थैर्यं नित्यं शांतिसमृद्धी भविष्यतो जगति ॥

वेदान्त, विज्ञान और विश्वास ये तीनों शक्तियां हैं। इन तीनोंके स्थैर्यसे दुनियामें शान्ति और समृद्धि होगी। आज दुनियाको शान्ति और समृद्धिकी जरूरत है। वह वेदान्त, विज्ञान और विश्वाससे ही हो सकेगी।"[1]

प्रेम और प्रसन्नता

जनतामें प्रेम और विश्वास फैलानेका काम हो। उसका असर होना होगा तो भगवान मौका देगा। देखो न! दैविक शक्ति है, बराबर मददमें है। जनतामें आध्यात्मिक शक्ति जगानेके लिए खुल्लम-खुल्ला काम करो। हुजूरने फर्माया कि भारतको संतोंने बचाया है। संतोंसे ही भारत बनेगा, जनताके सहकारसे। वक्त आ गया है, चुन-चुन करके सत्याग्रहीको जमा करो। देखो, इस चुनाव-पद्धतिमें सभ्यता आ ही नहीं सकती। इस पद्धतिको ही बदलना पड़ेगा। ग्राम-सुधार हो, पंचायत हो और स्वावलम्बन होना चाहिये।

हुजूरने मेरे दिमागमें यह चिन्ता भर दी है कि गांव-गांवमें पंचायतें हों, फिर एक महापंचायत हो। बापूने स्वराज्य दिया, अब वक्त आ गया है हमारे जागनेका। . . . इन्सान जागता है उजागर होकर। आप हम काम करनेके लिए भगवानके वाहन हों। अब तो क्रांतिका वक्त है। किसीसे मत डरो, आग्रह रखो। आग्रहके बिना कोई काम नहीं होता।

सफल साधनाका रहस्य है प्रेम और प्रसन्नता।[2]

लेनिन और गांधी

मानव-जीवनको प्रगतिकी ओर प्रेरित करनेवाली अनेक प्रकारकी प्रेरणाएं समय-समय पर प्रकट होती हैं, जो मानवको अखिल विश्वके विकासके

१. 'तीसरी शक्ति' से।

२. ११ दिसम्बर, १९६९ को सायं ५ बजे सन्निधि, राजघाट, नई दिल्लीमें पू० रैहाना बहनके साथ हुई बातचीतका सार।

लिए आत्म-साधनाका प्रकाश प्राप्त करनेके लिए प्रेरक और सहायक होती हैं। उनके सम्बन्धमें विनोबाजीने लिखा है:

"अपने यहां शास्त्र बनाया है—धर्म-प्रेरणा, अर्थ-प्रेरणा, काम-प्रेरणा और मोक्ष-प्रेरणा। ये चारों प्रेरणाएं हैं जिनके लिए मनुष्य काम करता है। उत्तमसे उत्तम कार्य किसी न किसी प्रेरणासे ही होता है।"

ऐसी ही एक महान प्रेरणा महात्माजीको आन्तरिक रूपसे प्राप्त हुई, जिसके विषयमें विश्वके महापुरुष लेनिन और महात्मा गांधीकी तुलना करते हुए विनोबाजीने कहा है:

"गांधीजीने १९०९ में 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तक लिखी और आखिरमें लिख दिया: 'इस हिन्द-स्वराज्यके लिए परमात्माकी इच्छासे मेरा जीवन समर्पित है।' इस तरहसे अपना बाकीका सारा जीवन उसके लिए समर्पित किया और स्वराज्य मिला १९४७ में। करीब चालीस साल तक सतत उनका प्रयत्न चला, अनेक बार अपयश मिला और आन्दोलनको वापस लेना पड़ा, लेकिन सातत्यको कभी नहीं छोड़ा। यह चीज जो गांधीजीमें थी, वही लेनिन में थी। लेनिनने पच्चीस साल सतत प्रयत्न किया तो उसके बाद उनको थोड़ी-बहुत मान्यता मिली और यशस्विता मिलनेके लिए और भी कई वर्ष लगे। ऐसे ही अनेक उदाहरण हैं। लेकिन अपने सामने ये दो उदाहरण हैं: लेनिन और गांधी। इन दोनोंका यह शताब्दी-साल है।

"गीतामें कहा है—'धृत्युत्साहसमन्वितः।' कार्यकर्त्ता उत्साही और धैर्य-मंडित हो। (अ० १८, २६) बहुतसे तरुण उत्साही होते हैं, लेकिन उनमें धैर्य नहीं होता, उतावलापन होता है। उतावलेपनसे काम नहीं होता है। जिनको जीवनमें सफलता प्राप्त हुई उनको तीस-चालीस साल सतत काम करना पड़ा है।

"यह अच्छा है कि आप तरुण लोगोंने शान्तिसेनाका काम हाथमें लिया है। तरुणोंके बीचमें उत्साह अपेक्षित ही है। उत्साहके साथ-साथ धैर्यकी जरूरत पड़ती है। धैर्य और उत्साह दोनों गुण एकत्र हों तो शक्ति निर्माण होती है।

"अखिल विश्वका संचालन विशेष संयोजनपूर्वक होता हुआ दिखाई देता है। उसका संविधान भी होता होगा, जिसे विधि-विधान कहा जाता है। इस युगमें धरातल पर एक साथ दो महापुरुष पैदा हुए। एक पूर्वमें महात्मा गांधी; दूसरे पश्चिममें महापुरुष लेनिन। दोनों ही ने सामूहिक रूपसे मानव-जीवनके विकासका गहरा चिन्तन किया। उसमें से जो विचार प्रकट हुए, उन्होंने सारी दुनियाको आकर्षित और प्रभावित किया। लेकिन आज उन महापुरुषोंकी विश्व-कल्याणकी वे भावनाएं दो समानान्तर विचारधाराओंके रूपमें प्रवाहित हो रही हैं, जो हिंसक और अहिंसक रूपसे प्रतिस्पर्धी वनी हैं। उसमें से विनाश की राह छोड़कर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय रूपसे विकासकी ओर अग्रसर होनेकी चाह मानव-मनमें स्वयमेव जागृत और संगठित होने लगी है।

"विश्वके महान वैज्ञानिक प्रो० आइन्स्टाईनने भी कहा था: 'नथिंग इज़ मोर इम्पोरटेंट टु मैन दैन मैन'—अर्थात् 'न मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।' मानवसे श्रेष्ठतर और कुछ भी नहीं है। इसीसे सार्वभौम रूपमें अहिंसा प्रभावित होती है।

प्रेमके लिए शहीद

"वापूमें हमने ऐसे महापुरुषके दर्शन किए, जो किसी भी व्यवहारी या किसी संसारी मनुष्यसे कम संसारी नहीं। फिर भी वे शत्रु पर मित्रके समान प्रेम रखते थे। उनका कोई शत्रु नहीं था। जिन्होंने उनका प्रेम उनके जीते-जी कवूल नहीं किया, उन्हें उनकी मृत्युके वाद कवूल करना पड़ा।

"वे प्रेमके लिए शहीद हुए।"[१]

गांधी-शताब्दीकी सम्पन्नता

"आज वा-वापू जन्म-शताब्दीकी पूर्णाहुतिका दिन है। इसमें एक वार फिर वा-वापूके विचार व जीवन-चरित्रको सोचने-समझनेका अवसर हम सवको मिला।

१. ७ दिसम्बर, १९६९ को शांतिकुटी, गोपुरी, वर्धामें शांति-सैनिक तरुणोंके वीच हुए विनोवाजीके भाषणसे।

"अनेक स्थानोंमें प्रदर्शनियां और गोष्ठियां हुईं और पुस्तकें छपीं। सरकारने देश व विदेशोंमें रेल-प्रदर्शनीका आयोजन किया जो बहुत सफल रहा। पू० मनुबहनने, जो शुरूसे बापूके साथ थीं, बापूके मार्गको बताने-समझानेमें अपना जीवन-दान दे दिया।

"अहमदाबादमें इस वर्ष अनेक कार्यक्रम आयोजित किये गये, जिसमें सबसे सफल रहा 'नव नागरिक सम्मान दिवस'। यह कार्यक्रम जो ३ वर्षोंसे चला आ रहा था, गांधी-शताब्दीमें एक नया रूप लेकर पूर्ण हुआ और सब जगहों पर बड़े धूम-धामसे मनाया गया। साथ ही राज्य-सरकार और केन्द्रीय सरकार द्वारा उसे मान्यता भी प्राप्त हो गई।

"अब समय आ गया है कि बापूके विचारोंको साथ रखते हुए आगे कार्य किया जाय।"[१]

बाबाका वर्धा आगमन

भारत आजाद हुआ उसी समय उसका विभाजन भी हो गया। तबसे खुदाई खिदमतगार बादशाह खान साहबको पाकिस्तानकी जेलोंमें असंख्य और असह्य यातनाएं सहनी पड़ीं। उसके बाद इस समय गांधी-जन्म-शताब्दीके अवसर पर पहली बार खान साहबका भारतमें पदार्पण हुआ। वे हवाई जहाजसे १ अक्तूबर, १९६९ के प्रातःकाल बम्बई उतरे। वहांसे दिल्ली गये। दिल्लीसे आकर प्यारे बापूके गुजरात प्रदेश—अहमदाबादमें रहे। वहांसे काकाजी जमनालालजीके ८०वें वर्षदिन पर ४ नवम्बर, १९६९ को गुजरातके गवर्नर श्री श्रीमन्नारायणजीके साथ वर्धा पहुंचे थे। उनसे पहले ३ नवम्बरकी शामको राजगीरसे बनारस होते हुए पूज्य बाबा वर्धा पहुंच गये थे। ४ नवम्बरकी दोपहरको बजाजवाड़ीके अतिथि-गृहमें दुनियाके दो महान खुदाई खिदमतगारों—बेताजके बादशाहों—का अपूर्व स्नेह-मिलन हुआ। श्रद्धेय बादशाह खानसे मिलनेकी उत्कंठासे वर्षों बाद पू० बाबा विनोबाजीका वर्धामें शुभागमन हुआ। उस सम्बन्धमें माता जानकीदेवीजीने लिखा है:

---

१. २२ फरवरी, १९७०को राष्ट्रमाता कस्तूरबाकी जन्म-शताब्दीके शुभ दिन तथा गांधी-शताब्दीकी पूर्णता पर वाराणसीसे भारतीय संविधानके अनुसार सम्पूर्ण मौलिक अधिकारोंसे विभूषित एवं तरुणोदय रूपमें अभिनन्दनीया पुत्रवधू . . .की ओरसे प्राप्त एक प्रसन्नतापूर्ण प्रोत्साहन।

"राजगीर (विहार) में खान साहवका आना कैंसिल हुआ तो उनसे मिलने वावा वर्धा आये। पुरानी जगहोंमें जाते थे। वजाजवाड़ीमें जहां पहले घासके वंगलेमें सत्याग्रह आश्रम चला था, उसके चवूतरे पर गये। 'इसे साफ कराना, ये कटा हुआ पेड़ पड़ा है इसे हटवाना, यहां हम उपनिषद् पढ़ते थे।' इस तरह चारों ओर देखकर पुरानी वातें याद करते गये।

"एक दिन सुवह पैदल घूमते हुए मैं वावाको मन्दिरमें भी ले गई। वहांका कुआं दिखाते हुए मैंने कहा—'पहलेके लोग कितने होशियार थे! आधा कुआं वाहर है, आधा भगवानके गर्भागारके निकट अन्दर है। वीचमें दीवार है। पानी साफ करनेके लिए कुएं पर वड़ा टांका भी है। दुनियामें लाखों मन्दिर हैं, पर इस मन्दिरमें पहला हरिजन-प्रवेश हुआ। यह गोव्रत-धारी है और कांचन-मुक्त भी है। गायके ही दूध-घीका यहां उपयोग होता है। चार दफे आरती होती है। गायके घीके अखण्ड दीये वन्द, कारण विजली आ गई तो सभा-मण्डपमें धुआं होनेसे कपड़े काले होना भी वन्द। वुएंसे भगवानकी आंखोंकी ज्योति भी क्यों विगड़े! गायका शुद्ध घी वर्धामें मिलेगा ही और खादीधारी तो वह है ही।'

"तो वावा वोले—'ठाकुरजीके लिए पहली पोशाक मेरी हाथकती खादीकी वनाई गई थी।' सुनते ही मुझे तुरन्त याद आ गया कि जमनालालजी ने वावाकी हाथकती खादीकी पोशाक भगवानके लिए सिलवाई थी और वोले थे: 'इस मन्दिरमें ऐसा पुजारी आवे जो मन्दिरमें प्राण दाखिल करे।' मैंने कहा: 'ऐसे पुजारी तो आप ही हैं।' तो बाबा हंसे और वोले: 'तुमको भी रहना पड़ेगा।' 'हां, अपन दोनों रहेंगे,' मैंने कहा। तो वावा वोले: 'हमारे रहनेके स्थानोंमें यह मन्दिर भी हो सकता है।' . . ."

वजाजवाड़ी, वर्धा, १९७०

जानकीदेवी वजाज

वे हमारे हम उनके

अपूर्व शुभ संयोगकी बात है कि आजादीके लम्बे २३ साल बाद आज खुदाई खिदमतगार सरहद गांधी बादशाह खान अब्दुल गफ्फार खानसाहबका वर्धामें पदार्पण हुआ और पूज्य काकाजी जमनालालजीके ८० वें जन्मदिन पर ही पूज्य विनोबा और पू० अब्बाजान बादशाह खानसाहबका दैवी मिलन भी हो रहा है तथा देश और दुनियाकी दो महान दैवी विभूतियोंके प्यार-मोहब्बत और श्रद्धाके सहारे आज गीताई-मंदिरका शिलान्यास हो रहा है।

मेरा दिल आज भरा-सा है। आजसे ५ वर्ष पहले ४ नवम्बर, १९६४ को पू० विनोबाजीने यहां पर काकाजीके ७५ वें जन्म-दिन पर ही इस कार्यके संकल्प-स्वरूपके नाते भूमिपूजा की थी। तब मुझे कल्पना भी नहीं थी कि इस कार्यकी कल्पना करनेमें कितना विचार करना होगा, कितनी चिन्ता करनी होगी। कई बार भाइयोंने और बहिनोंने बड़े प्यारसे मुझे उलाहना दिया कि इतना समय बीत गया है, अभी तक इधर कुछ क्यों नहीं हो रहा है! विनोबाजीने भी मुझे २-४ दफे बड़े प्यारसे फिर पूछा; लेकिन मेरे मनमें कुछ भाव थे, पता नहीं वे क्यों जागृत हुए और वे इस तरहके भाव थे कि जो भी कुछ चीज यहां बने वह बापू, विनोबा और काकाजीके विचारोंके अनुकूल हो, उनके जीवनके अनुकूल हो और कमसे कम ऐसी कोई बात न हो जो उनके जीवनके प्रतिकूल जाकर बैठे। वह सरल होनी चाहिए, पवित्र होनी चाहिए, नम्र होनी चाहिए और दृढ़ होनी चाहिए। साथ ही कला-कृतिकी दृष्टिसे भी वह इस तरहकी हो जिस तरहसे खद्दर अपना मोटापन व सादगीको लेकर भी अपनी सुन्दरताको कायम रखता है। साथ ही इन तीनों विभूतियोंका यंत्रोंमें प्रतीक हो चरखा और पशुधनमें गाय; ये दोनों प्रतीक **गीताई-मन्दिरकी** चट्टानोंमें अंकित किये जायं या उनके आकारमें आ सकें तो लानेकी कल्पना थी। आकाश, पृथ्वी, प्रकाश,



भाई कमलनयन   मां जानकीदेवी   अब्बाजान   बाबा विनोबा



श्रीमन्नारायणजी खान साहब विनोबाजी

रुस्तम-भवन, सेवाग्राम आश्रम

जल और वायु इन पांचों तत्त्वोंका आपसमें संचार किसी तरहसे बाधित न हो, बल्कि उनमें कमसे कम रुकावट रहे यह भी मेरे मनमें कल्पना थी।

कई स्थापत्य-कलाके विशेषज्ञ थे, उनसे विगतमें मैंने चर्चा की। लेकिन उन्होंने कल्पनाको पसन्द करनेके बावजूद कहा कि यह कैसे हो? इसको मूर्त रूप कैसे दिया जा सकता है? मुझे भी लगता था कि कैसे होगा? पर आत्मा ऐसा कहती थी कि कोई न कोई रास्ता निकलेगा और यह होगा। कई बातें सोचता रहा, समय बीतता रहा, बेचैनी बनी रही। दूसरोंसे भी कहा, विनोबाजीसे भी जाकर मैंने कहा कि आप किसीको आदेश दे दीजिए कि ऐसा कर डालो या किसीका नाम दे दीजिए कि वह कहें वैसा कर डाले, तो मेरी चिन्ता मिटे। लेकिन उनका भी आशीर्वाद तो था और उन्होंने कहा कि तुम्हें प्रसन्नता हो तभी और वैसी ही चीज होनी चाहिए। उसके बाद जिस कलाकार भाईने इसको मूर्त रूप देनेका प्रयत्न किया उन्हें भी वर्षों तक इसकी कल्पना नहीं थी कि यह कैसे होगा। पर अचानक उन्हें सूझा। फिर विचार-विनिमय करके उस विचारको परिष्कृत किया और मूर्त रूप दिया। उसकी मूर्तरूप कल्पना इस प्रकार है:

भारतके दूर-दूरके १८ स्थानोंसे चुनकर विशिष्ट पत्थरोंकी शिलाएं लायेंगे, इन शिलाओंके प्रकार और रंग भिन्न-भिन्न १८ प्रकारके होंगे जो लगानेके बाद भारतकी इकाईका प्रदर्शन करेंगे। उन चट्टानोंको उनके मोटे और खुरदुरे रूपमें रखा जायगा। उनको तोड़ा नहीं जायगा। सिर्फ जिस जगह पर लिखा जायगा उतनी पृष्ठभूमिको साफ कर लिया जायगा; और लिखाई भी इस तरहकी की जायगी कि पत्थरोंमें केमिकल्सके प्रयोगसे वह एकजान हो जाय। इसका नमूना आज जो शिलारोपणकी शिला रखी गई है उसमें है। उससे आपको कुछ कल्पना आ सकेगी। हर तरहके पत्थरोंका रंग अलग होनेसे उस पर जो लिखा जायगा वह भिन्न-भिन्न रंगकी केमिकल-स्याहियोंके द्वारा लिखा जायगा। अभी तक हम ऐसे किन्हीं स्थानोंकी खोज नहीं कर सके हैं, क्योंकि इस कार्यको हमें जल्दीमें करना पड़ा है। लेकिन आप सबके प्रेम और गुरुजनोंके आशीर्वादसे यह काम हम सम्पूर्ण कर सकेंगे ऐसा मुझको विश्वास होता है।

मेरे जीवनका, आज तक अनेक काम करनेके बावजूद, यह सबसे महान कार्य यदि मैं कर सका, तो इससे मुझे सुख और समाधान भी कुछ मिल सकेगा। इसमें पू० विनोबाका आशीर्वाद मिला यह बहुत खुशी-की बात है। आज भी उम्मीद तो नहीं थी कि वे यहां उपस्थित हो सकेंगे। मेरी हिम्मत भी नहीं थी उन्हें बुलानेकी। बादशाह खानने आनेका बड़े प्यारसे कबूल कर लिया; फिर भी मैं विनोबाको कैसे बुलाऊं यही सोचता था। लेकिन अभी यहां पर वे आ गए अपने आप। इससे दिल भर आता है और ऐसा लगता है कि कुछ दैवी संयोग होगा जिसकी वजहसे चीजें अपने आप जुड़ती जाती हैं और मौका अच्छी तरहसे बन जाता है। इस मौके पर बादशाह खान हमारे बीच हैं इसलिए मुझे विश्वास है कि बापू और काकाजीकी आत्माओंको, जहां कहीं भी वे हों, असीम समाधान और सुख पहुंचेगा कि बादशाह खान वर्धामें आए और आज यहां पर आकर इस कार्यको करनेका हमें आशीर्वाद भी देंगे और उनका स्पर्श भी होगा। इससे असीम समाधान हमको है। मैं उनका क्या स्वागत करूं? स्वागत करनेके लिए हम होते ही कौन हैं? वे हमारे हैं, हम उनके हैं। हमें इसमें आनन्द है कि वे हमारे बीचमें हैं। परमात्मा उन्हें बहुत बड़ी उम्र दे जिससे कि भारतका ही नहीं बल्कि मानवताका, सारी दुनियाका भला वे कर सकें। मेरा मानना है कि बापूके बाद भारतमें और अखण्ड भारत जब था उसमें, बल्कि आज शायद विश्व भरमें भी, राजनीतिमें जिसने भाग लिया, आध्यात्मिकताके साथ अपने विचारोंको स्पष्ट रखनेवाला और सचाईसे चलनेवाला कोई दूसरा महापुरुष न तो दिखाई देता है, न थोड़ेमें दिखाई देनेवाला है—ऐसा भी अन्दाज होता है। भगवान इनको यश दे। जो कमियां बापूके जानेके बाद उनकी गैरहाजिरीमें हुई हैं हमें उन कमियोंको दूर करनेकी भी शक्ति व समझ दे।[१]

कमलनयन बजाज

---

१. आदरणीय अब्बाजान बादशाह खान, पू० विनोबाजी, पू० बाल्कोबाजी, सन्त-महात्माओं, श्री श्रीमन्नारायणजी, श्री आबा साहब पारवेकरजीकी उपस्थितिमें ४ नवम्बर, १९६९ को गीताई-मन्दिर वर्धाके शिलान्यासके अवसर पर दिया गया श्री कमलनयन बजाजका उद्बोधन।



वंदगी



गांधी-शताब्दीमें से बाल-शताब्दीकी ओर !

लोकशक्ति जाग्रत हो

आजका दिन सिर्फ वर्वा-निवासियोंके लिए नहीं, लेकिन सारे देशके लिए मैं वहुत महत्त्वका मानता हूं। इस समय हम गांवी-शताब्दी मना रहे हैं, लेकिन साथ ही साथ देखते हैं कि हमारा देश वहुत कठिन जमानेसे गुजर रहा है। राजनीतिक क्षेत्रमें, आर्थिक क्षेत्रमें और सामाजिक क्षेत्रमें कई प्रकारकी परेशानियां हमारे सामने हैं और सारी जनता यह राह देखती है कि कुछ नई रोशनी, नया मार्गदर्शन मिले। हमारा देश लोकशाहीके आघार पर खड़ा है, लेकिन आज लोकशाहीकी नींव मानो हिल रही है। पिछले २०-२२ वर्षोंमें इस देशमें काफी आर्थिक विकासके कार्यक्रम हुए। लेकिन हम देखते हैं कि हमारी वुनियादी समस्याएं, वेकारीकी और गरीवीकी, करीव-करीव उसी प्रकार खड़ी हैं और ठीक समझमें नहीं आता कि किस तरह इन मसलोंको हल किया जाय। सामाजिक क्षेत्रमें पूज्य वापूजीने स्वयं भगीरथ प्रयत्न किए थे। छुआछूत मिटानेके लिए, हरिजन और आदिवासियोंकी हालत सुघारनेके लिए, सर्वधर्म-समभावकी भावना फैलानेके लिए, लेकिन आज हम देखते हैं कि छुआछूत काफी पैमाने पर फैली हुई है। अभी भी उसकी जड़ें काफी गहरी हैं और मजहव और वर्मके नाम पर हम देशकी कितनी बरबादी कर रहे हैं? हिंसा शायद एक सालमें कभी इतनी नहीं फैली थी, चाहे भाषाके लिए, चाहे मजहवके लिए, चाहे सीमाओंकी समस्याओंके लिए। मैं समझता हूं गांधी-शताव्दी वर्षमें जितनी हिंसा हमारे देशमें हो गई, अलग-अलग कारणोंसे, उतनी शायद पहले कभी नहीं हुई। तो वहुत परेशानी होती है कि आखिर क्या हो रहा है हमारा? और वो भी गांवी-शताब्दी वर्षमें, जव कि गांवीजीकी यादमें सारी दुनिया वहुतसे कार्यक्रम कर रही है! कभी-कभी लगता है कि शायद देशके वाहर विदेशोंमें गांघी-शताव्दी वहुत अच्छी तरह मनाई जा रही है वजाय हमारे भारतके। वहुत दुख होता है, परेशानी होती है। ऐसी घड़ीमें यह एक दैवी संयोग मैं

मानता हूं कि विना वहुत वड़ा प्रोग्राम वनाये आज वर्धामें और वह भी पू० जमनालालजीके ८० वें जन्म-दिनके अवसर पर फिर हमारे देशके, एक प्रकारसे मनुष्यमात्रके दो वड़े नेता या मैं कहूंगा 'द ग्रेट कॉमनर्स', लोक-शक्ति के प्रेरक आज सहज एकत्र हुए और सारा देश आज इस आशासे देखता है उनकी तरफ कि सहज यह जो मिलन हुआ उससे हमको नई प्रेरणा, नया संदेश, नया मार्गदर्शन मिले। ४ तारीखको ही यह कार्यक्रम हो ऐसी वहुत कल्पना नहीं थी, उम्मीद भी नहीं थी। पूज्य विनोवाजीके आनेका कोई कार्यक्रम था भी नहीं। पहले तो यही था कि आदरणीय वादशाह खान गुजरात आनेके वाद सर्वोदय-सम्मेलनमें राजगीर जायेंगे और हजारों कार्यकर्त्ता एकत्र हैं, उनके वीचमें इन दो महापुरुषोंका मिलन होगा। लेकिन पू० खानसाहव गुजरातमें रहे, शहरोंमें घूमे, गांव-गांवमें घूमे — वही संदेश पू० वापूजीका लेकर भाईचारेका, विरादरीका, सर्वधर्म-समभावका। फिर उन्होंने तय किया कि वे वहींसे अव सेवाग्राम जायेंगे। वहुतसे उनके और कार्यक्रम थे। सारे देशसे उनके पास न जाने कितने निमंत्रण आये। लेकिन उन्होंने कहा कि नहीं अव हम अहमदावादसे सेवाग्राम-वर्धा जायेंगे। कोशिश पहले हुई कि शायद ३ नवम्वरको ही आ जायं; लेकिन वह संजोग जो होना होता है वही होता है। ४ नवम्वरको ही उनका यहां पधारना हुआ और आज इस शुभ कार्यक्रमके अवसर पर दोनों ही का आशीर्वाद मिला। मैं आशा व्यक्त करता हूं, नम्र आशा कि आजका दिन हमारे देशके लिए एक ऐतिहासिक और महत्त्वका दिन माना जायेगा। क्योंकि दो महान विभूतियां फिर इतने वर्षों वाद देशकी जो चिंताजनक हालत है उस पर चर्चा करेंगी, कुछ नया रास्ता हमको वतलायेंगी, ताकि देशकी जनताकी शक्ति खिले, लोकशक्ति जाग्रत हो और एक नई रोशनी हम सवको रास्ता दिखानेमें सहायक हो।

मैं अव आप सवकी तरफसे पू० वादशाह खानसाहवसे अर्ज करूंगा कि इस अवसर पर वे अपने आशीर्वादके वचन हमसे कहें।[१]

श्रीमन्नारायण

---

१. दि० ४.११.'६९ को गीताई-मन्दिरके शिलान्यासके शुभ अवसर पर गोपुरी, वर्धामें दिया गया भाषण।



त्रिमूर्ति

एक घर एक खानदान

बहनो और भाइयो, मैं आज कई सालके बाद हिन्दुस्तान आया। इन कई सालोंमें आप लोगोंको मालूम होगा कि हम लोगों पर बहुत मुसीबतें और बहुत तकलीफें आईं और कई सालके बाद आपकी मोहब्बत, आपका प्रेम और महात्माजीकी यादने मुझे मजबूर कर दिया कि मैं हिन्दुस्तान आऊं और आप लोगोंसे मिलूं।

भाइयो और बहनो, जब हमारी खुदाई खिदमतगारकी एक सोशल तहरीक शुरू हुई और फिर अंग्रेजोंने उस तहरीकको मिटानेकी जब कोशिश की, तो उस वक्त हमारे कांग्रेससे ताल्लुकात पैदा हुए। पहले-पहल हम तो जमनालालजीका नाम अखबारोंमें देखा करते थे। लेकिन जब हम कांग्रेसमें आ गए तो फिर उनसे हमारे बिरादराना ताल्लुकात कायम हुए। और १९३१ के दिसम्बर महीनेमें अंग्रेजोंने, जब कि गांधीजी राउंड-टेबल कान्फरेंससे वापिस आ रहे थे, सबसे पहले हिन्दुस्तानमें मुझे गिरफ्तार किया और हजारीबाग (बिहार) जेलमें रखा। उसके बाद, तीन सालके बाद, जब १९३४ में हम लोग हजारीबागसे रिहा हुए, तो उस वक्त अंग्रेजी हुकूमतने हमें यह नोटिस दिया कि तुम न पंजाब जा सकते हो और न अपने सूबा सरहद जा सकते हो। इस दौरान हमारे पास एक तार महात्माजीका दिया, एक तार जमनालालजीका दिया आया। हम वहीं बिहारसे वर्धा आए।

वर्धामें हम आपको क्या कहें और गांधीजीको और जमनालालजीको क्या याद करें! उनके दिल तो मोहब्बत और प्रेमसे भरे हुए थे। यहां वर्धामें रहे और फिर यहां पर जमनालालजी और उनके खानदानसे ऐसे मिले कि जिस तरह एक घर या एक खानदानके लोग हुआ करते हैं। अब भी हमें

जब कभी वह याद आ जाते हैं तो हमें बहुत सदमा होता है। लेकिन यह दुनिया है, आप देखते हैं कि यहां वह गए और हम भी जानेवाले हैं।

मुझे आज बहुत खुशी है कि मैं आज उनके ८० वें जन्मदिनमें शरीक होता हूं। उम्मीद करता हूं कि आप लोग जो इस मीटिंगमें जमा हुए हैं, आप लोग अगर हकीकतमें उनको याद करते हैं या उनके जन्मदिन पर जमा होते हैं तो ठीक; वर्ना ये चीजें अब आहिस्ता-आहिस्ता रस्में जैसी होती जाती हैं, रस्म जैसी बन गई हैं। ये लोग जो ऐसे फंक्शनों पर जमा हुआ करते थे तो उनकी याददिहानी[1] होती थी—यह होता था कि उन्होंने अपनी जिन्दगीमें वह कौनसी खिदमत की, कौनसा काम किया अपने मुल्कके लिए, अपनी कौमके लिए, उस रास्तेमें कितनी मुसीबतें, तकलीफें उठाईं, कितनी कुर्बानियां कीं। तो हकीकतमें ये चीजें जो थीं ये इस गर्जके लिए हुआ करती थीं। लेकिन आजकल यह एक रस्म जैसी चीज हो गई है।

आप देखते हैं कि गांधीजीकी जन्मसदी हो रही है। आप देखिए उसमें कितना खर्च हो रहा है! लोग यूरोप जा रहे हैं। कोई अमरीका जा रहा है, कोई अरब जा रहा है। मैंने एकसे पूछा, उसने मुझे बताया जब मैं अफगानिस्तानमें था। आपका एक नेता था। मैंने उससे पूछा, आप कहां जायंगे? उसने मुझे बताया कि मैं यूरोप जा रहा हूं। मैंने कहा कि किस-लिए जा रहे हो? उसने कहा कि ये गांधीजीकी जो जन्मसदी है इस सिलसिलेमें जा रहा हूं। मैंने कहा कि देखो, तुम वहां क्या कहोगे? वहां जाकर तुम क्या करोगे? यूरोप-अमरीकाके लोग, मैं आपको यह कह देना चाहता हूं, मैंने उसको कहा, कि हमें अपने इस मुल्कके वाकयातके हालातकी इतनी खबर नहीं जितनी उन लोगोंको है। मेरा यह खयाल है कि वे लोग आप पर बहुत हंसेंगे, आपका मजाक उड़ायेंगे। हां, सामने आपका लिहाज करके न कहें, लेकिन पीछे वे कहेंगे कि यह अजीब हिन्दुस्तानके लोग हैं और उसके अजीब नेता हैं। उनकी जन्मसदीके लिए यहां आए हैं। गांधीजी की शान्ति, गांधीजीकी अहिंसा, वह यहां आकर हमें बयान कर रहे हैं। लेकिन इनके अपने घरमें, हिन्दुस्तानमें क्या हो रहा है?

---

१. पुनस्र्मरण।

तो यही चीज है। हजारों रुपया खर्च होता है। कोई नुमाइश करता है, कोई गांधीजीकी तस्वीर बनाता है। लेकिन गांधीजीकी असली चीज जो है वो तो तुम मानते नहीं, उस पर चलते नहीं। नुमाइशें करते रहते हैं। नुमाइशसे क्या फायदा? इसलिए यह चीज एक रस्म हो गई है, और फिर एक किस्मकी उन्होंने अपने लिए एक प्रोपेगंडाकी सूरत बना दी है।

इसलिए मैं आखिरमें इतना अर्ज करूंगा कि आप लोग जो यहां जमा हुए हैं तो आप, जो उनके उसूल थे — जमनालालजीके, या जिस रास्ते पर वे चलते थे, या जो सेवा वे करते थे, वह करना। अगर ऐसा हुआ तो इसको मैं उनका जन्म-दिन मनाना मौज़ूं[1] समझूंगा, बेहतर समझूंगा — मुल्कके लिए भी, जनताके लिए भी।

मैं इतना कहनेके बाद भाइयो और बहनो, आपकी इस मोहब्बत और आपके इस प्रेमका तहे दिलसे[2] शुक्रिया अदा करता हूं।[3]

अब्दुल गफ्फारखान



१. उपयुक्त; २. हार्दिक।

३. ता. ४. ११. '६९ को गोपुरी-वर्धामें 'गीताई-मंदिर' का शिलान्यास करते हुए दिया गया पू० बादशाह खानका उद्घाटन-भाषण।

परमात्माकी कृपासे

मुझे यहां लम्बी तकरीर नहीं करनी है। अभी पांच-सात दिन पहले सर्वोदय सम्मेलन हुआ था। उस वक्त मैंने कहा था कि महात्मा गांधीजीका वलिदान जिन मसलोंके लिए हुआ, वही मसले फिरसे सिर उठा रहे हैं, फिरसे हमारे सामने हाजिर हैं। ऐसी हालतमें वादशाह खानका यहां आना मानो एक तरहसे गांधीजीका ही अवतरण है—ये शब्द मैंने वहां इस्तेमाल किए। दुवारा गांधीजी हमारे बीच आए हैं, ऐसा मुझे भास हुआ और वह वात मैंने वहां लाखों लोग इकट्ठा हुए थे उनके सामने कही और वहीं मैंने जाहिर किया कि जव हमारे वड़े भाई आ रहे हैं यहां सेवाग्राममें तो उनसे मिलनेके लिए मैं वहां जाऊंगा। वैसे मुझे यहां आना भी था, पांच-पंद्रह दिन देरीसे आता। आना इसलिए था कि यहांसे गया था विहार और विहारका ग्रामदानका काम पूरा हुआ। सारा विहार सूवा ग्रामदानमें आ गया। तो इस वास्ते यहां मुझे आना ही था वापस। लेकिन दस-पंद्रह दिन जल्दी आ गया और मुझे वड़ी खुशी है कि हम यहां इकट्ठा हो रहे हैं।

मसले मुख़्तलिफ़ हैं, अनेक हैं हमारे सामने समस्याएं, लेकिन घवड़ानेकी कोई जरूरत मैं मानता नहीं हूं; क्योंकि आम जनताका दिल पाक है और साफ है। फिर भी मसले हैं, अहम मसले हैं, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन अगर मसले ही न हों तो इंसानकी जिन्दगीमें लुत्फ ही क्या रहेगा, क्या मजा रहेगा! इस वास्ते मैंने कहा कि हमारे लिए घवड़ानेका सवाल नहीं। शांतिसे वैठेंगे, आपसे चर्चा करेंगे, सलाह-मशविरा करेंगे। कुछ न कुछ निकलेगा उसमें से ऐसी मुझे उम्मीद है।

मैंने कहा था और मैं मानता हूं कि कई दफा जो गिरावट होती है वह ऊपर चढ़नेके लिए होती है। यह तो खानसाहवको मालूम है। उनके



सच्चाई मोहब्बत खिदमत सत्य प्रेम करुणा

परदेशमें जहां वे रहते हैं वहां नीचे उतरना, ऊपर चढ़ना, नीचे उतरना, ऊपर चढ़ना यही होता है। तो यह समाजको भी लागू है। समाज भी एकदम कभी नीचे गिर जाता है, ऊपर उठनेके लिए गिर जाता है। यह परमात्मा की खूबी है कि इस प्रकारसे मनुष्यको, इंसानको ऊपर चढ़ाता है थोड़ा नीचे गिरा करके, फिर ऊपर चढ़ाता है। ऐसी उसकी लीला मैं इस वक्त देख रहा हूं।

एक बात साफ है कि मसले जो भी हैं वो सियासतसे हल होंगे नहीं। मैंने कई दफा जाहिर किया है कि वे रूहानियतसे हल होंगे। ये सियासत और रूहानियतका सवाल बरसों तक मैं लोगोंके सामने रखता रहा और मेरा यह विश्वास है कि ये मसले रूहानियतसे हल होंगे। मैंने कहा मसले अनेक हैं भारतके अपने, इसके अलावा पाकिस्तानके मसले हैं, वो भी हमारे ही मसले हैं। फिर उधर पख्तूनका मसला है, वह भी हमारा मसला है। अभी दलाई लामा मुझसे मिले थे। मैंने कहा कि आपका जो मसला है तिब्बतका, वह हमारा मसला है। इसलिए मैंने उनके सामने एक बात रखी और फिर वहां मैंने जाहिर भी की कि 'ए. बी. सी. इज ए ट्रायंगल।' 'ए' याने अफगानिस्तान, 'बी' याने बर्मा और 'सी' याने सिलोन। इस बीच जितना प्रदेश है वह सबका आज नहीं कल कौनफैडरेशन करना होगा–ए. बी. सी. का। उसमें अफगानिस्तान आया, कश्मीर और पाकिस्तान आया, हिन्दुस्तान आया, तिब्बत आया, बर्मा और सिलोन आया। इतना सारा जो हिस्सा है, उसका आज नहीं कल कौनफैडरेशन होगा, होगा और होगा यह मेरा विश्वास है। यह हमको करना होगा; तो इसका उपाय हम ढूंढ़ेंगे, आपके साथ चर्चा करेंगे और परमात्माकी कृपासे कुछ न कुछ हल हमारे हाथमें आ जायेगा ऐसा मैं मानता हूं।

सबको प्रणाम! जय जगत्![1]

विनोबा

---

१. ता. ४.११.'६९ को गोपुरी-वर्धामें 'गीताई-मंदिर' के शिलान्यासके अवसर पर विनोबाजीका आशीर्वचन।

स्मृति-मंदिर

पूजनीय बादशाह खानसाहब, पूजनीय विनोबाजी, पूजनीय माताजी, गुजरातके राज्यपाल श्री श्रीमन्नारायणजी तथा भाइयो और बहनो, आजका यह प्रसंग वर्धाकी तथा महाराष्ट्रकी दृष्टिसे ही नहीं, अपितु देशकी तथा मानवताकी दृष्टिसे भी महान और मंगल है। जो इतिहासमें घटित नहीं हुआ, वह आज हम स्वयं आंखोंसे देख कर तृप्ति अनुभव कर रहे हैं। जिन्हें प्रत्यक्ष रूपमें यह सन्तोष प्राप्त हुआ वे सचमुच भाग्यशाली समझे जाने चाहिए। मानवताके इन दोनों महान पूजकोंका, सत्ताईस वर्षोंके पश्चात् आज यह ऐतिहासिक मिलन हो रहा है। वह भी स्वर्गीय जमनालालजी बजाजके जीवन-कार्य पर आधारित वर्धा स्थानमें। इसे मैं सच्चे अर्थमें एक ऐतिहासिक घटना मानता हूं।

माननीय बादशाह खान तथा माननीय विनोबाजीका आगमन वर्धा जैसे स्थान पर एक ही समय पर हो सकेगा, यह कल्पना भी नहीं थी। परन्तु इस प्रसंग द्वारा आजकी विकट परिस्थितिमें हमें पथप्रदर्शन प्राप्त होनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। मैं महाराष्ट्र शासनकी ओरसे, मुख्यमंत्रीजीकी ओरसे तथा महाराष्ट्रकी आम जनताकी ओरसे माननीय पूज्य बादशाह खान तथा पूजनीय विनोबाजीका अत्यन्त आदरके साथ स्वागत करके उन्हें अभिवादन करता हूं।

स्वर्गीय जमनालालजी बजाज एक अलौकिक व्यक्तित्व प्राप्त पुरुष थे, यह हम सभीको ज्ञात है। उन्हींके कारण आज यह वर्धाकी भूमि राष्ट्रपिताकी कर्मभूमि बनी हुई है तथा पूज्य विनोबाजीकी अमर स्मृतिके रूपमें गीताई-मन्दिरकी भी रचना होने जा रही है। इस अलौकिक विभूतिके समाधि-स्थान पर यह स्मृति-मन्दिर आज हम निर्माण कर रहे हैं। उसका शिलान्यास हो रहा है। यह कार्य इन महापुरुषोंकी उपस्थितिमें हुआ है।

इस घटनाका असामान्य महत्त्व है, क्योंकि महापुरुषोंका स्मारक निर्माण किया जाता है कुछ प्रेरणा ग्रहण करनेके लिए।

स्वर्गीय जमनालालजी बजाजकी स्मृतिको अभिवादन कर मैं आप सबकी ओरसे, महाराष्ट्र शासनकी ओरसे तथा मुख्यमंत्री श्री नाईकजीकी ओरसे माननीय बादशाह खान तथा पूजनीय विनोबाजीका स्वागत करता हूं।[1]

आबासाहब पारवेकर

गीताईके प्रथम प्रकाशक

आज हम यहां श्रद्धांजलि अर्पण करनेके लिए बैठे हैं। २५ साल स्वर्गीय जमनालालजीकी मृत्युको आजके दिन हुए हैं। उनसे मेरा बहुत निकट संबंध रहा और आजके दिन उनकी कन्या यहां उपस्थित है तो एक पारिवारिक समाज जैसा हो गया है हमारा। और अभी जो मैं बोलूंगा उसका एक पारिवारिक स्वरूप है।

जमनालालजी इस युगमें, बापू जिसे ट्रस्टीशिप-वादी कहते थे, उसका एक काफी अच्छा नमूना थे। अपनी सब संपत्तिको समाजकी सेवामें ही उन्होंने कृष्णार्पण किया। फिर भी ट्रस्टीकी पूर्ण कसौटी पर वह नहीं पास हो सके। वे चाहते तो थे वैसा हो, और अपनी सारी सम्पत्तिका ट्रस्ट करना चाहते थे। लेकिन बापूने ही उनको रोका। बापूने कहा: "ऐसे मामलेमें जल्दी नहीं करनी चाहिये, धीरे-धीरे, सहज, आहिस्ता-आहिस्ता होगा। उसका समय आयेगा तो पूरा होगा। तो इसको अभी कानूनी स्वरूप देनेकी आवश्यकता नहीं है। जो तुम्हारा चलता है स्वाभाविक, परोपकारी स्वभावके अनुसार चलता रहे तो अच्छा है।" इस तरह बापूने ही उनको रोका,

---

१. ता० ४.११.'६९ को स्व० जमनालालजीके ८० वें जन्मदिन पर गीताई-मंदिरके शिलान्यासके शुभ अवसर पर गोपुरी, वर्धामें पू० खानसाहब तथा विनोबाजीकी उपस्थितिमें माननीय बाबासाहब पारवेकर, राज्यमंत्री, महाराष्ट्र राज्य द्वारा दिया गया भाषण।

नहीं, तो वह जल्दीमें थे कि सारी संपत्तिको कृष्णार्पण कर ट्रस्टके अर्पण करें।

वह जन्मसे वैश्य थे और वैश्यके नाते जो कुछ कर्तव्य शास्त्रकारोंने कहा वह उन्होंने अच्छी तरहसे पालन किया ऐसा कहना चाहिये। खादीके काममें बहुत दिलचस्पी लेते थे तो वह तो वैश्यका काम था ही और आखिर उन्होंने गोरक्षाका काम लिया, गो-सेवाका और उसमें वह तन्मय थे और उसकी सेवामें ही वह परंधाम पहुंचे हैं। तो वह भी एक वैश्यका ही काम था।

भक्तिभाव उनके हृदयमें था जो वैश्यके लिये होना बहुत जरूरी है। शास्त्रके अनुसार जमनालालजी रोज गीता पढ़ते थे, मूल संस्कृतका हिन्दी तर्जुमा। वे संस्कृत नहीं जानते थे तो मुझसे एक दिन कहा कि इसका एक ऐसा ही रूप पद्यमें मराठीमें आ जाये तो अच्छा। तो मैंने उनसे कहा कि ठीक है। मेरी मांने भी मुझसे अपेक्षा की थी और मैंने 'हां' कहा था कि मैं कोशिश करूंगा। तो यूं करके गीताका मराठी अनुवाद एक-एक श्लोक उसी छंदमें मराठीमें किया गया। चार महीने उसमें लगे। १९३० में यह अनुवाद हुआ। वह जब प्रकाशित करनेका मौका आया तो जमनालालजीने कहा कि 'मैं इसका प्रकाशक बनूंगा।' तो उसकी प्रथम आवृत्तिके वह प्रकाशक बने और उसका काफी प्रचार, जब तक वह थे, उन्होंने किया। वह चीज महाराष्ट्रमें सबको प्रिय हुई और लगभग छः लाख प्रतियां उसकी महाराष्ट्रमें गईं और गांव-गांवमें जनता प्रेमपूर्वक उसको पढ़ती है। उसका नाम 'गीताई' ही रखा है। गीताका ही नाम है, गीता-माता। तो यह उनके निमित्तसे हुआ। वैसे तो मेरी मांको मैंने वचन दिया था तो मुझे यह करना ही था, लेकिन उन्होंने इच्छा प्रकट की तो जरा शीघ्र उसमें लग गया और चार महीने पूर्ण एकाग्रतासे काम किया गया। उसका फिर दुबारा, तिबारा संशोधन भी किया। दो-चार महीने संशोधनमें भी लग गए। फिर वह पढ़ाया भी बहनोंको। यह देखनेके लिये कि पढ़नेमें मुश्किल तो नहीं होती। तो जहां-जहां बहनोंको मुश्किल गया वहां-वहां सुधारा। यूं करके वह सरल बन गया। परिणामस्वरूप गांव-गांवमें आजकल वह पुस्तिका चलती है। खैर, यह तो मैंने उनका-मेरा जो संबंध था उसकी एक घटना आपके सामने स्मरणके तौर पर रखी।



भाई रामकृष्ण और कमलनयनजीके साथ कौमके लिए फिकरपरस्त अब्बाजान

जमनालालजी वर्ण-व्यवस्थाके अनुसार बरते और मैंने कहा कि वे वैश्य थे और उन्होंने वैश्य निवृत्ति धर्म अच्छा निभाया। और चारों धर्मोका भी उनको खयाल था। तो जल्द-जल्द गृहस्थ आश्रममें से निवृत्त हुए और वानप्रस्थ वृत्तिमें रहने लगे और उसी वृत्तिमें वह अंतमें गये। यानी विषय-वासनासे मुक्ति पाना मानवका अंतिम कर्तव्य है। चाहे किसी भी वर्णमें वह पैदा हुआ हो इसीके लिए मानव शरीर है। इसका उनको भान था और निरंतर अपनी कसौटीसे वे अपनेको कसौटी पर कसते थे कि चित्त निवृत्त हो रहा है या नहीं? जो कुछ अनुभव उनको आते थे वे बापूके सामने कुछ अंशमें और पूराका पूरा मेरे सामने रखते थे। ऐसे तो बापूका उनका संबंध बहुत निकटका था, लेकिन बापू बहुधंधी पुरुष थे तो उन्हें समय कम मिलता था। इसलिए ज्यादा चीज उनके सामने नहीं रखते थे। मेरे पास सब रखते थे—अपने चित्तमें जो विकार, विचार आते हैं वह सब। तो मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है कि वह अत्यंत तीव्रतासे कहा करते थे कि चित्त निर्विषय हो। और उसी अवस्थामें वह गये हैं इसमें मुझे कोई शक नहीं।

अभी मैंने वर्ण-व्यवस्थाकी बात सहज आपके सामने रखी कि वैश्य वर्णका उन्होंने अच्छा पालन किया और आश्रम-व्यवस्थाका भी अच्छा पालन किया। गृहस्थ आश्रममें बैठे तो उस आश्रममें कामके बिना नहीं होता। यह चीज तो हम भूल ही गये हैं। उसमें से निवृत्त होना होता है। शरीरकी शक्ति जीर्ण न हुई हो उसके पहले ही मुक्त होना होता है। उसे शास्त्रकारोंने बुद्धि भी कहा है। उसको वानप्रस्थ बुद्धि कहते हैं। तदनुसार वे अंतमें वानप्रस्थ रहे और वर्ण और आश्रमका बहुत अच्छी तरह पालन किया।

मैं मानता हूं कि यह वर्ण-आश्रम व्यवस्था भारतकी दुनियाको देन है। इस व्यवस्थामें जो सामंजस्य है वह सामंजस्य मैंने और किसी भी सामाजिक व्यवस्थामें नहीं देखा।[1]

विनोबा

---

१. ११ फरवरी, १९६७को स्वर्गीय जमनालाल बजाजकी २५वं पुण्य-तिथि पर पूसा-रोड, बिहारमें पूजनीय विनोबाजीकी श्रद्धांजलि।

गीताई

जेलमें विनोबाजीका गीताके सम्बन्धमें प्रवचन होता था, लेकिन वह पुरुषों तक ही सीमित था। जमनालालजीकी कोशिशसे विनोबाजीको प्रवचन सुनानेके लिए स्त्रियोंके वार्डमें भी जानेकी अनुमति मिल गई।

विनोबाजी जेलमें 'गीताई' पुस्तक तैयार कर रहे थे और यह सोचा जा रहा था कि पुस्तकका प्रकाशन कौन करे? जमनालालजीके धूलिया-जेलमें आनेके बाद इस कार्यमें गति आई, परन्तु दिक्कत यह हुई कि जेलमें से यह कार्य कैसे सम्पन्न हो। जब जेलरसे बातचीत हुई तो उसने कहा, "अगर यह कार्य गुप्त रूपसे चला सको तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। लेकिन इसके लिए छापेखानेवालेको बार-बार इधर आना पड़े और आप लोगोंके साथ बातचीत करनी पड़े तो उसकी अनुमति देना मेरे लिए सम्भव नहीं होगा।" धूलिया-जेलमें नीचे जेल था, ऊपर पुलिस-आफिस था। इसलिए उन्हें डर था कि यदि किसीने पुलिस-आफिसमें उनके विषयमें शिकायत कर दी कि वह कांग्रेसी कैदियोंके साथ नाजायज रियायतें कर रहे हैं तो उसकी खैर नहीं होगी। यही कारण था कि जेलरने विनोबाजीके मुक्त होने पर भी अपनेको इस संकटसे बचा लेना चाहा।

जमनालालजीने अपने साथी मित्रोंसे परामर्श किया। तब बैरिस्टर श्री पुरुषोत्तमदास त्रिकमदासने कहा कि आखिर यह कार्य जो होने जा रहा है, एक धार्मिक पुस्तकका प्रकाशन मात्र है। विनोबाजी आचार्य हैं, अतः सरकारको इस सम्बन्धमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अन्तमें कार्य सुगम हो गया, पुस्तककी छपाई आदिकी व्यवस्था हो गई। 'गीताई' के प्रकाशनका कार्य श्री विनायक नरहर वर्वेको सौंपा गया और 'गीताई' का पहला संस्करण धूलिया-जेलमें ही प्रकाशित हुआ। यहां यह बात उल्लेख योग्य है कि बहुत दिन पहले जमनालालजीने विनोबाजीसे अनुरोध किया

था कि वे एक छोटी-सी (जेबमें रखने लायक) धार्मिक पुस्तक तैयार करा कर दें। 'गीताई' का प्रकाशन उसीके फलस्वरूप था।

धूलिया-जेलमें धार्मिक त्योहार तक मनाये जाते थे। एक बार जमनालालजीके प्रयत्नसे गोकुलाष्टमी बड़े धूमधामसे मनाई गई।

रामेश्वर पोद्दार

गीता मेरा प्राणतत्त्व

आजसे मैं श्रीमद्भगवद्गीताके विषयमें कहनेवाला हूं। गीताका व मेरा संबंध तर्कसे परे है। मेरा शरीर मांके दूध पर जितना पला है उससे कहीं अधिक मेरा हृदय व बुद्धि, दोनों गीताके दूधसे पोषित हुए हैं। जहां हार्दिक संबंध होता है, वहां तर्ककी गुंजाइश नहीं रहती। तर्कको काटकर श्रद्धा व प्रयोग, इन दो पंखोंसे ही मैं गीता-गगनमें यथाशक्ति उड़ान भरता रहता हूं। मैं प्रायः गीताके ही वातावरणमें रहता हूं। गीता यानी मेरा प्राण-तत्त्व। जब मैं गीताके संबंधमें किसीसे बात करता हूं तब गीता-सागर पर तैरता हूं और जब अकेला रहता हूं तब उस अमृत-सागरमें गहरी डुबकी लगाकर बैठ जाता हूं। इस गीता-माताका चरित्र मैं हर रविवारको आपको सुनाऊं, यह तय हुआ है।

गीताकी योजना महाभारतमें की गई है। गीता महाभारतके मध्य-भागमें एक ऊंचे दीपककी तरह स्थित है, जिसका प्रकाश सारे महाभारत पर पड़ रहा है। एक ओर छः पर्व और दूसरी ओर बारह पर्व, इनके मध्यभागमें गीता, उसी तरह एक ओर सात अक्षौहिणी सेना व दूसरी ओर ग्यारह अक्षौहिणी, इनके भी मध्यभागमें गीताका उपदेश दिया जा रहा है।

महाभारत व रामायण हमारे राष्ट्रीय ग्रंथ हैं। उनमें वर्णित व्यक्ति हमारे जीवनमें एकरूप हो गये हैं। राम, सीता, धर्म, द्रौपदी, भीष्म, हनुमान इत्यादि रामायण-महाभारतके चरित्रोंसे सारा भारतीय जीवन आज हमारो

वर्षोंसे अभिमंत्रित-सा हुआ है। संसारके इतर महाकाव्योंके पात्र इस तरह लोकजीवनमें घुले-मिले नहीं दिखाई देते। इस दृष्टिसे महाभारत व रामायण निःसन्देह अद्भुत ग्रंथ हैं। रामायण यदि एक मधुर नीति-काव्य है, तो महाभारत एक व्यापक समाजशास्त्र है। व्यासदेवने एक लाख संहिता लिखकर असंख्य चित्रों, चरित्रों व चारित्र्योंका यथावत् चित्रण बड़ी कुशलतासे किया है। बिलकुल निर्दोष तो सिवा एक परमेश्वरके कोई नहीं है, लेकिन उसी तरह केवल दोषमय भी इस संसारमें कोई नहीं है, यह बात महाभारत बहुत स्पष्टतासे बता रहा है। इसमें जहां भीष्म-युधिष्ठिर-जैसोंके दोष दिखाये हैं, तो दूसरी ओर कर्ण-दुर्योधनादिके गुणों पर भी प्रकाश डाला गया है। महाभारत बताता है कि मानव-जीवन सफेद व काले तंतुओंका एक पट है। अलिप्त रहकर भगवान् व्यास जगत्के — विराट् संसारके — छाया-प्रकाशमय चित्र दिखलाते हैं। व्यासदेवके इस अत्यंत अलिप्त व उदात्त ग्रथन-कौशलके कारण महाभारत ग्रंथ मानो एक सोनेकी बड़ी भारी खान बन गया है। उसका शोधन करके भरपूर सोना लूट लिया जाय।

व्यासदेवने इतना बड़ा महाभारत लिखा, परन्तु उन्हें खुद अपना कुछ कहना था या नहीं? अपना कोई खास संदेशा किसी जगह उन्होंने दिया है? किस स्थान पर व्यासदेवकी समाधि लगी है? स्थान-स्थान पर तत्त्वज्ञान व उपदेशोंके जंगलके जंगल महाभारतमें आये हैं, परन्तु इस सारे तत्त्वज्ञान-का, उपदेशका और समूचे ग्रंथका सारभूत रहस्य भी उन्होंने कहीं लिखा है? हां, लिखा है। समग्र महाभारतका नवनीत व्यासजीने भगवद्गीतामें निकालकर रख दिया है। गीता व्यासदेवकी प्रधान सिखावन व उनके मननका सार-संचय है। इसीके आधार पर 'मुनियोंमें मैं व्यास हूं' यह विभूति अर्थपूर्ण साबित होनेवाली है। गीताको प्राचीन कालसे उपनिषद्की पदवी मिली हुई है। गीता उपनिषदोंका भी उपनिषद् है, क्योंकि समस्त उपनिषदोंको दुहकर यह गीतारूपी दूध भगवानने अर्जुनके निमित्तसे संसारको दिया है। जीवनके विकासके लिए आवश्यक प्रायः प्रत्येक विचार गीतामें आ गया है। इसीलिए अनुभवी पुरुषोंने यथार्थ ही कहा है कि गीता धर्मज्ञानका एक कोष है। गीता हिन्दू-धर्मका, एक छोटा ही, परन्तु मुख्य ग्रंथ है।

यह तो सभी जानते हैं कि गीता श्रीकृष्णने कही है। इस महान् सिखावनको सुननेवाला भक्त अर्जुन इस सिखावनसे इतना समरस हो गया कि उसे

भी 'कृष्ण' संज्ञा मिल गई। भगवान् और भक्तका यह हृद्गत प्रकट करते हुए व्यासदेव इतने एकरस हो गए कि लोग उन्हें भी 'कृष्ण' नामसे जानने लगे। कहनेवाला कृष्ण, सुननेवाला कृष्ण, रचनेवाला कृष्ण – इस तरह इन तीनोंमें मानो अद्वैत उत्पन्न हो गया, मानो तीनोंकी समाधि लग गई। गीताके अभ्यासकको ऐसी ही एकाग्रता चाहिये।

धूलिया जेल, विनोबा
रविवार, २१.२.'३२

गीताई-मंदिरकी रूपरेखा

इस प्रयोजनका उद्देश्य किसी एक व्यक्तिकी यादगारको कायम रखने की बनिस्बत उन लोगोंके जीवनकी स्मृति बनाये रखना है, जो एक ही विचारधारा और विश्वाससे सूत्रबद्ध हैं। इस स्मारककी रूपरेखाके महत्त्व-पूर्ण तत्त्व हैं:

सोपान : प्रथम : वह धार्मिक पृष्ठभूमि, जिसने गांधी-विचार और उसके अनुकूल पावन जीवनको पनपाया।

द्वितीय : गांधी-जीवनकी सर्वविदित पवित्रता, सरलता, नम्रता, सादगी, खुलापन और दृढ़ता।

तृतीय : समग्र भारतीय उपद्वीपमें सर्वोदयी विचारधाराका प्रभावपूर्ण विस्तार।

चतुर्थ : सर्वोदय कार्यक्रमसे जुड़ी खुरदुरी और ग्रामीण बुनावट, बिलकुल खद्दरकी तरह।

पंचम : हमारे ग्राम्य अंचलोंके 'खुलेपन' का स्थापत्यमें समावेश।

षष्ठ : भारतीय ग्रामीण जीवनमें खटकते हुए अभावको दूर करनेवाला भाव।

सप्तम : सृष्टि-सौन्दर्य और प्रचुरताके वातावरणका कलापूर्ण कृति द्वारा दिग्दर्शन।

पूज्य काकाजीके समाधि-स्थल पर उनके विचारों और जीवनके अनुकूल स्मारक बन सके, ऐसी परम पूज्य बापू, विनोबा तथा समस्त गांधी-सर्वोदयी-परिवारकी उत्कट इच्छा रही। किन्तु योग्य कल्पना न सूझनेके कारण अभी तक वहां कुछ किया न जा सका। बापू तो इसकी जिम्मेदारी स्वयं अपनी मानते थे और आखिर तक उनको इसका दुःख रहा कि वहां कुछ नहीं हो पाया। इसे उन्होंने मुझसे और दूसरोंसे व्यक्त भी किया।

मंदिरका स्वरूप

विनोबा पर पूरे परिवारकी श्रद्धा हमेशा रही है। मेरी बचपनसे ही इच्छा थी कि विनोबा अथवा गीताईको लेकर कोई स्थाई स्मारक-रूप अच्छी कृति मैं बड़ा होकर बनवाऊंगा।

ऊपरकी ये दोनों कल्पनाएं शुरूमें स्वतंत्र और अलग-अलग थीं।

इसे एक विचित्र संयोग, दैवी-कृपा ही समझना चाहिये कि इन दोनों कल्पनाओंका मधुर मिलन मूर्त रूपमें एक ही स्थान पर स्मारक-रूपसे साकार हो रहा है। इस इच्छाको मूर्त रूप देनेके संकल्पको दृढ़ करनेके लिए विनोबाजीने अपने दोनों भाइयों, माताजी और आश्रम तथा नगरवासियोंकी उपस्थितिमें दिनांक ४ नवम्बर, १९६४ को काकाजीके समाधि स्थान गोपुरीमें ही भूमिपूजन किया और आशीर्वाद दिया।

यह स्मारक पूज्य बापू, विनोबा तथा काकाजीके विचार और जीवनके अनुकूल पवित्र, सादा, सरल, स्पष्ट, खुला, मुक्त, दृढ़, प्रभावशाली और प्रेरणादायक हो। सुन्दर और कलापूर्ण तो हो ही। थोड़ेमें 'सत्यं-शिवं-सुन्दरं' का आभास देनेवाला भी हो। इन गुरुजनोंके जीवन-कार्यके प्रतीक-रूप यंत्रमें

मुख्य चर्खा और पशुओंमें मुख्य गाय रहे हैं। इस स्मारकके स्वरूपमें इन प्रतीक-चिह्नोंका सांकेतिक रूपमें ही क्यों न हो, समावेश किया जाय। जहां तक हो सके पंचतत्त्वों—आकाश, अग्नि, वायु, जल और पृथ्वीका अत्यधिक आपसी संचार और संपर्क रहे।

जैसे-जैसे सूरज आकाशमें चढ़ेगा, इन प्रस्तर-शिलाओंकी परछाइयां बढ़ेंगी और घटेंगी। अंदरूनी चौकोरमें बहनेवाले झरने और उसके बाहरवाले तालाबमें आकाशका बिंब दिखाई देगा। पक्षी अपनी मधुर वाणीमें ब्रह्म-मुहूर्त और सूर्यास्त पर चहचहायेंगे। अंधेरी रातमें पानीके नीचेसे सितारे झिलमिलायेंगे। पत्तोंके बीचसे बहनेवाली हवा अपनी उपस्थितिसे इस देशकी एकताकी घोषणा करनेवाले मूक पत्थरोंसे अविरल संबंध स्थापित करेगी।

कमलनयन बजाज



।। श्री हरि : ।।

स्व. जमनालालजी बजाज की स्मृति में
उनके अस्सीवें जन्म-दिन पर
"गीताई मंदिर" का शिलान्यास
उनके प्रियवर साथी
बादशाह खान अब्दुल गफ्फारखाँ
द्वारा किया गया।
४ नवम्बर, १९६९

समाधान

'राष्ट्र गगनकी दिव्य ज्योति राष्ट्रीय पताका नमो नमो!
भारत जननीके गौरवकी अविचल शाखा नमो नमो!'

ऐसे राष्ट्रभक्तिके भाव मनमें जगानेवाले राष्ट्रके महापुरुषोंकी सुमधुर स्मृतियोंका संगम दुनियामें होता ही आया है। विज्ञानके इस युगमें दुनियाके महान वैज्ञानिक प्रो० आइन्स्टाइनने सन् १९४९ में अपने हाथों यह लिखकर दिया था: 'नथिंग इज़ मोर इंपोर्टन्ट टू मैन दैन मैन' (Nothing is more important to man than man.) यही बात 'न मानवात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्' के रूपमें हजारों वर्ष पहले हमारे यहां कही गई थी। ऐसी अनेक मंगल भावनाओंका यह 'स्मृति-संगम' युग-प्रवर्तक महापुरुषोंके पारस्परिक स्नेह-सागरमें समर्पित है। बा, बापू, बाबा और अब्बाजानके साथ काकाजीका पारस्परिक प्रेम इसमें छलक रहा है। सच्चाई, मोहब्बत और खिदमतके सुन्दर फूल इसमें खिल रहे हैं। जानकी-जमनालालकी जीवन-जाह्नवीके स्मृति-संगमसे यही जन्मोजन्मकी जागीर हमें प्राप्त हो रही है। संत तुलसीदासजीके मंगल वचनोंके अनुसार 'बड़े भाग पाइय सतसंगा, बिनु हि प्रयास होहि भवभंगा' की भावना इसमें तरंगित हुई है।

लक्ष्मीनारायण मंदिर, वर्धाके निकट गांधीचौकमें बच्छराजजीकी दुकान है। उसीके ऊपर रहनेका मकान बना है। जवानीकी उम्रमें काकाजी यहीं रहे थे और हम पांचों भाई-बहनोंका जन्मस्थान यही है। काकाजीने यहीं रायबहादुरी पाई और यहींसे उसे विदा भी किया। लोकमान्य तिलक महाराजका शुभागमन और स्वागत-समारोह यहीं गांधीचौकमें ही सम्पन्न हुआ था। गांधी महाराजकी खोज यहींसे हुई और यहींसे झण्डा-सत्याग्रहका आन्दोलन शुरू हुआ, जो बड़ी सफलतासे सम्पन्न भी हुआ।

कर्मवीर महात्मा गांधीके सत्संग और मार्गदर्शनमें जमनालालजीकी जीवन-ज्योति जगमगाने लगी। उसीमें सजीवन-सतीत्वकी साधना करनेवाली माता जानकीदेवीका जीवन सहज रूपसे समर्पित होता चला गया। काकाजी के जीवनमें स्वदेशीका आग्रह जागा और तत्काल जानकी मैयाने विदेशी वस्त्रोंकी अभूतपूर्व होलीका महोत्सव गांधीचौकमें ज्योतित कर दिया। इसी तरह लाखोंके गहनोंका त्याग एक क्षणमें किया वह भी इसी मकानमें बैठकर। एक-एक आभूषण बदन परसे निकाल कर थालमें सजा दिये और भारत-माताके मंदिरमें चढ़ानेके लिए महात्मा गांधीजीको अर्पित कर दिये। बाद १९२४ में सेवा-साधनामय जीवनके लिए मां और काकाजी साबरमती आश्रममें जाकर कई साल रहे, जिससे हम बच्चोंको बचपनसे ही अच्छे संस्कार प्राप्त हो सकें।

इस तरह जीवनके मध्याह्नमें जिस भवनसे त्यागमय साधनाका प्रारंभ हुआ, अठारह साल बाद संजोगवशात् एकादशीके शुभ दिन मंदिर-दर्शन करते हुए अचानक वर्धाके उसी परम्परागत बच्छराज भवनमें पहुंचकर काकाजीने क्षणार्धमें अपने देहका भी त्याग कर दिया। केवल अपने दत्तक पिताकी प्यार और आभार भरी स्मृतियोंको वे अपने साथ ले गये। बाकी सारे भौतिक स्मरण, संस्कार यहींके यहीं छोड़कर काकाजी गोलोकवासी हो गये।

२९ जुलाई, १९६९ की बात है। अहमदाबादमें श्रीमां आनन्दमयी मांके दर्शनोंके लिए हम उनके निवास स्थान पर गये थे। सुबह कोई ११ बजेका समय रहा होगा। प्रारंभिक प्रणाम एवं प्रसाद प्राप्त करनेके बाद हम सपरिवार बड़ी प्रसन्नतासे वहां बैठे थे। कौटुम्बिक कुशल-प्रश्नके बाद मां जानकीदेवीने श्रीमांसे पूछा कि 'जो व्यक्ति इस दुनियामें अपनी साधना करके चला जाता है उसको देह-विसर्जनके बाद उस साधनाकी क्या मदद मिलती है और उसको आगे कौनसी गति प्राप्त होती है?'

श्रीमांने इस प्रश्नका समाधान करते हुए कहा: 'जो व्यक्ति शुभ चिन्तन करते हुए देह-विसर्जन कर जाता है उसका वह शुभचिन्तन ही उसको मददगार होता है। यदि उसकी कोई वासना बची नहीं होगी तो देह-विसर्जनके बाद न वह आगे जाता है न पीछे आता है, वह परम आनन्द की स्थितिमें पहुंच जाता है और जन्म-मृत्युसे भी मुक्त हो जाता है। लेकिन

जिसकी वैसी स्थिति नहीं होती है वह अपनी कामनाके कारण फिरसे किसी न किसी रूपमें दुनियामें आता है। जन्म लेना यानी सुख-दुःखमें पड़ना है। इसलिए जन्म-मरणसे छूटनेका सीधा रास्ता उस सर्वव्याप्त परम आनन्दमय भगवानका निरंतर चिन्तन करना ही है। बच्चे, जवान, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सबमें बीजरूप वह भगवान है। भगवान दुनियाको चलानेवाला है और स्वयं चलनेवाला भी वही है। अज्ञान और वासनाका परदा बीचमें रहता है। परदा यानी परद्वार। वह दूर होते ही बीजरूप भगवान स्वयं प्रगट हो जाता है।

'हम पूजा करके कुछ संकल्प करते हैं और अक्षत अर्पण कर स्वस्ति, स्वस्ति, स्वस्ति कहते हैं। स्वस्ति यानी संकल्प पूरा हो यह मंत्र। निरंतर भगवच्चिन्तन यह स्वस्तिकी पूर्तिका साधन है।'

*

जबसे हमने स्वराज्य पाया तभीसे खुदाई खिदमतगार बादशाह खान साहबसे जुदाई हो गई। ईस्वी सन् १९६५ में हम नेपालमें थे। वहां ११ फरवरीको पूज्य काकाजीकी पुण्यतिथिके दिन अचानक पूज्य अब्बाजान बादशाह खानसाहबकी यादने दिल-दिमागको जोरोंसे घेर लिया। उसी वक्त उनके नाम एक पत्र लिखकर मैंने पूजामें रख दिया। प्रभुकी कृपासे वह काबुलमें उन्हें पहुंचा दिया गया। तुरन्त उनका बड़ा प्यारा जवाब आया:

"प्यारी और अजीजा मदालसा, खुश और सलामत रहो। आपका खत पढ़कर मुझे बहुत खुशी हुई और वह दिन याद आये जो वर्धामें आप और हम मोहब्बतसे गुजारते थे। आपका खयाल होगा कि मैं आप लोगोंको भूल गया हूं। क्या अर्ज करूं? मैं कभी भी आपको और आपकी वालदा और भाई-बहनोंको भूल नहीं सकता। हम तो एक खानदानके लोग थे। हम कभी भी एक-दूसरेसे जुदा नहीं हो सकते थे। लेकिन कुदरतने कहो या खुदगर्ज लोगोंने, हमें एक-दूसरेसे जुदा कर दिया। अब भी मुझे परमात्मा से यही उम्मीद है कि अगर दयानतदारीसे कोशिश की जाये तो यह तमाम मुश्किलात हल हो सकती हैं। . . . मेरी बीमारी 'नर्व्स' की है। इसके इलाजके लिए वक्त चाहिये। मैं चन्द अर्सेके लिए यहां हूं। आप मुझसे यहां मिल सकते हैं। घरवालोंको, शौहरको, छोटे-बड़ोंको सबको बहुत-बहुत प्यार।

—अब्दुल गफ्फार"

पूज्य अब्बाजानका यह प्यारभरा पत्र। वड़ा गहरा असर हुआ इसका। ५ अगस्त, १९६५ की शामको ६ वजे मैं कावुलमें शांतिनिकेतनके समान 'दारुलेमान' नामक स्थानमें जा पहुंची, जहां अब्बाजान विराजमान थे। मैं उनके पवित्र चरणोंमें प्रणाम करने लगी, पर उन्होंने मुझे अववीचमें ही वहुत प्यारसे छातीसे लगा लिया और दिलकी गहरी मोहब्बतसे नहला दिया। उसमें वरसोंका विछोह और अव तकका गहरा दुखदर्द साराका सारा ही एकदमसे वह गया और हमारे राष्ट्रपिता वापू और काकाजीका जमाना सामने आ गया। दिलमें सुखद स्मृतियोंकी घटाएं उमड़ आईं, पर वे वरस नहीं पाईं। पूज्य अब्बाजानका स्थिर, शांत, स्नेहसे भरा प्रसन्न स्वरूप देखकर मन उसीमें रम गया।

दो दिन वाद दिल्लीसे कमलनयनभाई भी आ गये। वे अपने साथ वम्वईसे, ३ अगस्तको मां जानकीदेवीका हिन्दीमें लिखा छोटासा प्यारा खत भी लाये थे। वह अब्बाजानको पढ़कर सुनाया गया :

"वापू गये वाद आपने जेलोंकी यातना वहुत भोगी। खुदाई खिदमतगार आपकी रक्षा करता है। खुदाई खिदमतगार आपका शब्द याद आता है। सेवाग्राम जाते हैं तो आप जहां वैठते थे वह जगह लोगोंको वताते हैं। किसी अखवारमें आपका नाम देखा तो पहले पढ़ते हैं। मगर आपका हिन्दुस्तान आनेका तो . . .। नेहरूजी भी लाचार ही रहे। पर अव आप वर्धा आइये। आपको हमको वड़ा अच्छा लगेगा। विनोवाजीका भी मिलना हो जावे तो वड़ा अच्छा होगा। लाली[1] को तो लोग जमनालालजीका ही वेटा समझते थे। वह दिन सपना हो गया।

जानकीदेवीके वहुत प्यारके प्रणाम"

यह पत्र वहुत सादे-सीधे सरल शब्दोंमें लिखा गया था। पर इसे सुनकर अब्बाजानको काकाजीके साथके वे दिन और वह जमाना याद हो आया। घर-परिवारकी खैर-खवरोंके वाद आस्ते-आस्ते हम देश और दुनियाके हालातकी वातों पर पहुंच गये। उसमें से आजकी दुनिया जो दिन-व-दिन 'मटेरियलिस्टिक' वनती जा रही है, उसकी एक भारी-सी तस्वीर हमारे सामने खड़ी हो गई।

---

१. वादशाह खानसाहवका छोटा वेटा जो १९६५ में लाहौरके सवसे वड़े कॉलेजका प्रिन्सिपाल था।

१८ अगस्त, १९६५ के दिन 'दारुलेमान' काबुलसे खुदाई खिदमतगार अब्बाजानने मां जानकीदेवीको यह खत लिखाया :

"प्यारी बेहेन,

खुश और सलामत रहो। तस्लीमात आपका रेहेम और मोहब्बतसे भरा हुआ खत कमलनयन साहबके हाथसे मिला। यादावरीका बहुत बहुत शुक्रिया। आप लोग मुझे भूले हुए नहीं, और मैं कैसे आप लोगोंको भूल सकता हूं?

हम तो एक घर और एक खानदानके लोग थे। लेकिन बदकिस्मतीसे बंटवारेने हमें जुदा कर दिया। हमारे जिस्म तो एक-दूसरेसे जुदा हैं, लेकिन दिल जुदा नहीं। मुझे इस बातकी खुशी भी है और रंज भी है। खुशी इस बातकी है कि हमने आप लोगोंको नहीं छोड़ा और रंज इस बातका है कि कांग्रेसने हमें छोड़ दिया और हमारी बदकिस्मती ये थी कि महात्माजी हमसे चले गये। मैं कोशिश करूंगा कि जब ऐसा मौका परमात्मा पैदा करेगा तो जरूर वर्धा आ जाऊंगा।

आखिरमें दुआ करता हूं कि आप लोगोंको आफादबलयाद (आफतों) से हमेशाके लिए सलामत और दूर रखे। फक्त।

अब्दुल गफ्फार"

यही वे पवित्र कड़ियां हैं और यही परम पावन घड़ियां हैं जिनकी बदौलत सालों बाद गांधी-जन्म-शताब्दी वर्षमें अब्बाजानका काकाजीके ८०वें जन्मदिन पर वर्धा आना हो सका। वे करीब पांच दिन वर्धा रह पाये। उस समय काकाजीकी पवित्र स्मृतिमें बाबा विनोबाजीकी स्मृतिधारा समन्वित हो रही थी। सेवाग्राममें बापू-कुटीके ठीक सामने अतिथि-गृहके रूपमें 'रुस्तम-भवन' बना हुआ है। बादशाह खानसाहब और बाबा विनोबा बापूके गहरे प्यारमें बड़े प्रेमसे एकसाथ वहीं रहे थे। उनके दर्शनोंके लिए सुबहसे शाम तक हजारों लोग आते जाते रहे।

विज्ञानके इस गतिमान युगमें दुनियाके दो महान ज्ञानी, भक्त और कर्मयोगी संतजनोंके सहजीवनके ये चार दिन पलक मूंदते-खोलते पलभरमें व्यतीत हो गये। उन दिनोंकी पावन स्मृतियां गंगा-जमनाके संगमकी भांति युगयुगों तक प्रवाहित होती रहेंगी।

पूज्य काकासाहबने अपने आशीर्वचनमें जिक्र किया है उसके मुताबिक गांधी-पंचक या जमनालाल-पंचकके अगणित स्मृतिकणोंके आपसमें मिलते जानेसे ही इस 'स्मृति-संगम' का संभवन हो सका है। पूज्य बा, बापू, बाबा और अब्बाजानके साथ काकाजीकी यादमें अपने प्यारे भारतवर्षके अनेक देशभक्तोंकी याद इसमें समाई है। उसके भीतर प्यारी कु० मनुबहन गांधी[1]की अमर प्रेरक याद भी भरी हुई है। साथ ही पूज्य काकाजीके सद्गुणोंका स्मरण दिलानेवाली बेटी आरती[2]की मीठी याद भी 'स्मृति-संगम' के संभवन पर सदा छाई हुई रही है।

*

यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि कुलगुरु पूज्य बाबा विनोबाजी अब स्थायी रूपसे वर्धामें ही निवास कर रहे हैं। धाम नदीके किनारे 'परंधाम आश्रम' है। वहां अब निष्ठावान महिलाओंके द्वारा 'ब्रह्मविद्या-मंदिर' का सुचारु रूपसे संचालन हो रहा है। ज्ञान, कर्म, भक्तिकी साधनाके साथ प्रेमपूर्ण सेवामय वातावरण है। बाबा अब क्षेत्रसंन्यासी या स्थानकवासी होकर वहीं रहने लगे हैं। यह बड़ा भारी गुरुत्वाकर्षण है।

सन् १९५९ में पूज्य विनोबाजीकी भूदान-पदयात्रा पंजाबमें चल रही थी तब दि० ९ अप्रैलको भाईश्री राधाकृष्णजी बजाजके पत्रमें बाबाके मनोभाव इस प्रकार अभिव्यक्त हुए हैं:

"'ब्रह्मविद्या-मंदिर' मेरी शायद अंतिम कृति होनेवाली है। अर्थात् इसके बाद मुझे अन्य कोई भी योजना सूझे, ऐसी सम्भावना नहीं दिखाई देती है।"

हाल ही में ११ फरवरीको काकाजीके स्मृति-दिन पर बाबाने कहा कि 'आज तो वहां (गोपुरीमें) जमनालालजीके श्राद्ध-दिनकी प्रार्थना है न?' श्रीमन्जीने कहा—'जी, आज सुबह हो गई।' मांने कहा—'कल गांधीजीकी है।' बाबाने कहा—'३० साल हुए। जमनालालजी कोई असामान्य पुरुष नहीं थे। किन्तु ३० सालमें दूसरा जमनालाल हुआ नहीं। जमनालालजी अपने बचपनकी एक बात सुनाया करते थे। एक साधु थे केजाजी महाराज।

---

१. 'गांधी-स्मृति' में समर्पित, ता० ८. १२. १९६९।

२. बड़ी बहन कमलाबाईकी सौभाग्यशालिनी कन्या जो गांधी-शताब्दी वर्षमें १३ फरवरी, १९७० को दिवंगत हुई।

वे भजन गाया करते थे। जमनालालजी उनका भजन सुनते थे। तब उनकी उम्र बारह सालकी थी। एक दिन केजाजीने भजन सुनाया 'हीरा तो गया कचरेमें!' बस, जमनालालजीको उसी दिन ध्यानमें आया कि पैसा तो सब व्यर्थ है। और जीवनको खूब संभाला।'

*

वन्दे मातरम्, भारत-माताकी जय और इन्किलाब जिन्दाबादके गगन-भेदी जयनादोंके सहारे हमने स्वराज्य पाया। लोकमान्य तिलक महाराज ने 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' यह राष्ट्रमंत्र हमें दिया। उसकी राष्ट्रव्यापी साधनासे वह सिद्ध हुआ और हमें स्वराज्यकी सिद्धि प्राप्त हुई। उसी तरह **'मानव-संरक्षण मानवमात्रका स्वयंसिद्ध अधिकार है'** ये हृदयोद्गार माता जानकीदेवी बजाजकी तीव्रतम प्रार्थनामें से प्रगट हुए हैं। ३ सितम्बर, १९७१ के शुभ दिन सुबहके आह्लादक समयमें 'स्मृति-संगम' के प्रकाशनकी चर्चा करते हुए पूज्य माताजीके चिन्तनमें से मानव-संरक्षणका यह महामंत्र अत्यन्त सहज भावसे प्रकाशमान हुआ। उसी दिन शामके समय अहमदाबादके वेद-भवनमें प्रज्ञाचक्षु पूज्य श्रीगंगेश्वरानंदजी महाराजने इसे वेदमंत्रों द्वारा प्रमाणित किया। उस समय पूजनीय श्री रविशंकर महाराजके साथ अन्य कई महानुभाव वहां उपस्थित थे। उनके साथ मैं और पूज्य मां जानकीदेवी भी वहां गई थीं। श्रद्धेय गंगेश्वरानंदजीके साथ गहरी चर्चा हुई। उन्होंने वेदोंके अनेक दृष्टांतोंसे इस मंत्रकी पुष्टि की। बड़ा सुख मिला।

मानव-संरक्षणके इस मन्त्रको लेकर मैं दिल्ली गई। पूज्य रैहाना बहनने इसे ध्यानपूर्वक सुना और सिद्ध किया। फिर कहा कि दरअसल 'मानव-संरक्षण मानवमात्रका स्वयंसिद्ध अधिकार है' यह प्रेम और प्रसन्नताके इस युगके लिए बड़ा शक्तिमान मन्त्र है। जानकीमाताके मनोमंथन और चिन्तनमें से यह महामंत्र प्रगट हुआ है।

'मानव सुरक्खा मानव मात्रेर स्वयंसिद्ध अधिकार,
मां भगवती सबार रक्खा करो।'

इस रूपमें दुर्गापूजाके समय कलकत्तामें यह मंत्र विशेष लोकप्रिय हुआ है।

सन् १९७१ के मई महीनेके आरम्भमें महाराष्ट्र प्रदेशके नासिक तीर्थक्षेत्रमें अखिल भारतीय सर्वोदय सम्मेलन हुआ था। उसमें पूज्य मांके

साथ मैं भी शामिल हुई थी। वहां भाई श्री अविदुर्रहमानने बांगला देशके जो हालात बयान किये, वे हर इन्सानके लिए बड़ी दर्दनाक और बेहद शर्मनाक वारदातें थीं। तबसे मानवके अधिकारके संबंधमें मां बड़ी तीव्रतासे बार-बार यही सोचने और कहने लगीं:

"बाबा, ये अकेले एक मां के जाये नरको असंख्य नरोंका संहार करनेका अधिकार कहांसे मिला है, और उस भयानक अधिकारको उससे छीन लेनेका अधिकार हमारे पास क्यों नहीं है? दुनियामें कोई भी उसके इन विध्वंसक अधिकारोंको छीन क्यों नहीं लेते हैं? या इस नर-संहारको क्यों नहीं रोक पाते हैं?

पूर्व बंगालमें आज जो भीषण नर-संहार हो रहा है इससे दुनिया कांप उठी है। एक आदमी ऐसे भयंकर काण्ड कैसे कर सकता है? या तो ईश्वरीय कोप हो, या दुनियामें पापका घड़ा भर रहा है। पर यह कैसा अधिकार? किसने दिया और कैसे मिला? अधिकारका उपयोग तो अच्छा होना चाहिये, वरना अधिकार छीन लेना चाहिये। दुनिया भरमें सबका भला चाहनेवाली जितनी संस्थाएं हैं और जितने संगठन हैं, उन सबकी एक सम्मिलित आवाजसे मानवताकी रक्षा तुरन्त होनी चाहिए।

भगवान! दुनियाके सभी हितचिन्तकोंको सद्बुद्धि देवें, जिससे मनुष्य-मात्रकी शीघ्र रक्षा होवे।"

*

सृष्टिमें सभ्यताके आरम्भसे मानव-जीवनकी उत्क्रान्तिके संबंधमें गहरा चिन्तन करनेवाले दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि दुनियाके इतिहासकी उच्चतम विभूतियां मानव-अधिकारके विचार पर बल देती आई हैं और उसका विकास करती आई हैं। और संयुक्त-राष्ट्रसंघने उनका पुनरुच्चारण किया है।

"राजनैतिक, नागरिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों का 'मानव-अधिकार संबंधी विश्वव्यापी घोषणा'—यूनिवर्सल डिक्लेरेशन—में समावेश है, जिनको संयुक्त-राष्ट्रसंघकी बृहत्सभा—जनरल असेम्बली—ने १० दिसम्बर, १९४८ को निर्विरोध स्वीकार किया था।

मानव-अधिकारोंकी विश्वव्यापी घोषणाकी बीसवीं वर्षगांठ मनानेके लिए १९६८ का वर्ष मानव-अधिकारोंके अन्तर्राष्ट्रीय वर्षके रूपमें माना गया।

सभी लोग स्वीकार कर सकें, तथा समझ सकें ऐसे रूपमें 'मानव-अधिकार तथा मूलभूत स्वतन्त्रता' का अर्थ किया गया है। वृहत्सभा—जनरल असेम्वलीकी आर्थिक तथा सामाजिक कौंसिल, मानव-अधिकार संवंधी आयोग तथा भेदभाव विरोधी एवं अल्पसंख्यक सुरक्षा उपसमिति तथा महिला-स्थिति संवंधी आयोगने संयुक्त-राष्ट्रसंघके मानव-अधिकार संवंधी कामकाजकी जिम्मेदारी सिद्धान्त रूपमें अपने ऊपर ली है।

संयुक्त-राष्ट्रसंघने अन्तर्राष्ट्रीय तन्त्रका विस्तृत कार्य पूरे विश्वमें फैलाया है, जिसका एक उद्देश्य तो मानव-अधिकारोंके उपभोगके लिए गारंटी देना है तथा दूसरा किसी खास समस्याको सुलझानेके लिए अंतर्राष्ट्रीय सम्वन्धोंको अमलमें लाना है। प्रत्येक मानवके लिए अधिकतम स्वतन्त्रता दिलानेके लिए इस विधेयात्मक अभियान पर १९७१ में काफी जोर दिया जानेवाला है।"[१]

यह बात इसी वर्ष १६ दिसम्वर, १९७१ के शुभ दिन वंगला देशमें स्वराज्यके सूर्योदयके साथ विश्वमें भारतकी अपूर्व विजयके रूपमें भलीभांति प्रमाणित हुई है। भारतरत्न श्रीमती इन्दिरा गांधीने कहा:

"यह अकेले उनकी विजय नहीं है। मानव-आत्माका सम्मान करनेवाले समस्त राष्ट्र इसे मानवकी स्वतन्त्रताकी यात्रामें एक महत्त्वपूर्ण विजय मानेंगे।"[२] इस विषयमें वंगवंधु शेख मुजीवुर्रहमानके हृदयोद्‌गार ये हैं:

"सोनार बांगलाकी यह ऐसी यात्रा है, जो अंधेरेमें से प्रकाशकी ओर तथा निराशासे आशाकी ओर है। मेरे लिए यह सर्वाधिक प्रसन्नताका क्षण है। मैं अपनी जनताके वीच जा रहा हूं, जहां शांति, प्रगति और सम्पन्नताके रूपमें विजयको वदलनेका भारी काम पड़ा हुआ है। मेरे दिलमें किसीके लिए घृणा नहीं है, वरन् संतोष है कि असत्यता पर सच्चाईकी, कायरता पर साहसकी, अन्याय पर न्यायकी और वुराई पर अच्छाईकी विजय हुई।

हमें आशा है कि दुनियाके सभी देश हमें मान्यता देंगे और संयुक्त-राष्ट्रसंघकी सदस्यता दिलानेमें मदद करेंगे। हम राष्ट्रसंघमें स्थान लेकर रहेंगे।"[३]

---

१. संयुक्त-राष्ट्रसंघके 'चार्टर' से उद्धृत तथा अनुवादित।
२. १६ दिसम्वर, १९७१। ३. १० जनवरी, १९७२।

सार्वभौम मानव-संरक्षणकी दृष्टिसे यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विश्वशान्ति आधुनिक विज्ञानका तकाजा है। भौतिक विज्ञानकी स्पर्धाके कारण आज दुनियामें चारों ओर जो अशान्ति फैली हुई है, उसे मिटानेका प्रयत्न सबको मिलकर करना है। विश्वमें यथाशीघ्र शान्तिकी स्थापना हो, ऐसी इच्छा-शक्ति, विचार-शक्ति और आत्म-शक्तिको ज़ागृत और सुसंगठित करना है, जिससे बड़े-से-बड़े संकटोंमें भी हम अपना आत्म-संरक्षण अच्छी तरहसे कर सकें और 'मानव-संरक्षण मानवमात्रका स्वयंसिद्ध अधिकार है' यह चिरस्थायी सत्य विश्वमें सुदृढ़तासे प्रमाणित हो सके।

बीसवीं शताब्दी अखिल विश्वके लिए उत्क्रांतियुक्त शान्तिकी साधनाका और मानवताके महत्त्वकी स्थापनाका युग सिद्ध हो रहा है। इसमें स्वराज्य-प्राप्तिका यह हमारा पच्चीसवां रजत-जयन्ती वर्ष चल रहा है। भारतमें प्रजातन्त्रकी स्थापनाको और हमारे भारतीय संविधानकी घोषणाको इसी वर्ष २६ जनवरीके गणतन्त्र-दिवस पर बाईस वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। वह अब प्रतिष्ठित हुआ है; साथ ही साथ विश्वमें भारतकी महान विजय हुई है। यह मानवताकी और प्रजातन्त्रकी विजय है।

भारतके साहसी जय जवानोंके प्राणोंकी आहुतियोंसे भारत-माताके मंदिरमें यह प्रजातन्त्रकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई है। उसका आनन्द और उत्साह अब सर्वसामान्य प्रजाजनोंके जीवनमें जागृत होना जरूरी है। राष्ट्रपिता-माताके उत्तराधिकारी आजके हमारे जन्मदाता माता-पिता हैं। विज्ञानके इस जमानेमें उन्हें त्रिकालदर्शी होना है। उसकी तरकीब गीतामें बहुत अच्छी तरहसे बताई गई है। गुजरातके पूज्यश्री रविशंकर महाराजने वेदोंकी व्याख्या करते हुए कहा है: 'वेद सृष्टिका संविधान हैं।' इस बातसे अपना तादात्म्य प्रगट करते हुए 'गीताई' के पंद्रहवें अध्यायके पंद्रहवें श्लोकमें जगद्गुरु श्रीकृष्णने अर्जुनको एकसाथ तीन बातें समझाई हैं:

'१. वेद मुझे पहचानते हैं, मैं उनको जानता हूं और वेदोंके रहस्यका उद्घाटन भी मैं करता हूं।

२. मैं सबके हृदयमें रहता हूं।

३. मैं सबको स्मृति, ज्ञान और विवेक देता हूं।'

स्मृति याने भूतकाल, ज्ञान प्राप्त होता है वर्तमानमें और सारासार विवेकका उपयोग होता है भविष्यके लिए। ऐसी ये तीन बड़े कामकी बातें हैं। इन्हींमें त्रिकाल-दर्शन प्राप्त होता है। इसके द्वारा माता-पिता अपने बालकोंको भावी जीवनका सुनिश्चित दिग्दर्शन दे सकते हैं और प्रजातन्त्रका सही संचालन हो सकता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजीके कथनानुसार 'अनुशासन और विवेकयुक्त जनतंत्र दुनियाकी सबसे सुंदर वस्तु है' यह सुखद दर्शन हमें पाना है।

गुजरात प्रदेशमें गांधी-शताब्दीकी संपन्नताके साथ प्रजातंत्रके अनुरूप 'तरुणाभिनन्दन' के नये प्रेरणात्मक समारोह मनाना शुरू हुआ है। अब वे राष्ट्रव्यापी होते जा रहे हैं। भारतमें आज जितने धार्मिक और सामाजिक उत्सव मनाये जाते हैं उन सबमें राष्ट्रभाव और सर्वधर्म-समभावका संबंध जुड़ता जाय तो उसीसे प्रजाजनोंमें नया उत्साह जागृत होगा, बालकों और युवकोंके मन प्रसन्न होंगे, उनका उत्कर्ष होगा और उसीसे राष्ट्रका उत्थान होगा।

प्रजातंत्रकी प्रतिष्ठा बढ़ानेकी दृष्टिसे हर व्यक्तिके लिए स्वधर्मका पालन करना और उसके आधुनिक स्वरूपको समझना आवश्यक है। अतः व्यक्तिगत रूपसे व्यक्तिका निजधर्म, मानवताके रूपमें मानवका मानवधर्म और राष्ट्रीयता की दृष्टिसे हमारा राष्ट्रधर्म क्या है यह हम समझें और विश्वशान्तिके लिए हर व्यक्तिमें विश्वधर्मकी भावनाका समन्वय हो, तो वही युगधर्मके रूपमें मानवमात्रका अद्यतन स्वधर्म सिद्ध होगा। यही स्वधर्मका पंचामृत 'स्मृति-संगम' की सम्पन्नतामें से प्राप्त होता रहे।

*

भारत दिव्य-दर्शनोंका देश है। यहां 'सा विद्या या विमुक्तये' की साधना युगयुगोंसे हुई है। उसीका ध्यान-चिन्तन करते हुए पूज्य विनोबाजी ने लिखा है:

"वैदिक ऋषियों, उपनिषदों, गीता, योगशास्त्र एवं संतजनोंके अनुभवोंमें एकांत सेवन तथा निसर्ग-परिचयके अनेकविध लाभ वर्णन किये गये हैं। मनुष्य-समाजके सबसे पुराने ग्रन्थका एक वचन है:

'उपव्हरे गिरीणां संगथे च नदीनां धिया विप्रो अजायत' (ऋग्वेद) – पर्वतोंकी कंदराओंमें और नदियोंके संगम पर ध्यान-चिंतनसे ज्ञानीका जन्म हुआ।

ज्ञानी पुरुषका जन्म कहां हुआ और वहां क्या करनेसे हुआ, ये दोनों बातें इस मन्त्रमें हैं।"

ज्ञान-साधनाकी यही परम्परा भारतीय संस्कृतिका प्रतीक है। साहित्य-कारोंने उसीके गुण गाये हैं और इतिहास-संशोधकोंने उसीका गौरव बढ़ाया है। पिता जमनालालजी और माता जानकीजीका जीवन ऐसी उच्चतम स्मृतियोंसे सुसम्पन्न है। उन पवित्र और प्रेरक स्मृतियोंके इस स्मृति-संगममें स्नान करते हुए हृदय प्रफुल्लित हो रहा है। उसी खिले हुए हृत्कमलके साथ 'निज जन जानि राम मोहिं संत समागम दीन्ह' के रूपमें अनायास ही यह समाधान प्रगट हो रहा है।

